**भारतीय ज्ञानपीठ**
**संस्थापक**
**श्रीमती रमा जैन**
**श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन**

सज़्पादक
**रवीन्द्र कालिया**

# नया

भारतीय ज्ञानपीठ की मासिक साहित्यिक पत्रिका
अंक 119, जनवरी 2013

# नया

आधुनिक भावबोध, कला संचेतना और नवीनता की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका
अंक 119, जनवरी 2013
**ग़ज़ल महाविशेषांक**

## तरतीब

**आलेख**



आवरण चित्र और भीतरी रेखांकन : वाजदा ख़ान, साज-सज्जा : ज्ञानपीठ कला प्रभाग

नया

साहित्यिक मासिक पत्रिका

**अंक 119, जनवरी 2013**

प्रबन्ध सम्पादक
**साहू अखिलेश जैन**
प्रबन्ध न्यासी, भारतीय ज्ञानपीठ

**प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ**
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं. 3113
नई दिल्ली-110 003
फोन : 011-2462 6467, 2465 4196, 2469 8417, 2465 6201
फैक्स : 011-2465 4197;
ई-मेल : nayagyanoday@gmail.com / jnanpith@satyam.net.in
वेबसाइट : www.jnanpith.net

Nay"a Gy"anodaya
A Literary Monthly Magazine
Editor : Ravindra Kalia
Language : Hindi
Published by Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003



**नया ज्ञानोदय इंटरनेट पर :** www.jnanpith.net
**सम्पादक :** रवीन्द्र कालिया

**मूल्य :**
एक अंक 30 रुपये
**इस अंक का मूल्य 70 रुपये**

**व्यक्तियों के लिए :**
वार्षिक : 300 रुपये / त्रैवार्षिक : 800 रुपये
पंचवार्षिक : 1200 रुपये / आजीवन : 5000 रुपये

**संस्थाओं के लिए :**
वार्षिक : 350 रुपये / त्रैवार्षिक : 1000 रुपये
पंचवार्षिक : 1650 रुपये / आजीवन : 5000 रुपये

**विदेशों के लिए :**
**हवाई डाक** : एक अंक 6 डॉलर / वार्षिक 60 डॉलर
**जल मार्ग** : एक अंक 4 डॉलर / वार्षिक 30 डॉलर
*शुल्क 'नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ' (Naya Gyanoday, Bharatiya Jnanpith) के नाम से उपर्युक्त पते पर भेजें।*
(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ़्ट से)
(दिल्ली से बाहर के चेक में 35 रुपये अधिक जोड़ें)

# दस्तख़त

**ग़ज़ल** उर्दू की एक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। पूछा जा सकता है कि अचानक यह ग़ज़ल विशेषांक ज़्यों प्रकाशित किया जा रहा है, इसका औचित्य ज़्या है ? वस्तुत: साहित्य की किसी भी विधा पर किसी भाषा या देश का एकाधिकार नहीं होता। आज के कथा साहित्य का अवलोकन करें तो हम पाएँगे, उस पर भी कई भाषाओं और कई देशों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव है। आज हिन्दी कहानी का वह रूप नहीं है जो हितोपदेश अथवा कथा सरितसागर का था। आज कहानी में कई अन्य भाषाओं के कथाकारों की प्रतिध्वनियाँ सुनी जा सकती हैं। किसी भी देश या भाषा की कहानी हो, उस पर चेखव, मोपासाँ, ओ हेनरी, हेमिंग्वे, सॉमरसेट मॉम, काज़्का, दास्तोएवस्की, मंटो, शरच्चन्द्र, प्रेमचन्द, लू-शुन की प्रतिध्वनियाँ सुनी जा सकती हैं। जहाँ तक ग़ज़ल का सज़्बन्ध है, वह भी भारत में सार्वभाषिक विधा के रूप में विकसित हो रही है। आज ग़ज़ल के पाठक उर्दू से कहीं अधिक हिन्दी में हैं। ग़ालिब को ही लें, अब तक उनके दीवान की हिन्दी में अनेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं। शायद ही हिन्दी का कोई कवि होगा, जिसने ग़ालिब का अध्ययन न किया हो, मीर को न पढ़ा हो, ज़ौक का नाम न सुना हो। हिन्दी में पचास के दशक में प्रकाश पंडित के सज़्पादन में उर्दू शायरों की एक शृंखला प्रकाशित हुई थी, जिसने हिन्दी के आम पाठकों का ध्यान खींचा था और देखते ही देखते उसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो गये। आज हिन्दी के लगभग समस्त प्रकाशकों ने ग़ज़लों के संकलन प्रकाशित किये हैं जो पाठकों में ख़ूब लोकप्रिय हैं। अज़्सर लोग यह कह कर ग़ज़ल से पल्ला झाड़ लेते हैं कि ग़ज़ल हुस्नो इश्क़ पर केन्द्रित एक रोमांटिक विधा है; जबकि सचाई यह नहीं है। ग़ज़ल की रवायत ही कुछ ऐसी है कि हर बात, वह चाहे कितनी भी गहरी ज़्यों न हो, प्रिय या प्रियतम के माध्यम से ही कही जाती है। यह ग़ज़ल की सीमा भी है और शज़्ति भी। यह शायर की प्रतिभा पर निर्भर करता है कि वह किस युज़्ति से हुस्न और इश्क़ की सीमा में रहते हुए उसमें ज़िन्दगी के रंग भरता है और फ़लसफ़े हयात की बात करता है, जीवन और मृत्यु के दर्शन को समझने की कोशिश करता है :

*अब तो घबरा के ये कहते हैं कि मर जाएँगे*
*मर के भी चैन न पाया तो किधर जाएँगे*

जटिल रहस्यवादी चिन्तन को सहज सरल ढंग से अभिव्यज़्त करना ग़ज़ल में ही सज़्भव है।

कुछ लोग ग़ज़ल के विन्यास को देखते हुए उस पर शज़्द क्रीड़ा का भी आरोप लगाते हैं, मगर यह उन कवियों के लिए कहा जा सकता है, जो ग़ज़ल के नाम पर शज़्दों के साथ खेलते हैं और शज़्द क्रीड़ा को ही अपनी उपलज़्धि मान लेते हैं। ऐसे कवियों की संज़्या भी कम नहीं है। ग़ज़ल में ही ज़्यों, शज़्दों की बाज़ीगिरी किसी भी विधा में दिखायी जा सकती है। बड़ा शायर उसी को माना गया है, जो बह्र, क़ाफ़िए और रदीफ़ के अनुशासन के भीतर रह कर सिर्फ़ भाषा के चमत्कार दिखाने में ही नहीं रम

जाता, बल्कि आम आदमी के संघर्षों, उज़्मीदों, निराशाओं, सपनों को वाणी देता है।

यह अंक एक तरह से ग़ज़ल का ऐसा कोश है, जिसमें आप को उस्तादों के कलाम भी पढ़ने को मिलेंगे और ग़ज़ल के चार सौ साल के सफ़र का एक जायज़ा भी मिल जाएगा। हिन्दी में ग़ज़ल को सही पहचान दुष्यन्त ने दिलवायी थी, आज दुष्यन्त के बाद भी कवियों की लज़्बी जमात है, जो ग़ज़ल को बनाने-सँवारने में संलग्न हैं। इस विशेषांक से गुज़रते हुए आपको ख़ुद एहसास हो जाएगा, कौन शायर कहाँ खड़ा है। इसे व्याज़्यायित करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, पाठक स्वयं तय कर लेंगे और हमें भी बताएँगे कि किन कवियों और शायरों ने उन्हें प्रभावित किया। 'नया ज्ञानोदय' का यह विशेषांक पाठकों को सौंपते हुए हमें सचमुच बहुत सन्तोष हो रहा है। यहाँ अमीर ख़ुसरो, वली दकनी, मीर, ग़ालिब, मोमिन, दाग़, फ़ैज़, फिराक़, मज़्दूम तो हैं ही; अहमद नदीम क़ासमी, नासिर काज़मी, जाँ निसार अज़्तर, इज़्ने इंशा, मजरूह, साहिर, जिगर, परवीन शाकिर, कैफ़ी आज़मी, शहरयार, फ़राज़, गुलज़ार भी हैं और हिन्दी में हमने कबीर से शुरू किया है। निराला हैं, शमशेर भी; कृष्ण अदीब हैं, सुदर्शन फ़ाकिर भी; गरज कि हमारा भरपूर प्रयास रहा है कि इस अंक में आज तक के प्रतिनिधि ग़ज़लकारों की शमूलियत हो। हमारा यह प्रयास कहाँ तक सफल रहा है, यह तो पाठक ही बताएँगे!

इस अंक को तैयार करने में हमें अनेक विद्वानों का सहयोग मिला। हम विशेष रूप से अज़्दुल बिस्मिल्लाह और ज्ञानप्रकाश विवेक के आभारी हैं, जिन्होंने इस अंक की सामग्री जुटाने में हमारी मदद की। उन तमाम पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों, प्रकाशकों के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं, जहाँ से कुछ ग़ज़लें हमने प्राप्त कीं।

'नया ज्ञानोदय' परिवार की ओर से पाठकों को नये वर्ष की शुभकामनाएँ।

## भारतीय ज्ञानपीठ

का

एक और महत्त्वाकांक्षी संकल्प

# संचयन वर्ष ( 2013 )

'संचयन वर्ष' में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा
हिन्दी साहित्य के कालजयी रचनाकारों के विपुल रचना-संसार से
चुनी हुई रचनाओं के संचयन प्रकाशित हो चुके है।

**'संशय के साये' : कृष्णबलदेव वैद रचना संचयन**
सम्पा. अशोक वाजपेयी/उदयन वाजपेयी

**'कई समयों में' : कुँवर नारायण रचना संचयन**
सम्पा. दिनेश कुमार शुक्ल/यतीन्द्र मिश्र

**'अज्ञेय रचना संचयन'**
सम्पा. कन्हैयालाल नन्दन

**'मोहन राकेश संचयन'**
सम्पा. रवीन्द्र कालिया
और
**'अमरकान्त संचयन'**
सम्पा. रवीन्द्र कालिया

इस शृंखला में वे अविस्मरणीय रचनाकार सर्वोपरि हैं जिनकी जन्मशती हिन्दी साहित्य में नये विमर्शों को जन्म दे रही है। एक अर्थ में यह संचयन वर्ष इन रचनाकारों के प्रति भारतीय ज्ञानपीठ के 'अक्षर सम्मान' का भी प्रतीक है।

हमारे आगामी संचयन

**नागार्जुन रचना संचयन :** सम्पादक : डॉ. नामवर सिंह, शोभाकान्त
**शमशेर रचना संचयन :** सम्पादक : अजय तिवारी, रंजना अरगड़े
**अश्क रचना संचयन :** सम्पादक : नीलाभ
**केदारनाथ अग्रवाल रचना संचयन :** सम्पादक : कैलाश वाजपेयी, अशोक त्रिपाठी

## अमीर ख़ुसरो

जब यार देखा नैन भर, दिल की गयी चिन्ता उतर,
ऐसा नहीं कोई अजब राखे उसे समझाय कर

जब आँख से ओझल भया, तड़पन लगा मेरा जिया,
हक़्क़ा इलाही ज़्या किया, आँसू चले भर लाय कर

तू तो हमारा यार है, तुझ पर हमारा प्यार है,
तुझ दोस्ती बिसियार है, एक शब मिलो तुम आय कर

जाना तलब तेरी करूँ, दीगर तलब किसकी करूँ,
तेरी जो चिन्ता दिल धरूँ, एक दिन मिलो तुम आय कर

मेरो जो मन तुमने लिया, तुमने उठा ग़म को दिया,
तुमने मुझे ऐसा किया, जैसा पतंगा आग पर

ख़ुसरो कहै बातें ग़जब, दिल में न लावे कुछ अजब,
क़ुदरत ख़ुदा की है अजब, जब जिव दिया गुल लाय कर

## मुहज़्मद क़ुली क़ुतुब शाह

(1565-1612)

साक़िया आ शराबे-नाब[1] कहाँ
चन्द[2] के प्याले में आफ़ताब कहाँ

आशिक़ाँ मँगते हैं समाअ[3] करन
चन्द गाने कहाँ रबाब[4] कहाँ

मद के प्यालियाँ का दौर फिरता है
नुज़्ल[5] मद का कहाँ कबाब कहाँ

ओ कँवल-मुख[6] में नीर है सज़्पूर[7]
उसके अंगे-तंग शराब कहाँ

सो कि देखो कते हैं साजन कूँ
वले मेरे नयन कूँ ज़्वाब कहाँ

नींद की है ख़ुमारी नैनाँ में
ओ कँवल-मुख धुवें गुलाब कहाँ

सुबह के बन[8] लिए खिलिए हैं फूल
शुर्ब[9] का वज़्त है शराब कहाँ

परदे में ज़्यूँ छुपेगा ओझल काँ
सूर[10] के नूर ऊपर नक़ाब कहाँ

सकी[11] मजलिस शहाँ[12] सँवारे हैं
मजलिसे-क़ुतुब कामियाब कहाँ

[1] ख़ालिस शराब [2]चाँद [3]सुनना [4]सितार की तरह का एक वाद्य [5]शराब के साथ खाई जाने वाली चीज़ [6]मुखकमल [7]भरा हुआ [8]वन, जंगल [9]पीना [10]सूर्य [11]सारी [12]बादशाह लोग

## शम्सुद्दीन वली दकनी

(1668–1720/25)

मत ग़ुस्से के शोले सूँ[1] जलते को जलाती जा
टुक मेह्र के पानी सूँ तू आग बुझाती जा

तुझ चाल की क़ीमत सूँ दिल तईं है मेरा वाक़िफ़
ऐ मानभरी चंचल टुक[2] भाव बताती जा

इस रात अँधारी में मत भूल पड़ूँ तुझ सूँ
टुक पाँव के झाँझर[3] की झनकार सुनाती जा

मुझ दिल के कबूतर कूँ[4] बाँधा है तेरी लट ने
ये काम धरम का है टुक इसको छुड़ाती जा

तुझ मुख भी परस्तिश में गयी उम्र मेरी सारी
ऐ बुत की पुजनहारी टुक इसको पुजाती जा

तुझ इश्क़ में जल–जल कर सब तन कूँ किया काजल
ये रौशनी अफ़ज़ा है अँखियाँ को लगाती जा

तुझ नेह में दिल जल–जल जोगी की लिया सूरत
यक बार इसे मोहन[5] छाती सूँ लगाती जा

तुझ घर की तरफ़ सुन्दर[6] आता है वली दाइम[7]
मुश्ताक़[8] दरस का है टुक दरस दिखाती जा

[1] से [2] ज़रा [3] घुँघरूदार पायल [4] को [5] मोह लेने वाली [6] सुन्दरी, प्रेमिका [7] हमेशा [8] इच्छुक

## सिराज औरंगाबादी

(1715–1763)

ख़बरे–तहय्युरे—इश्क़ सन[1] न जुनूँ रहा न परी रही
न तू तू रहा न तू मैं रहा जो रही सो बेख़बरी रही

शहे–बेख़ुदी[2] ने अता किया मुझे अब लिबासे–बरहनगी[3]
न ख़िरद[4] की बख़ियागरी रही न जुनूँ की पर्दा:दरी रही

कभी सिज़्ते–ग़ैब से[5] ज़्या हुआ कि चमन ज़हूर[6] का जल गया
मगर एक शाख़े–निहाले–ग़म[7] जिसे दिल कहो सो हरी रही

नज़रे–तग़ाफ़ुले–यार[8] का किस ज़ुबाँ से बयाँ करूँ
कि शराबे–सद–क़दह[9] आरज़ू ख़ुमे–दिल[10] में थी जो भरी रही

वो अजब घड़ी थी मैं जिस घड़ी लिया दर्स नुस्ख़:–ए–इश्क़ का
कि किताब अक़्ल की ताक़ में जूँ धरी थी त्यूँही धरी रही

तेरे जोशे–हैरते–हुस्न का असर इस क़दर से यहाँ हुआ
कि न आईन: में रहा जिला[11] न परी कूँ जलव: गरी रही

किया ख़ाक आतिशे–इश्क़ ने दिले–बेनवा–ए–सिराज कूँ
न ख़तर रहा न हज़र[12] रहा मगर एक बेख़तरी रही

[1] प्रेम की अचज़्भित चेतना के साथ [2] बेहोशी का बादशाह [3] नग्नता की पोशॉक [4] बुद्धि [5] परोक्ष की तरफ़ से [6] प्रकट, रौशन [7] दुख से समृद्ध डाल [8] प्रियतम की उपेक्षापूर्ण नज़र [9] सैकड़ों प्याले [10] दिल का घड़ा [11] चमक [12] भय

## ख़्वाजा मीर दर्द

(1720/21–1785)

है ग़लत गर गुमान में कुछ है
तुझ सिवा भी जहान में कुछ है!

दिल भी तेरे ही ढंग सीखा है
आन में कुछ है आन में कुछ है

बेख़बर तैग़े-यार[1] कहती है
बाक़ी इस नीमजान[2] में कुछ है

इन दिनों कुछ अजब है मेरा हाल
देखता कुछ हूँ ध्यान में कुछ है

और भी चाहिए सो कहिए अगर
दिले-नामेह्रबान में कुछ है

दर्द तो जो करे है जी का ज़ियाँ[3]
फ़ायदा इस ज़ियान में कुछ है

[1]प्रियतम की तलवार [2] आधी जान [3] नुक़सान

## मीर मुहज़्मद तक़ी 'मीर'

(1722/23–1810)

उल्टी हो गयीं सब तदबीरें कुछ न दवा ने काम किया
देखा इस बीमारि-ए-दिल ने कैसा काम तमाम किया

अह्दे-जवानी[1] रो रो काटा पीरी[2] में लीं आँखें मूँद
यानी रात बहुत थे जागे सुबह हुई आराम किया

हिर्फ़ नहीं जाँबज़्शी में उसकी ख़ूबी अपनी क़िस्मत की
हमसे जो पहले कह भेजा सो मरने का पैग़ाम किया

नाहक़ हम मजबूरों पर ये तोहमत है मुज़्तारी[3] की
चाहते हैं सो आप करे हैं हमको अबस[4] बदनाम किया

सारे रिन्द-औबाश[5] जहाँ के तुझसे हुजूर[6] में रहते हैं
बाँके टेढ़े तिरछे तीखे सबका तुझको इमाम[7] किया

सरज़द[8] हमसे बेअदबी तो वहशत[9] में भी कम ही हुई
कोसों उसकी ओर गये पर सज्द: हर हर गाम[10] किया

किसका काबा कैसा क़िज़्ल:कौन हरम[11] है ज़्या अहराम[12]
कूचे के इस बाशिन्दों ने सबको यहीं से सलाम किया

शैख़[13] जो है मस्जिद में नंगा रात को था मयख़ाने में
जज़्ब: ख़रक: कुर्ता टोपी मस्ती में इनआम किया।

क़ाश अब बुर्क़ा मुँह से उठा दे वरना फिर ज़्या हासिल है
आँख मुँदे पर उनने गो दीदार को अपने आम किया

याँ के सुपेदो-सियह[14] में हमको दख़ल जो है सो इतना है
रात को रो रो सुबह किया या दिन को जूँ तूँ शाम किया

सुबह चमन में उसको कहीं तकलीफ़े-हवा ले आयी थी
रुख़ से गुल को मोल लिया क़ामत[15] से सर्व[16] ग़ुलाम किया

साइदे-सीमीं[17] दोनों उसके हाथ में लाकर छोड़ दिये
भूले उसके क़ौलो-क़सम पर हाये ज़्याले-ख़ाम[18] किया

काम हुए हैं सारे ज़ाया[20] हर साइत[21] की समाजत से
इस्तिग़ना[22] की चौगुनी उनने जूँ जूँ मैं इब्राम[23] किया

ऐसे आहू-ए-रमख़ुर्दा[24] की वहशत खोनी मुश्किल थी
सह्र[25] किया ऐजाज़[26] किया जिन लोगों ने तुझको राम[27] किया

मीर के दीनो-मज़हब को अब पूछते ज़्या हो उनने तो
कश्क:[28] खैंचा दैर[29] में बैठा कब का तर्क[30] इस्लाम किया।

[1]युवावस्था का ज़माना [2]वृद्धावस्था [3]स्वामित्व [4]व्यर्थ [5]शराबी और शोहदे [6]साक्षात, उपस्थिति [7]नायक [8]घटित [9]भय, पागलपन [10]कदम [11–12]काबा [13]पवित्र वस्त्र [14]धर्मगुरु [15]सफ़ेद और काला [16]देहयष्टि [17]एक प्रकार का सुन्दर वृक्ष [18]चाँदी जैसी कलाइयाँ [19]कच्चा ज़्याल, भ्रम [20]नष्ट [21]क्षण [22]ख़ुशामद [23]अनिच्छा [24]आग्रह [25]भागा हुआ हिरन [26]जादू [27]चमत्कार [28]वशीभूत [29]तिलक [30]मन्दिर [31]त्याग

## शैख़ ग़ुलाम हज़्दानी 'मुसहफ़ी'

(1750–1826)

ज़्या करें जाके गुलसिताँ में हम
आग रख आये आशियाँ में हम

जानते आपसे[1] जुदा तुझ को
करते गर फ़र्क़ जिस्मो–जाँ में हम

जानो–जानाँ[2] में कोई फ़र्क़ नहीं
एक पर्दा है दरमियाँ में हम

मरके निकले क़फ़स[3] से ख़ूब हुआ
तंग आये थे इस मकाँ में हम

गर यही आह है तो देखोगे
रख़ने[4] कर देंगे आसमाँ में हम

शाख़े–गुल के गले से मिल मिलकर
रोते हैं मौसमे–ख़िज़ाँ[5] में हम

'मुसहफ़ी' इश्क़ करके आख़िरकार
ख़ूब रुसवा हुए जहाँ में हम

[1] स्वयं से [2] जान और प्रियतम [3] क़ैद, पिंजड़ा [4] छेद [5] पतझड़

## ज़्वाजा हैदर अली 'आतिश'

(1778–1847)

तोड़ कर तार निगह का सिलसिला जाता रहा
ख़ाक डाल आँखों में मेरी क़ाफ़िला जाता रहा

कौन से दिन हाथ में आया मेरे दामाने–यार
कब ज़मीनो–आसमाँ का फ़ासला जाता रहा

ख़ारे–सहरा[1] पर किसी ने तोहमते–दर्दी[2] न की
पाँव का मजनूँ के ज़्या–ज़्या आबला जाता रहा

दोस्तों से इस क़दर सदमे हुए हैं जान पर
दिल से दुश्मन की अदावत का गिला जाता रहा

जब उठाया पाँव आतिश मिस्ले–आवाज़े–जरस[5]
कोसों पीछे छोड़ कर मैं क़ाफ़िला जाता रहा

[1] रेगिस्तान का काँटा [2] दर्द का आरोप [3] छाला [4] घंटे की आवाज़

## असद-उल्लाह ख़ाँ ग़ालिब

(1797-1869)

कोई उज़्मीद बर नहीं आती
कोई सूरत[1] नज़र नहीं आती

आगे आती थी हाले-दिल पे हँसी
अब किसी बात पर नहीं आती

जानता हूँ सवाबे-ताअतो-जोह्द[2]
पर तबीअत इधर नहीं आती

है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ
वरना ज़्या बात कर[3] नहीं आती

ज़्यों न चीख़ूँ कि याद करते हैं
मेरी आवाज़ गर नहीं आती

दाग़े-दिल गर नज़र नहीं आता
बू भी ऐ चार:गर[4] नहीं आती

हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती

मरते हैं आरज़ू में मरने की
मौत आती है, पर नहीं आती

काबे किस मुँह से जाओगे ग़ालिब
शर्म तुमको मगर नहीं आती

[1]उपाय [2]उपासना और धर्मपरायणता का पुण्य फल [3]करना [4]उपचार करने वाले

**2**

इज़्ने-मरियम हुआ करे कोई
मेरे दुख की दवा करे कोई

शरओ-आईना पर मदार सही
ऐसे क़ातिल का ज़्या करे कोई

चाल, जैसे कड़ी कमां का तीर
दिल में ऐसे के जा करे कोई

बात पर वां ज़बान कटती है
वो कहें और सुना करे कोई

बक रहा हूँ जुनूं में ज़्या-ज़्या कुछ
कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई

न सुनो गर बुरा कहे कोई
न कहो गर बुरा करे कोई

रोक लो, गर ग़लत चले कोई
बज़्श दो गर ख़ता करे कोई

कौन है जो नहीं है हाजतमन्द[1]
किसकी हाजत रवा[2] करे कोई

ज़्या किया ख़िज्र ने सिकन्दर से
अब किसे रहनुमा करे कोई

जब तवक़्क़ो[3] ही उठ गई 'ग़ालिब'
ज़्यों किसी का गिला करे कोई

[1]जरूरतमन्द [2]पूरा करना [3]प्रत्याशा

## मोमिन ख़ाँ 'मोमिन'

(1800–1851)

असर उसको ज़रा नहीं होता
रंज राहतफ़ज़ा[1] नहीं होता

बेवफ़ा कहने की शिकायत है
तो भी वादा वफ़ा नहीं होता

ज़िक्र अग़ियार से हुआ मालूम
हर्फ़े-नासेह[3] बुरा नहीं होता

किसको है ज़ौक़े-तल्ख़[4] कामी लेक[5]
जंग बिन कुछ मज़ा नहीं होता

तुम हमारे किसी तरह न हुए
वरना दुनिया में ज़्या नहीं होता

उसने ज़्या जाने ज़्या किया लेकर
दिल किसी काम का नहीं होता

इज़्तेहाँ कीजिए मेरा जब तक
शौक़ ज़ोर-आज़मा[6] नहीं होता

एक दुश्मन कि चर्ख़[7] है न रहे
तुझसे ये ऐ दुआ नहीं होता

आह तूले-अमल[8] है रोज़ अफ़ज़ूँ[9]
गर्चे इक मुद्दआ नहीं होता

नारसाई[10] से दम रुके तो रुके
मैं किसी से ख़फ़ा नहीं होता

तुम मेरे पास होते हो गोया
जब कोई दूसरा नहीं होता

हाले-दिल यार को लिखूँ ज़्योंकर
हाथ दिल से जुदा नहीं होता

रहम गर ख़समे-जाने-ग़ैर[11] न हो
सबका दिल एक-सा नहीं होता

दामन उसका जो है दराज़[12] तो हो
दस्ते-आशिक़[13] रसा[14] नहीं होता

चार:-ए-दिल[15] सिवाय सब्र नहीं
सो तुज़्हारे सिवा नहीं होता

ज़्यों सुने अर्ज़े-मुज़्तरिब[16] मोमिन
सनम[8] आख़िर ख़ुदा नहीं होता

[1]राहत पहुँचाने वाला [2]ग़ैरों [3]उपदेशक का वचन [4]कड़वा स्वाद [5]लेकिन [6]ताक़त आज़माने वाला [7]चज़्कर, आसमान [8]लज़्बी आशा [9]अत्यधिक [10]पहुँच से बाहर [11]ग़ैर की जान का दुश्मन [12]लज़्बा [13]आशिक़ का हाथ [14]पहुँच [15]दिल का इलाज [16]दुखी व्यज़्ति की फ़रियाद [17]पत्थर की मूर्ति, प्रियतम

## नवाब मिर्ज़ा ख़ाँ 'दाग़' देहलवी

(1831–1905)

ले चला जान मेरी रूठ के जाना तेरा
ऐसे आने से तो बेहतर था न आना तेरा

अपने दिल को भी बताऊँ न ठिकाना तेरा
सबने जाना, जो पता एक ने जाना तेरा

तू जो ऐ ज़ुल्फ़ परीशान[1] रहा करती है
किसके उजड़े हुए दिल में है ठिकाना तेरा

आरज़ू ही न रही सुज़्हे-वतन की मुझको
शामे-ग़ुरबत[2] है अजब वज़्त सुहाना तेरा

ये समझ कर तुझे ऐ मौत लगा रज़्खा है
काम आता है बुरे वज़्त में आना तेरा

ऐ दिले-शेफ़्ता[3] में आग लगाने वाले
रंग लाया है ये लाखे[4] का जमाना तेरा

तू ख़ुदा तो नहीं ऐ नासेहे-नादाँ[5] मेरा
ज़्या ख़ता की जो कहा मैंने न माना तेरा

रंज ज़्या वस्ले-अदू[6] का जो तअल्लुक़ ही नहीं
मुझको वल्लाह हँसाता है रुलाना तेरा

काब:-ओ दैर[7] में या चश्मो-दिले-आशिक़[8] में
इन्हीं दो-चार घरों में है ठिकाना तेरा

तर्के-आदत से मुझे नींद नहीं आने की
कहीं नीचा न हो ऐ गोर[9] सरहाना तेरा

मैं जो कहता हूँ उठाये हैं बहुत रंजे-फ़िराक़[10]
वो ये कहते हैं बड़ा दिल है तवाना[11] तेरा

बज़्मे-दुश्मन से तुज़्हें कौन उठा सकता है
इक क़यामत का उठाना है उठाना तेरा

अपनी आँखों में अभी कौंद गयी बिजली-सी
हम न समझे कि ये आना है कि जाना तेरा

यूँ तो ज़्या आएगा तू फ़र्ते-नज़ाकत[12] से यहाँ
सज़्त दुश्वार है धोके में भी आना तेरा

दाग़ को यूँ वो मिटाते हैं, ये फ़रमाते हैं
तू बदल डाल, हुआ नाम पुराना तेरा

[1]बिखरे हुए [2]परेदस की शाम [3]आसज़्त हृदय [4]लाख (एक प्रकार का पदार्थ) [5]नादान उपदेशक [6]दुश्मन से मिलन [7]काबा और मन्दिर [8]प्रेमी के दिल और आँखों [9]क़ब्र [10]विरह का दुख [11]बड़ा [12]नज़ाकत की झोंक

## अल्लामा इक़बाल

(1877-1938)

फिर चराग़े-लाल:[1] से रौशन हुए कोहो-दमन[2]
मुझको फिर नग़मों पे उकसाने लगा मुर्ग़े-चमन[3]

फूल हैं सहरा में या परियाँ क़तार अन्दर क़तार
ऊदे ऊदे नीले नीले पीले पीले पैरहन[4]

बर्गे-गुल[5] पर रख गयी शबनम का मोती बादे-सुब्ह[6]
और चमकाती है उस मोती को सूरज की किरन

हुस्ने-बेपरवा को अपनी बेनक़ाबी के लिए
हों अगर शहरों से बन[7] प्यारे तो शह्र अच्छे कि बन

अपने मन में डूब कर चाहा सुराग़े-ज़िन्दगी
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन

तन की दुनिया मन की दुनिया सोज़ो-मस्ती[8] जज़्बो-शौक़
तन की दुनिया तने-दुनिया सूदो-सौदा मक्रो-फ़न

मन की दौलत हाथ आती है तो फिर जाती नहीं
तन की दौलत छाँव है, आता है धन जाता है धन

मन की दुनिया में न पाया मैंने अफ़रंगी का राज
मन की दुनिया में न देखे मैंने शैख़ो-बरहमन

पानी पानी कर गयी मुझको क़लन्दर की ये बात
तू झुका जब ग़ैर के आगे न मन मेरा न तन

[1]लाल : नामक फूल का दीपक [2]पहाड़ और उसकी तराई [3]बाग़ का पक्षी [4]पोशाक [5]फूल की पंखुड़ी [6]सुबह की हवा [7]वन, जंगल [8]दुख और मस्ती

## शौकत अली ख़ाँ 'फ़ानी' बदायूनी

(1879-1941)

तू और दरे-जानाँ मगर अपनी सी तू कर जा
क़िस्मत को रसाई नहीं मंज़ूर, मगर जा

हस्ती-ओ-फ़ना[1] राहतो-ईज़ा[2] से गुज़र जा
जब सरहदे-दिल सामने आ जाए, ठहर जा

भर ले निगहे-आख़िरे-बेरंग में हर रंग
दुनिया को भी लेता हुआ दुनिया से गुज़र जा

ख़ाली लिए बैठा हूँ तेरी बज़्म में साग़र[3]
मय[4] मेरे मुक़द्दर में नहीं, ज़ह्र ही भर जा

है मौत ही इक ज़िन्दगी-ए-दिल का सहारा
जीने की जो ऐसी ही तमन्ना है तो मर जा

सरकार मुहब्बत में ख़बर[5], बेअदबी है
ऐ नश्श:-ए-दीवानगी-ए-होश उतर जा

इक उम्र भर सज़ार[6] शबे-हिज्र[7] रहा था
ऐ ज़ुल्फ़े-सियह[8] मातमे-फ़ानी में बिखर जा

[1]अस्तित्व और अनस्तित्व [2]राहत और कष्ट [3]प्याला [4]शराब [5]होश [6]पर्दा डालने वाला [7]विरह की रात [8]काले बाल

## सैयद फ़ज़्लुल हसन 'हसरत मोहानी'

(1880–1951)

चुपके चुपके रात दिन आँसू बहाना याद है
हमको अब तक आशिक़ी का वो ज़माना याद है

बाहज़ाराँ इज़्तिराबो-सदहज़ाराँ इश्तियाक़[1]
तुझसे वो पहले-पहल दिल का लगाना याद है

बार-बार उठना उसी जानिब निगाहे-शौक़ का
और तेरा ग़ुर्फ़े[2] से वो आँखें लड़ाना याद है

तुझसे कुछ मिलते ही वो बेबाक हो जाना मेरा
और तेरा दाँतों में वो उँगली दबाना याद है

खैंच लेना वो तेरा पर्दे का कोना दफ़अतन[3]
और दुपट्टे से तेरा मुँह को छुपाना याद है

जान कर सोता तुझे वो क़स्दे-पाबोशी[4] मेरा
और तेरा ठुकरा के सर वो मुस्कराना याद है

तुझको जब तन्हा कभी पाना तो अज़-राहे-लिहाज़[5]
हाले-दिल बातों ही बातों में जताना याद है

जब सिवा मेरे तुम्हारा कोई दीवाना न था
सच कहो कुछ तुमको भी वो कारख़ाना[6] याद है

ग़ैर की नज़रों से बच कर सबकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़
वो तेरा चोरी-छुपे रातों को आना याद है

आ गया गर वस्ल की शब[7] भी कहीं ज़िक्रे-फ़िराक़[8]
वो तेरा रो रो के मुझको भी रुलाना याद है

दोपहर की धूप में मेरे बुलाने के लिए
वो तेरा कोठे पे नंगे पाँव आना याद है

आज तक नज़रों में है वो सोहबते-राज़ो-नेयाज़[9]
अपना जाना याद है तेरा बुलाना याद है

मीठी मीठी छेड़ कर बातें निराली प्यार की
ज़िक्रे-दुश्मन का वो बातों में उड़ाना याद है

देखना मुझको जो बरगश्त:[10] तो सौ सौ नाज़ से
जब मना लेना तो फिर ख़ुद रूठ जाना याद है

चोरी चोरी हमसे तुम आकर मिले थे जिस जगह
मुद्दतें गुज़री पर अब तक वो ठिकाना याद है

शौक़ में मेंहदी के वो बेदस्तो-पा[11] होना तेरा
और मेरा वो छेड़ना वो गुदगुदाना याद है

बावजूदे-अद्दुआ-ए-इज़्क़ा[12] हसरत मुझे
आज तक अहदे-हवस[13] का वो फ़साना याद है

[1]हज़ारों दुख और सैकड़ों हज़ार इच्छाएँ [2]झरोखा [3]सहसा [4]पाँव चूमने का इरादा [5]लिहाज़ के साथ [6] कार्यव्यापार [7]मिलन की रात [8]वियोग का ज़िक्र [9]राज़भरी बातों का साथ [10]अचानक [11]हाथ और पाँव दोनों के बिना [12]संयम की दुआ के बावजूद [13]उत्कंठा का दौर

## 'यास', 'यगानः' चंगेज़ी, अज़ीमाबादी

वास्तविक नाम : मिर्ज़ा वाजिद हुसैन मलिक
(1884–1956)

किस दिल से तर्के-लज़्ज़ते-दुनिया[1] करे कोई
वो ज़्वाब दिलफ़रेब कि देखा करे कोई

गुंचः[2] के दिल में कुछ न था इक आह के सिवा
फिर ज़्या शगुफ़्तगी[3] की तमन्ना करे कोई

दिल मुज़तरिब[4] निगाह गिरफ़्तारे-शशजिहत[5]
फ़रमाइए किधर का इरादा करे कोई

यादश-बख़ैरे-यादे-ख़ुदा[6] आ ही जाती है
अपनी तरफ़ से लाख भुलाया करे कोई

उसकी निगाहे-शौक़ के क़ुरबान जाइए
तुझ ऐसे बेनिशाँ को जो पैदा करे कोई

ताअत[7] हो या गुनाहे-पसे-पर्दः[8] ख़ूब है
दोनों का जब मज़ा है कि तन्हा करे कोई

बन्दे न होंगे जितने ख़ुदा हैं ख़ुदाई[9] में
किस-किस ख़ुदा के सामने सज्दः करे कोई

हुस्ने-यगानः[10] आप ही अपना हिजाब[11] है
हुस्ने-हिजाब दूर से देखा करे कोई

[1]सांसारिक आनन्द का त्याग [2]कली [3]खिलना [4]दुखी [5]छः दिशाओं से गिरफ़्तार [6]ख़ुदा की याद के बहाने से याद [7]अराधना [8]पीछे छुपा हुआ गुनाह [9]संसार [10]बेमिसाल हुस्न [11]पर्दा

आप कोई शे'र गुनगुना लीजिए, तो कई शे'र ऐसे हैं कि जिनमें, 'की' जो है वह ज़्यूज़िक है। वह लोक से आया है।

कवि को कभी हम इस बात का क्रेडिट नहीं देते कि वह ज़बान बनाता है, मैं शायर को इतना बड़ा नहीं मानता, ख़ुद उर्दू वाले कभी नहीं कहते कि ये ग़ालिब की ज़बान है, वे कहते हैं, ये हमारे घर की ज़बान है! मीर अनीस, ख़ुद यही कहते थे।

एक बार मीर सोज़ ने शे'र पढ़ा— मेरी निकसै है मेरे दिल से...

सौदा ने कहा कि, भई ये निकसै ख़ूब कहा, मेरे बचपन में कुछ डोमनियाँ गाती थीं तब सुना था ये लफ़्ज़ कि आज सुन रहा हूँ, भई मैं पूछता हूँ कि ज़्या बुराई है साहब, निकसै में? ब्रज भाषा में भी तो गली से आते कृष्ण को देख गोपियाँ पूछती थीं, ''कहाँ से कढ़ै हो?''

लिटरेचर कहते हैं, ब्रिलिएंट इल्लिटरसी को।

**—फ़िराक़ गोरखपुरी**

प्रस्तुति : मनीषा कुलश्रेष्ठ

## सय्यद इंशा अल्लाह ख़ाँ 'इंशा'

कमर बाँधे हुए चलने को याँ[1] सब यार बैठे हैं
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं

न छेड़ ऐ निक्हते-बादे-बहारी[2], राह लग अपनी
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं, हम बेज़ार बैठे हैं

तसव्वुर अर्श पर है और सर है पाये-साक़ी[3] पर
ग़रज़ कुछ और धुन में इस घड़ी मयख़्वार बैठे हैं

नसीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो
जहाँ पूछो यही कहते हैं, हम बेकार बैठे हैं

भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे 'इंशा'
ग़नीमत है कि हम सूरत यहाँ दो-चार बैठे हैं।

[1]यहाँ [2]बहार की ख़ूबसूरती [3]साक़ी के पाँव

## 'फ़िराक़' गोरखपुरी

वास्तविक नाम : रघुपति सहाय
(1896-1982)

बहुत पहले से उन क़दमों की आहट जान लेते हैं
तुझे ऐ ज़िन्दगी हम दूर से पहचान लेते हैं

तबीअत अपनी घबराती है जब सुनसान रातों में
तो ऐसे में तेरी यादों की चादर तान लेते हैं

हम-आहंगी[1] में भी इक चाशनी है इख़्तिलाफ़ों[2] की
मेरी बातें ब-उन्वाने-दिगर[3] वो मान लेते हैं

जिसे सूरत बताते हैं पता देती है सीरत का
इबारत देख कर जिस तरह मा'नी जान लेते हैं

रफ़ीक़े-ज़िन्दगी[4] भी अब अनीसे-वक़्ते-आख़िर[5] है
तेरा ऐ मौत हम ये दूसरा एहसान लेते हैं

फ़िराक़ अक्सर बदल कर भेस मिलता है कोई काफ़िर[6]
कभी हम जान लेते हैं कभी पहचान लेते हैं

[1]सह संकल्प [2]मतभेदों [3]किसी अन्य शीर्षक से (दूसरे बहाने से) [4]जीवनसाथी [5]आख़िरी वक़्त का मित्र [6]प्रियतम

## मख़्दूम मोहिउद्दीन

उसी चमन में चलें जश्ने याद-ए-यार करें
दिलों को चाक गरेबाँ को तार तार-करें

शमीम-ए पैरहन-ए यार[1] क्या निसार करें
तुझी को दिल से लगा लें तुझी को प्यार करें

सुनाती फिरती हैं आँखें कहानियाँ क्या-क्या
अब और क्या कहें किस-किस को सोगवार[2] करें

उठो के फ़ुरसते दीवानगी ग़नीमत है
क़फ़स[3] को ले के उड़ें गुल को हमकिनार[4] करें

कमाने अबरुएँ ख़ूबाँ[5] का बाँकपन है ग़ज़ल
तमाम रात ग़ज़ल गाएँ दीदे यार करें।

[1]प्रेमिका के उत्सव के समय पहने जाने वाले कपड़े [2]दुखी [3]पिंजड़ा [4]आलिंगन [5]भौहों की कमान की ख़ूबी।

**2**

दराज़[1] है शबे ग़म, सोज़-ओ-साज़ साथ रहे
मुसाफ़िरो! मय-ए मीना गुदाज़ साथ रहे

क़दम-क़दम पे अँधेरों का सामना है यहाँ
सफ़र कठिन है दमे शोला साज़ साथ रहे

ये कोह[2] क्या है ये दश्ते अलम फ़ज़ा[3] क्या है
जो इक तेरी निगह-ए-दिल नवाज़ साथ रहे

कोई रहे न रहे एक आह एक आँसू
बसद ख़ुलूस[4] बसद इक्तियाज़[5] साथ रहे

ये मयकदा है, नहीं सैर-ए दैर[6] सैर-ए हरम
नज़र अफीफ़[7] दिले पाकबाज़[8] साथ रहे।

[1]लम्बी [2]पर्वत [3]दुख के जंगल का वातावरण [4]निष्कपटताएँ [5]भेद, राज़ [6]मन्दिर [7]पवित्र दृष्टि [8]पवित्र दिल वाला।

**3**

तेरे दीवाने तेरी चश्म-ओ-नज़र से पहले
दार से गुज़रे राहगुज़र से पहले

बज़्म से दूर वो गाता रहा तन्हा-तन्हा
सो गया साज़ पे सर रख के सहर से पहले

इस अँधेरे में उजालों का गुमां तक भी न था
शोला रुह[1] शोला नवा[2] शोला नज़र[3] से पहले

कौन जाने के हो क्या रंग-ए सहर[4] रंग-ए चमन[5]
मयक़दा रक़्स में है पिछले पहर से पहले

निकहते[6] यार से आबाद है हर कुंजे क़फ़स
मिल के आई है सबा[7] उस गुले तर[8] से पहले।

[1]आत्मा की ज्वाला [2]अग्निमय स्वर वाला [3]आग भड़काने वाली नज़र [4]सुबह कर रंग [5]उपवन का रंग [6]सुगन्ध [7]सुबह की हवा [8]ताज़े फूल।

## फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

(1911–1984)

राज़े-उल्फ़त छुपा के देख लिया
दिल बहुत कुछ जला के देख लिया

और ज़्या देखने को बाक़ी है
आप से दिल लगा के देख लिया

वो मिरे हो के भी मिरे न हुए
उनको अपना बना के देख लिया

आज उनकी नज़र में कुछ हमने
सबकी नज़रें बचा के देख लिया

'फ़ैज़' तकमील-ग़म[1] भी हो न सकी
इश्क़ को आज़मा के देख लिया

आस उस दर से टूटती ही नहीं
जा के देखा, न जा के देख लिया

[1]दुख की पूर्ति

**2**

तेरे ग़म को जाँ की तलाश थी, तेरे जाँ-निसार चले गये
तेरी राह में करते थे सर तलब, सर-ए-रहगुज़ार चले गये

तेरी कज़-अदाई से हार के शब-ए-इन्तज़ार चली गयी
मेरे ज़ज़्त-ए-हाल से रूठ कर मेरे ग़मगुसार चले गये

न: सवाल-ए-वस्लन:[1] अर्ज़-ए-ग़म, न: हिकायतें[2], न: शिकायतें
तेरे अहद[3] में दिल-ए-ज़ार के सभी इख़्तियार चले गये

ये: हमीं थे जिनके लिबास पर सर-ए-रू सियाही लिखी गयी
यही दाग़ थे जो सजा के हम सर-ए-बज़्म-ए-यार चले गये

न: रहा, जुनून-ए-रूख़-ए-वफ़ा[4], ये रसन[5], ये: दार[6], करोगे ज़्या
जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था, वो गुनाहगार चले गये।

[1]मिलन का सवाल [2]शिकायती क़िस्से [3]हुकूमत [4]वफ़ादारी का जुनून [5]रस्सी [6]फाँसी का फन्दा

**2**

कब ठहरेगा दर्द ऐ दिल, कब रात बसर होगी
सुनते थे वो आएँगे, सुनते थे सहर होगी

कब जान लहू होगी, कब अश्क गुहर होगा
किस दिन तेरी सुनवाई, ऐ दीदा-ए-तर होगी

कब महकेगी फ़सल-ए-गुल, कब महकेगा मयख़ाना
कब सुज़्ह-ए-सुख़न[1] होगी, कब शाम-ए-नज़र होगी

वाइज़[2] है न: ज़ाहिद[3] है, नासेह[4] है न: क़ातिल है
अब शहर में यारों की किस तरह बसर होगी

कब तक अभी रह देखे, ऐ क़ामत-ए-जानानाँ
कब हश्र मुअय्यन है, तुझको तो ख़बर होगी

[1]शेर-ओ-शायरी की सुबह [2]धर्मोपदेश [3]संयमी [4]नसीहत करनेवाला

**3**

दोनों जहान तेरी मुहज़्बत में हार के
वो जा रहा है कोई शब-ए-ग़म गुज़ार के

वीराँ है मयक़दा, ख़ुम[1]-ओ-साग़र उदास है
तुम ज़्या गये के रूठ गये दिन बहार के

इक फ़ुर्सत-ए-गुनाह मिली, वो भी चार दिन
देखे हैं हमने हौसले परवरदिगार के

दुनिया ने तेरी याद से बेगाना कर दिया
तुझसे भी दिलफ़रेब हैं ग़म रोज़गार के

भूले से मुस्करा तो दिये थे वो: आज 'फ़ैज़'
मत पूछो वलवले दिल-ए-नाकर्दा कार[2] के

[1]मटकी [2]बेगुनाह जिसे सजा मिली

**4**

गुलों में रंग भरे बादे-नौबहार[1] चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले

क़फ़स[2] उदास है यारो सबा[3] से कुछ तो कहो
कहीं तो बह्‌रे-ख़ुदा[4] आज ज़िक्रे-यार चले

कभी तो सुबह तेरे कुंजे-लब[5] से हो आग़ाज
कभी तो शब सरे-काकुल[6] से मुश्कबार[7] चले

बड़ा है दर्द का रिश्ता ये दिल ग़रीब सही
तुज़्हारे नाम पे आएँगे ग़मगुसार[8] चले

जो हम पे गुज़री सो गुज़री मगर शबे-हिज्राँ[9]
हमारे अश्क तेरी आक़बत[10] सँवार चले

हुज़ूरे-यार हुई दज़्तरे-जुनूँ की तलब
गिरह में ले के गरेबाँ का तार-तार चले

मुक़ाम फ़ैज़ कोई राह में जँचा ही नहीं
जो कू-ए-यार[11] से निकले तो सू-ए-दार[12] चले

[1]वसन्त की हवा [2]पिंजरा [3]हवा [4]ख़ुदा के लिए [5]होंठ का कोना [6]लटों का सिरा [7]सुगन्धित [8]दुख दूर करने वाले [9]विरह की रात [10]परलोक [11]प्रियतम की गली [12]सूली की ओर

# उर्दू ग़ज़ल में भारतीय मानस की अभिव्यक्ति

शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी

*''... वर्षों के छन्द में, बेबाक खड़ी है कविता की आवाज़।''*

**—जोज़ेफ ब्राटस्की**

इस लेख का उद्‌देश्य यह स्पष्ट करना है कि उर्दू ग़ज़ल, अपने कुछ आलोचकों की अक़्सर सियासी दाँव-पेचों से प्रेरित टिप्पणियों के विपरीत, भारतीय मानस की अभिव्यक्ति है और भारतीय जीवधारा की काव्य-परज़्परा का एक हिस्सा है। उर्दू कविता की आवाज़, अगर इतनी विश्वसनीय न होती तो, वर्षों से बेबाक़ न खड़ी रह पाती, बल्कि उसको बहुत पहले ही ख़ामोश कर दिया गया होता, जिस तरह उन अधिकांश आंग्ल-भारतीयों की आवाज़ों को ख़ामोश कर दिया गया। भारत में बिताये गये अपने चालीस साल के काल में बिशप हेबर, आख़िर तक एक सच्चे ब्रिटिश ही बने रहे। अपनी अद्‌भुत अन्तर्दृष्टि और वातावरण की अनुभूति का आश्चर्यजनक रूप से सजीव चित्रण करने के बाद भी किपलिंग भारतीय नहीं थे, बल्कि एक उपनिवेशवादी अँग्रेज़ थे।

मैं उर्दू ग़ज़ल के उन समर्थकों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखता, जो उसकी भारतीयता का प्रमाण तथाकथित भारतीय सन्दर्भों— कोयल, आम का पेड़, वर्षा ऋतु, हिन्दू त्योहारों और रिवाज़ों आदि का काफ़ी ख़ुश होकर हवाला देते हैं। इसमें कोई शक़ नहीं कि किपलिंग को ये चीज़ें अगर भारतीय कवि नहीं बताते तो उर्दू ग़ज़ल भी केवल इन हवालों के भरोसे भारतीय होने का कोई दावा नहीं कर सकती, कवि का मन ही कविता को उसका सच्चा चरित्र प्रदान करता है। बेकमान कहते हैं— ''विषय-वस्तु नहीं, बल्कि चित्रकला के माध्यम से विषय-वस्तु की, सतह की अमूर्तता में परिणति मायने रखती है।'' यह कविता पर भी उतना ही लागू होता है।

ऐसे ही आधारों पर जार्ज लुई बोर्ख़ेस ने भी समकालीन लातिनी (लैटिन) अमरीकी साहित्य में यूरोपीय संरेखणों (alignments) का समर्थन किया है और कहा है कि इन संरेगणों के बिना इसका चरित्र सही अर्थों में राष्ट्रीय नहीं हो सकता। भारत में आने वाले मुसलमान, ख़ासकर ईरानी और तुर्क, जिन्होंने सर्वोच्च साहित्यिक स्तर पर दो संस्कृतियों के संस्करण को फलीभूत किया, जो वास्तव में पहले सच्चे अन्तर्राष्ट्रीय थे। फ़ारसी भाषी ईरानियों, तुर्कों, अरबों और पठानों के प्रभाव में उत्पन्न होने वाली उर्दू कविता ने सहज रूप में अरबी-ईरानी बिज़्बों का प्रचुर मात्रा में इस्तेमाल किया। ऐसी कविता लिखने वाले लगभग सभी कवि भले ही फ़ारसी, उर्दू और किसी स्थानीय या प्रादेशिक भाषा में लिखने वाले त्रिभाषी न हों, फ़ारसी और उर्दू में लिखने वाले द्विभाषी तो थे ही। उदाहरण के लिए दक़्कन के क़ुली क़ुतुबशाह ने उर्दू के उस शुरुआती रूप का इस्तेमाल किया जो उन मुस्लिम सन्तों और उनके अनुयायियों के साथ दक्षिण में आया, जो सुदूर मध्य पूर्व से आये थे और जो अरबी-ईरानी संस्कारों वाले थे। क़ुली क़ुतुबशाह विदेशी रूपों और रीतियों का उपयोग करते थे। किसी ईरानी की तरह उन्होंने नहीं लिखा और अरबी-ईरानी की तरह तो कभी नहीं।

असल में कोई भी महान कविता एक स्वत:स्फूर्त क्रिया द्वारा पा गये ज्ञान और विरासत में मिली परज़्परा से सचेत रूप में चीज़ों को ग्रहण करती है, उनका परिष्कार करती है और तात्कालिक उपयोग में लाती है। फिर भी वो इस अन्योन्याश्रित क्रिया के चलते अपने देशज चरित्र को बनाये रखती है और कई बार तो उसे पराकाष्ठा के स्तर तक ले जाती है। महान कविता पूरी तरह राष्ट्रीय नहीं होती। उसकी महानता उस क्षमता

में निहित होती है जिसके चलते वो बाहरी तत्त्वों को अवशोषित करती है, साथ ही उन्हें यह इजाज़त भी देती है कि वे अपनी सहजता को बरक़रार रखें। प्रादेशिक काव्य पर और ख़ासकर उसके रूपकीय बिम्बों पर, अरबी प्रभाव एक ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत करता है। कवि सुलभ मानस सुदूर स्थानों पर उपजे विचारों के कम्पन को महसूस करता है। कोई भी एक-दूसरे से दूर स्थित देशों के समसामयिक कवियों में उन प्रवृत्तियों को पहचान सकता है, जो आमतौर पर एक समान होती हैं। मैं यहाँ चीज़ों को देखने के तरीक़ों या फिर प्रेम और भय जैसी अमूर्त धारणाओं के चित्रण में समानता का ज़िक्र कर रहा हूँ।

उर्दू ग़ज़ल, काव्य-निकाय और व्यक्तिगत मनोभावों की अभिव्यक्ति दोनों के रूप में, परा-देशीय (extra-territorial) है। फिर भी उसकी स्वाभाविक भारतीयता को इस तथ्य से जाँचा जा सकता है कि उसके निकटतम पूर्ववर्ती और आदर्श, भारतीय शैली में लिखी जाने वाली फ़ारसी कविता या सबक-ए-हिन्दी को ईरानियों ने कभी मान्यता नहीं दी। सबक-ए-हिन्दी के सबसे बड़े प्रतिपादक मिर्ज़ा बेदिल आज भी ईरान में व्यवहारतया नहीं जाने जाते; ईरानी मूल के उसके प्रतिपादक, जिन्होंने भारत में काम किया था (साईब, उर्फी, नज़ीरी, अबू तालिब कलीम आदि) भी फ़ारसी कविता के शास्त्रीय मानदंडों में शुमार नहीं होते। भाषा की समानता और विषय की एकता के बावजूद इन दोनों काव्यधाराओं (ईरानी फ़ारसी और भारतीय फ़ारसी) की हमक और उनका वातावरण इतना अलग है कि फ़ारसी साहित्य का कोई भी अच्छा विद्यार्थी आसानी से किसी ईरानी ग़ज़ल को भारतीय ग़ज़ल से अलग कर सकता है।

यह सूचना बड़ी दिलचस्प है कि भारतीय शैली के अन्तिम महत्त्वपूर्ण कवि शेख़ अली हाज़ीन, जिनकी क़ब्र उजर भारत में वाराणसी में है, भारतीय फ़ारसी और उर्दू कवियों से वह नफ़रत करते थे। उन्हें इस बात से भी ज़रूर घृणा रही होगी कि उर्दू ग़ज़ल उस समय तक अपने लहजे और मिज़ाज में भारतीय शैली की फ़ारसी ग़ज़ल से कहीं ज़्यादा भारतीय बन चुकी थी। हाज़ीन ने घोषित किया था कि बेदिल और नसीर अली सरहिन्दी जैसे भारतीय शैली के फ़ारसी कवियों की रचनाएँ अर्थविहीन हैं। यह एक प्रसिद्ध (मगर पूरी तरह प्रामाणिक नहीं) कहानी है कि हाज़ीन ने अठारहवीं सदी के महान उर्दू कवि सौदा से कहा था कि उसका दरजा 'भारत में रद्दी का व्यापार करने वालों में बुरा नहीं है।' ईरान के शास्त्रीय मापदंड में ज़्यादातर भारतीय शैली के फ़ारसी कवि, यहाँ तक कि जो ईरानी मूल के हैं वो भी, कोई जगह नहीं पाते। इसका कारण यह है कि वो मन और संवेदना जो भारतीय शैली के ज़रिये बोलती है, वह ईरानी कम, भारतीय ज़्यादा है।

अत: उर्दू ग़ज़ल की भारतीयता का राज़ सबक-ए-हिन्दी, भारतीय शैली की फ़ारसी कविता में मिलेगा, क्योंकि उर्दू ग़ज़ल इस शैली की स्वाभाविक उत्तराधिकारी थी। हिन्दू-मुसलमान और अन्य लोग, जिन्होंने इस ग़ज़ल को लिखा, भिन्न हो सकते हैं, जितना कि निहायत अलग-अलग धार्मिक मतवादों के अनुयायियों को होना चाहिए, मगर अपनी कविता में उन्होंने एक ऐसे मानस को प्रकाशित किया था जो अपने मिज़ाज में, जीवन और विश्व के प्रति अपने रुख़ में बुनियादी तौर पर भारतीय था। इस कवि व्यक्तित्व ने अपने पूर्ववर्ती, कुछ तयशुदा ईरानी काव्यरीतियों और रूपों के भीतर काम किया और साथ-साथ भारतीय काव्यरीतियों और रूपों को उस ईरानी मुखौटे, जिसे उसने अपनाया था, के लिहाज़ से रूपान्तरित किया।

यह ज़रूरी है कि इस शैली पर एक संक्षिप्त निगाह डाली जाए।

अब जबकि भारतीय शैली को कुछ प्रतिष्ठा मिल गयी है, उन कारणों से जो शायद पूरी तरह साहित्यिक नहीं हैं, उसकी जड़ों को ख़ुद ईरान में ही खोजने के प्रयास किये जा रहे हैं। कार्ल जहान् (Karl Jehan) की इतिहास परियोजना में योगदान देने वाले ख़ुसरो को इसके आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। उसके बाद सम्भवत: ख़ाक़ानी को इस श्रेय से नवाज़ा गया है। ईरानी आलोचक अली दश्ती ने इस कवि के ऊपर लिखी अपनी किताब में इसके बारे में लम्बे-लम्बे तर्क दिये है। जो भी हो, हर कोई इस बात से इत्तेफ़ाक रखता है कि यह शैली सत्रहवीं सदी के भारत में पूर्ण रूप से फली-फूली। जो बात मैं ज़ोर देकर कह रहा हूँ वह यह है कि सबक-ए-हिन्दी की बुनियादी शैलीगत विशेषताएँ भारतीय दृष्टिकोण और भारतीय रीतियों से क़रीबी तौर से जुड़ी हुई हैं।

अलंकरण, अनेकार्थकता, श्लेष बहुत सूक्ष्म शब्द संरचना के प्रति लगाव को और उस प्रवृत्ति को जिसमें शे'र को दो भागों में बाँटा जाता है। एक में, दलील या प्रतिज्ञप्ति प्रस्तुत की जाती है और दूसरे में, उसको सिद्ध किया जाता है (यह प्रवृत्ति ब्रजभाषा के दोहों में अक्सर पायी जाती है)। इसे भारतीय शैली की मुख्य विशेषता माना गया है। ख़्वाजा अहमद फ़ारूक़ी ने ईरानी आलोचक अली अकबर शहाबी खुरासानी को उद्धृत किया है, जो भारतीय शैली का वर्णन 'विचार में विचार के ग्रन्थन, सूक्ष्म प्रकरणों, जटिल रूप में गहन प्रत्ययों, अस्वाभाविक अजब धारणाओं... अतिशयोक्ति की पराकाष्ठा, अर्थहीन प्रयोग और अश्लाघ्य काल्पनिक बिम्बों' के रूप में करते हैं। ये सारे लक्षण अँग्रेज़ी के मेटाफिज़िकल कवियों की विशेषताओं से मिलते-जुलते हैं। अत: भारतीय शैली के कवियों की कल्पनामूलक युक्ति में जिस चीज़ की प्रधानता है, उसे रैन्सम (Ransam) के शब्दों में, 'चमत्कारवाद' (miraculism) कहा जा सकता है। इसका तात्पर्य उस क्षमता से है, जो साधारण अनुभवों में नये और जटिल अनुभवों के रूपान्तरित कर देती है। सेल्डन रोडमैन कहते हैं कि, ''महान चित्रकारों के पास ऐसी क्षमता होती है, जिससे वे विश्वसनीयता से चित्रण करते हैं, स्मरणशीलता से संघटित करते हैं और उन बिम्बों को रचते हैं, जिनकी पहले कभी कल्पना ही नहीं की गयी होती, बल्कि जो तत्काल उनकी अपनी रचना के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती हैं।'' कुछ ऐसी ही रचनात्मकता मेटाफिज़िकल कवियों और भारतीय शैली के फ़ारसी तथा उर्दू कवियों में दिखाई देती है।

ईरानी मन, जो सादगी पसन्द करता है, जो स्पष्टता के कारगर प्रभावों की रचना करते समय पराकाष्ठा को प्राप्त होता है, उन जटिलताओं और शाब्दिक उलझनों के साथ सहज नहीं रह पाता, जिन्हें भरतीय दिमाग़ पसन्द करता है। यहाँ तक कि अली दश्ती भी, जो अली अकबर शहाबी और कार्ल जहान् के सहयोगी लेखकों की तुलना में अधिक हमदर्दी रखते हैं, भारतीय शैली को 'रूपकों और वस्तुओं की लाक्षणिक संरचनाओं' से लदा पाते हैं।

यह कहते हुए मुझे ज़रा भी संकोच नहीं होता कि एक भारतीय होने के नाते मैं इनमें से सब नहीं, मगर अधिकांश बातों को पसन्द करता हूँ। मुझे बड़ी ख़ुशी होती है, लेकिन साथ ही किसी ईरानी के ख़ीझने की कल्पना भी अच्छी तरह कर सकता हूँ। जब मैं कई ऐसे शे'रों से मुख़ातिब होता हूँ, जैसे कि साईब का ये शे'र है—

*वक़्त-ए-आँकस ख़ुश के चूँ बर्क़ अज़ गरीबाने वजूद*
*सर बरूँ आवुर्द ओ बर बज़-ए जहाँ ख़दीद-ओ रफ़्त*

(भावार्थ— वक़्त उसका ख़ुशी से गुज़रा जो बिजली की तरह, अस्तित्व के गिरेबाँ से/ अपना सर दिखाकर, दुनिया पर हँसा और चला गया।)

इस शे'र का विषय बिजली या बर्क़ है, जो जब बादल या अब (जिसे निराकार और इसीलिए अस्तित्व के समतुल्य माना जा सकता है ज्योंकि निराकार ही अस्तित्व के आकार का स्रोत है) से होकर गुज़रती है तो लगता है, मानो बादल को चीर कर बाहर आयी हो। अपनी चमक के चलते बिजली हँसती हुई प्रतीत होती है (फ़ारसी में चमक उन विशेषणों में से है जिन्हें अज़्सर हँसी के लिए प्रयुज़्त किया गया है)। यह ग़ालिब की याद दिलाता है जो दो सौ साल बाद उर्दू में लिख रहे हैं—

*अब रोता है के बज़्मे तरब आमादा करो*
*बर्क़ हँसती है के फ़ुर्सत कोई दम है हमको*

दौ सौ साल के लाक्षणिक अज़्यास और शज़्द यह सब एक ऐसी संरचना का निर्माण करता है, जिसकी जटिलता और प्रतिभा इस शे'र के माध्यम से चमकती है। बादल को बरसात की बूँदों से भरा होने के कारण, रोते हुए कल्पित किया गया है। मगर भारत में बारिश तपा डालने वाली गर्मी से राहत भी दिलाती है और धरती को एक नयी सर्जना-शज़्ति से अनुप्राणित करती है। इस तरह बादल, वर्षा के कारण, जीवन के पुनर्स्थापन, उसके आनन्द और उसकी महिमा का प्रतीक है। बादल का रोना उसके दुख को नहीं बल्कि अपने अर्क को धरती पर उँड़ेल देने की उसकी गुज़ारिश को दर्शाता है। बिजली की चमक की तरह सभी चीज़ें नश्वर हैं, अन्तर है तो बस दर्ज़े का, तरीक़े का नहीं। ग़ालिब क्षण के लिए 'दम' का इस्तेमाल करते हैं; 'दम' का मतलब साँस, लचीलापन, धार ही होता है। 'दम' शज़्द की लगभग ये सारी व्यंजनाएँ ग़ालिब के शे'र पर लागू होती हैं।

मैं उज़्मीद करता हूँ कि मुझे यहाँ ज़ोर देकर यह कहने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि ग़ालिब का शे'र, हालाँकि उसके बिज़्ब-विधान और रीतियाँ फ़ारसी हैं और भारत के फ़ारसीपन बहुत ज़्यादा है, लेकिन बादल-बिजली के प्रतीक भारतीय हैं। एक ईरानी के लिए बादल का मतलब निराकार या आद्यास्तित्व है। एक भारतीय बादल को पुनर्स्थापन और रचनात्मक प्रस्फुटन के रूप में देखता है। इसके अलावा उर्दू में बादल और बिजली के क्रमशः पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होने से सौन्दर्य बढ़ गया है। फ़ारसी में पुल्लिंग-स्त्रीलिंग का बोध नहीं होता है।

साईब भले ही भारतीय शैली के प्रमुख प्रतिपादक हों, मगर वे तब्रीज़ से आये एक ईरानी ही थे और शज़्द तथा विचार की सभी जटिलताओं को व्यज़्त करने की भारतीय मानस की क्षमता उनके पास नहीं थी। ईरानी स्वभाव चीज़ों की सतह को परखता है और कविता में अमूर्त विचारों का निषेध करता है। इसके विपरीत, भारतीय मानस हमेशा ज़्यादा से ज़्यादा जटिल बनाने के लिए चीज़ों का सरलीकरण करता है। शरीर और आत्मा की, अस्तित्व के अनस्तित्व होने की, वास्तविकता का आभास देने वाली सभी चीज़ों को यथार्थ अस्तित्व रखने वाली छायाएँ मानने की, सभी चीज़ों को यथार्थ मानने की ज़्योंकि उनमें ईश्वर का वास है, सभी चीज़ों को अवास्तविक मानने की ज़्योंकि केवल ईश्वर ही वास्तविक है, इन सभी प्रसिद्ध धारणाओं को देखें। ये सज़ी धारणाएँ उर्दू ग़ज़ल के कवि को प्रिय हैं ज़्योंकि उसने चिन्तन की भारतीय विरासत को प्राप्त किया है। अपनी ग़ज़ल में मौलना रूमी इन धारणाओं से ज़्यादा वास्ता नहीं रखते, यहाँ तक कि अपनी 'मसनवी' में भी वे इतना चिन्तन नहीं करते, जितना कि उर्दू ग़ज़ल का शायर करता है। ईरानी ग़ज़ल के महानतम् शायर हाफ़िज़, जिनको हमेशा से एक महान सूफ़ी का दर्ज़ा दिया गया है, के पन्ने भी उस अस्तित्व विषयक चिन्तन से वस्तुतः ख़ाली हैं; जो मीर, दर्द, ग़ालिब, आतश और दूसरे कम महज़्वपूर्ण कवियों के यहाँ मिलता है।

मैं यहाँ कहना चाहता हूँ कि ईरानी ग़ज़ल के महानतम् शायरों ने विचार की पेंचीदगियों को अनदेखा किया है और उनकी रहस्यवादी धारणाएँ भी आनन्दातिरेक, रहस्य का उद्घाटन करने वाली दृष्टि, सूफ़ी अवसाद, अन्तिम लक्ष्य तक न पहुँच पाने की निराशा से प्रफुल्लित कर देने वाला सज़्पूर्ण एकीकरण, इन सबके लिहाज़ से, अवसर के अनुसार सीधे सपाट तरीक़े से अभिव्यज़्त हो जाती है, ऐसा नहीं है कि ईरानी शायर ख़ुद अपने ढंग से महान नहीं है। बात सिर्फ़ इतनी-सी है कि लाक्षणिक और जटिल अभिव्यज़्ति का साधारण अभाव दोहराव को अपरिहार्य बना देता है और विषय के विस्तार को सीमित कर देता है। भारतीय कवियों ने ईरानी विषयों का प्रयोग किया, लेकिन शज़्द-क्रीड़ा और वाचिक बिज़्बों द्वारा उन्हें वैविध्य की ख़ूबी प्रदान की। उन्होंने अपने चिन्तन-कौशल को स्वच्छन्दता से प्रवाहित होने दिया और कुछ ऐसा रचा जो समृद्ध और अनूठा था, कुछ ऐसा जो भारतीय दिमाग़ को अभिव्यज़्त करने वाला था, लेकिन जिसे ईरानी स्वीकार नहीं कर सकते थे।

मृत्यु के बाद के जीवन के विषय में उर्दू ग़ज़ल की तल्लीनता इस विकास के अनेक उदाहरण में से एक है। भारतीय शैली की ईरानी ग़ज़ल भी, बेदिल और ग़ालिब को छोड़कर, इस ठेठ भारतीय विषय को कभी-कभार की छूती है। उर्दू ग़ज़ल में यह चिन्तन अपनी सज़्पूर्णता में आता है— मृत्यु के बाद जीवन है; मृत्यु के बाद जीवन नहीं है; मृत्यु होती ही नहीं है; जीवन नहीं है, इसलिए मृत्यु भी नहीं है; मृत्यु के बाद पुनर्जन्म है; पुनर्जन्म है लेकिन दूसरे रूप में; जीवन और मृत्यु एक दूसरे का ही रूप हैं जो एक चक्र में बँधे हैं, कुछ उदाहरण देखिए—

*मौत का वक़्फ़ा इस रस्ते में ज़्यों है मीर समझते हो*
*हारे माँदे राह के हैं हम लोग कोई दम सो ले हैं*

—मीर

*उभरी नहीं है लाश कभी डूबकर यहाँ*
*बदला नहीं है रुख़ कभी दरिया-ए-ज़्वाब का*

—जफ़र इक़बाल

*अब तो घबरा के ये कहते हैं कि मर जाएँगे*
*मर के भी चैन न पाया तो किधर जाएँगे*

—ज़ौक़

ये पंक्तियाँ उर्दू कविता की ढाई शताब्दियों को आवृत्त करती हैं और मृत्यु के विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को और उनकी अभिव्यक्ति के विशाल वैविध्य को इंगित करती हैं।

अलंकरण के तत्त्वों का प्रयोग करने में भारतीयों ने हमेशा प्रति-साधारणीकरण का आस्वादन किया है— कविता में पेचीदा शब्द क्रीड़ा और अलंकरण के रूप में तथा स्थापत्य में जटिल प्रस्तर चित्रों, अलंकृत कृतियों और उभारों के रूप में। इस सन्दर्भ में हिन्दू मन्दिरों का अध्ययन लाभदायक होगा। हालाँकि विवरणों में वे काफ़ी भिन्नता रखते हैं, मगर अलंकरण के दोनों प्रकार बुनियादी ढाँचे को ढाँककर रखने और एक ही वक़्त में बहुत-सी चीज़ों को व्यंजित करने की चेष्टा करते हैं। भारतीय मुसलमान इन दोनों परम्पराओं से लाभान्वित हुआ और उसने एक ऐसे काव्य की रचना की जिसमें सर्वोत्तम तो बहुत ज़्यादा जटिल और अर्थवान था ही, निकृष्ट भी कई बार भाषा के सूक्ष्म घुमावों के लालित्य से युक्त था। शब्दों में श्लेष का संवर्द्धन किया गया; जिसे ढीले-ढाले अन्दाज़ में मुरआत-उल-नज़ीर, यानी समान संयोजनों और अर्थों (यहाँ 'अर्थ' की अँग्रेज़ साहित्यकार कोलरिज के द्वारा प्रतिपादित धारणा का अनुसरण किया गया है) वाले शब्दों का इस्तेमाल, की संज्ञा दी जा सकती है।

ईरानी काव्य में शब्द क्रीड़ा क़सीदा या गद्य तक सीमित था। प्रगीत या ग़ज़ल के बारे में स्वीकृत मत यही था कि ये 'दिल से उठती है और दिल में उतरती है'। अत: यह एक भाव-सहज और भावनाप्रधान उक्ति है। फिर भी बारहवीं सदी के ईरानी कवि और भाषाशास्त्री रसीद-ए-वतवत ने अपनी 'हकैक़ उल-सेहर फी दक़ैक उल-शेर' (काव्य की बारिक़ियों में जादू का बग़ीचा) में रूपक की जो परिभाषा दी थी, वे उसे आश्चर्यजनक रूप से बड़े सादे अन्दाज़ में प्रस्तुत करती है। ईरानी पुरखों से अपना नाता अक्षुण्ण बनाये रखने की कोशिश में रूपक की अवांछनीयता की वकालत को उर्दू प्रबन्ध 'कशीफ उल-हक़ैक' में देखा जा सकता है जिसे उन्नीसवीं सदी के उर्दू कवि और भाषाशास्त्री इमदारद ईमाम असर ने लिखा था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी महान उर्दू कवि अपनी भारतीय पृष्ठभूमि के प्रति सच्चे बने रहे और शब्द क्रीड़ा की उच्छृंखलता के आनन्द का उपयोग करते रहे। ग़ालिब उनकी शायरी में शाब्दिक कलाबाज़ी, जिसमें 'मुरआत' का सबसे निम्न रूप ज़िला' भी शामिल है, अपने सम्पूर्ण विस्तार में मिलती है और मीर श्लेष से काफ़ी लगाव रखते थे। अलंकारों और शब्द-क्रीड़ा के इस्तेमाल के फ़ारसी और उर्दू तरीक़े में मुख्य अन्तर ये है कि उर्दू ग़ज़ल के महान कवियों ने शब्द क्रीड़ा का प्रयोग आशय में विस्तार या वृद्धि लाने के लिए किया है; वे उसे शे'र के ढाँचे में इस तरह बुन देते हैं कि इस तत्त्व को हटा देने का मतलब शब्द क्रीड़ा के अपेक्षाकृत आम तौर पर मिलने वाले आनन्द को नकारना ही नहीं, बल्कि अर्थ को तबाह कर डालना है। महान कवि हमेशा नयी अभिव्यक्तियों की तलाश में शब्दों के ऐसे अप्रतिम संयोजनों का निर्माण करने में ज़्यादातर सफल रहे हैं। उनमें कई बार ऐसी महत्तम श्रेष्ठता पायी जाती है, जो नये आशयों को जन्म देती है और उस ख़ूबी को उत्पन्न करती है, जिसे विशुद्ध रचनात्मक तनाव कहा जा सकता है। यहाँ तक कि इक़बाल, जो बार-बार आग्रहपूर्वक कहा करते थे कि वे कविता के तथाकथित सौन्दर्य की कोई परवाह न कर विचार और कर्म का सन्देश देने में अपेक्षाकृत अधिक दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें भी जाने-अनजाने या यों कहिए कि इसके बग़ैर काम नहीं चल सकता था, शब्द क्रीड़ा और वाचिक बाज़ीगरी की सम्पूर्ण परम्परा को आत्मसात किया था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी महान उर्दू कवि अपनी भारतीय पृष्ठभूमि के प्रति सच्चे बने रहे और शब्द क्रीड़ा की उच्छृंखलता के आनन्द का उपयोग करते रहे। ग़ालिब उनकी शायरी में शाब्दिक कलाबाज़ी, जिसमें 'मुरआत' का सबसे निम्न रूप ज़िला' भी शामिल है, अपने सम्पूर्ण विस्तार में मिलती है और मीर श्लेष से काफ़ी लगाव रखते थे।

इक़बाल का ज़िक्र मुझे उर्दू ग़ज़ल के बिम्ब-विधान की भारतीयता की याद दिलाता है। वे, ग़ालिब की तरह, उस भारतीय मानस का दिलचस्प उदाहरण हैं, जो अत्यधिक फ़ारसीकृत मुखौटे के ज़रिए अपने को अभिव्यक्ति करता है। मैं कुछ सबसे ज़्यादा प्रभावशाली चीज़ों का ज़िक्र करूँगा। जैसे— सियह मस्त : काला और मदोन्मत्त; मस्ती में धुत्त; कालेपन (मदिरा को काले रंग का पानी भी कहते हैं) के असर से धुत्त, काला और मस्त (हाथी की तरह); बादल मदोन्मत्त है क्योंकि वह पानी से भरा है और वह मयनोश की तरह लुढ़कता है; बादल हाथी की तरह है क्योंकि हाथियों की चाल भी लुढ़कती होती है, पहाड़ों पर हाथी काले और उन्मत्त होते हैं क्योंकि हाथी बादलों की तरह गरजते और चिंघाड़ते हैं, हाथियों का झुंड बादल की तरह विशाल समूह वाला होता है।

पैमाना-ए-पैमाँ (संयम के बन्धन का प्याला) : बन्धन न पीने के लिए है, फिर भी मदिरा के प्याले को इसका प्रतीक बनाया गया है; मदिरा के प्याले पर किसी बन्धन के लिए अहद करना आम है; संयम का बन्धन (पैमाँ, जिसका शाब्दिक अर्थ 'वायदा' है) एक स्वर जुड़ जाने पर पैमाना, 'प्याला' बन जाता है। चूँकि पैमाना, पैमां से एक स्वर बड़ा होता है, अत: मदिरा के प्याले की अहमियत संयम के अहद् से ज़्यादा है।

संगे शीशा अर्थात् शीशे का पत्थर— शीशा का मतलब पीने का,

विशेषकर मदिरा पीने का, बर्तन भी है; पत्थर का प्रयोग शीशे को चकनाचूर करने में किया जाता है; पीने के लिए शीशे का इस्तेमाल करके मैंने अपने बन्धन के प्याले को चकनाचूर कर दिया होता। अतः मेरा शीशा पत्थर भी है। पत्थर उन तत्त्वों में से एक है, जिसका उपयोग शीशे के बर्तन को तैयार करने में होता है; मदिरा के शीशे के प्याले पर संयम के बन्धन का अहद् किया है। उसे सिर्फ़ एक और शीशे के प्याले द्वारा तोड़ा भी जा सकता है (बशर्ते पहाड़ों की तरफ़ से साँवला और उन्मत्त बादल उभरे)।

हम यह देख सकते हैं कि कैसे भारतीय मानस ख़ुद को बिल्कुल अपने तरीक़े से उद्घाटित करता है। ऐसी कविता केवल उसी के द्वारा लिखी जा सकती है, जो भारतीय संस्कृति में पूरी तरह रम गया हो। उर्दू ग़ज़ल को तैयार करने में भारतीय और इस्लामिक तत्त्व एकाकार होकर एक सच्ची भारतीय-मुस्लिम चेतना में परिणत होते हैं।

मैंने कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रति भारतीय दृष्टि की तथाकथित 'स्त्री-सुलभता' का ज़िक्र किया है। अली दश्ती कविता की खुरासानी शैली की 'पुरुष सुलभता' पर ज़ोर देते हैं और इस बात पर क़ायम रहते हैं कि भारतीय शैली मन की 'निश्चेष्टता' को उद्घाटित करती है। इसका आशय अकर्मण्यता नहीं है, बल्कि 'स्त्रियोचित' ग्रहणशीलता और आभ्यन्तरिकता है जो 'पुरुषोचित' उद्यमशीलता और बहिर्मुखता की प्रतिपक्षी है। गम्भीर और साथ ही भावुक आत्मनिरीक्षण तथा अपने दुखों और विफलताओं के शारीरिक, मगर साथ ही साथ जटिल शाब्दिक शिल्प में मग्न विस्तृत विश्लेषण से युक्त लहजे के प्रति उर्दू ग़ज़ल के कवियों वाला झुकाव, फ़ारसी में बिल्कुल नहीं पाया जाता। इसके विपरीत संस्कृत में अलंकार (जिसमें शब्द क्रीड़ा शामिल है) के प्रति लगाव अभिभूत कर देने की हद तक स्पष्ट होता है।

हाली और उनके समर्थक वहाँ ग़लती करते हैं, जहाँ वे यह समझने में विफल रहते हैं कि उर्दू ग़ज़ल भारतीयों द्वारा लिखी गयी है, ईरानियों द्वारा नहीं। भारतीय काव्य-परम्परा में, ईरानी काव्य-परम्परा की विरोधी दो धाराएँ, कभी-कभी प्रत्यक्ष और स्पष्ट, मगर अक्सर गूढ़ और अप्रत्यक्ष, हमेशा प्रवहमान रही हैं।

इनमें पहली धारा उस महत्त्वपूर्ण हैसियत की है जो हमारे देश में तमाशों और सार्वजनिक प्रदर्शनों को मिली है। हालाँकि भारत में साहित्यिक नाटकों का चलन बहुत पहले ही ख़त्म हो चुका था, नृत्य समारोहों और कथकली जैसे आनुष्ठानिक नृत्य-नाटिकाओं के रूप में रूढ़ शैली के नाट्य-रूप तथा लोक-नाट्य के विविध रूप आज भी भारत में फल-फूल रहे हैं यह ध्यान देने लायक़ है कि मुशायरा— ऐसा काव्य-आयोजन जिसमें कवि सार्वजनिक पाठ करता है उस समय पैदा और विकसित हुआ जब भारतीय शैली के कवियों ने देश में अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित किया था। अपने सम्पूर्ण विषाद और अजनबीपन के बोध में, उर्दू ग़ज़ल एक ऐसा कला माध्यम थी जिसका सार्वजनिक स्तर पर प्रदर्शन होना था। नाटकीय प्रहसन का तत्त्व और रूढ़ अंकन ग़ज़ल और मर्सिया में देखने को अधिक मिलता है।

भारतीय परम्परा की दूसरी धारा जिस पर हाली और उनके अनुयायी ध्यान देने में असफल रहे हैं बहुत ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है और वास्तव में उन विशेषताओं से जुड़ी है, जिनसे हाली अत्यधिक नफ़रत करते हैं। इसमें कोई शक़ नहीं कि उर्दू ग़ज़ल के कवि द्वारा धारित कलात्मक वेश-रूप की दयनीयता के किसी हाफ़िज़ या किसी रूमी या किसी सादी की 'पुरुषोचितता' के सन्दर्भ में एक अप्रीतिकर विषमता को उत्पन्न किया। लेकिन मुहम्मद हसन अस्करी ने माना है (हालाँकि एक भिन्न सन्दर्भ में) कि, प्रत्येक जनमानस के पास अपनी ख़ुद की काव्य-रीतियों का निर्धारण करने का अधिकार होता है और भारतीय प्रेम-काव्य में, चाहे वो धार्मिक हो या सांसारिक, अक्सर नायक स्त्री वेश-रूप धारण करता है। यह लोक की क्षेत्रीय बोलियों में लिखी कविता के लिए या उन भाषाओं के लिए जो लोक-भाषा के रूप में शुरू हुई थीं, विशेष रूप से सही है। यहाँ तक कि संस्कृत और तमिल जैसी विकसित साहित्यिक भाषाओं में भी प्रेम-काव्य का एक बड़ा निकाय या तो स्त्री वेशरूपधारी नायक से युक्त है या एक स्त्रियोचित दृष्टिकोण से लिखा गया है। यहाँ तक कि बाबा फ़रीद, सुल्तान बहू, बाबा नानक, अमीर ख़ुसरो और उनके जैसे दूसरे मध्यकालीन मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम सूफ़ियों द्वारा लिखी गयीं कविताओं में नायक कभी-कभी स्त्री है, कभी-कभी आत्मा की तुलना ईश्वर या अन्तिम सत्य या ज्ञान को वर मानकर नववधू से की गयी है। भारतीय कविता में शास्त्रीय प्रणयी का दर्जा सत्रहवीं सदी की महिला सन्त मीरा को मिला है। उनके भक्ति-गीत, जिनमें प्रेमातुर महिलाओं की भाषा का इस्तेमाल किया गया है, पूरे उत्तर भारत में जाने जाते हैं और हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों के द्वारा गाये जाते हैं। भारतीय प्रेम-काव्य में वह स्त्री ही है जो सामान्यतः प्रेम की पीड़ा को भोगती है, बदनामी और अपयश का सामना करती है, तड़पती है, 'परछाईं की तरह क्षीणकाय हो जाती है और मर जाती है।' कृष्ण सम्प्रदाय की अपनी एक महान कविता में, चौदहवीं सदी के संस्कृत कवि जयदेव ने कृष्ण को अपनी प्रिया राधा के लिए तड़पते हुए 'अपने बेचैन हाथों से गोपियों की छातियों को मसलते हुए' चित्रित किया है, वियोग और पार्थक्य में भी, पुरुष के साथ तो अक्सर उसको चाहने और प्रेम करने वाली स्त्रियाँ होती हैं, मगर स्त्री के साथ कोई नहीं होता।

अरबी काव्य में प्रणयी निरपवाद रूप से पुरुष है। फ़ारसी काव्य में प्रणयी को पुरुष के रूप में माना गया है, भले ही प्रिय स्त्री हो सकती है, या कोई ख़ूबसूरत लड़का। कई बार प्रिय की लैंगिक पहचान को जानबूझ कर अस्पष्ट रखा गया है। लेकिन भारतीय शैली की फ़ारसी ग़ज़ल के कवियों में वह ज़्यादा स्पष्ट बन गयी है, उर्दू ग़ज़ल में उन्हें उत्कंठा के साथ अवशोषित किया गया है क्योंकि उसके कवि अपने भारतीय स्वभाव के चलते, स्त्री वेशरूप को कवि के लिए उपयुक्त माध्यम के तौर पर अपनाने को पहले से ही प्रस्तुत थे। अतः ख़ून के आँसू बहाने के, आँखों का दिल के लहू की रंगत वाली दुख की नदी बनने के, प्रणयी के तबाह होने और मुरझाने तथा दुबले होने के, अत्यधिक ईर्ष्या तथा प्रिय पर अपने सम्पूर्ण अधिकार के दावे के विषयों को, जो भारतीय शैली की फ़ारसी ग़ज़ल को ईरानी ग़ज़ल से अलग करते हैं, उर्दू ग़ज़ल ने स्वीकारा, भावप्रवण बनाया और गहराई प्रदान की।

उर्दू ग़ज़ल में प्रिय को कभी स्त्री के रूप में, कभी लड़के के रूप में, लेकिन अधिकांशतः अस्पष्ट शब्दों में चित्रित किया गया है। बीसवीं

सदी में जब प्रिय के लिए कवियों ने स्त्रीलिंग का इस्तेमाल शुरू किया तो कइयों की त्यौरियाँ चढ़ीं और आज ज़ी चढ़ रही हैं। फ़ैज़, जिन्होंने अपनी ग़ज़ल की सियासी अन्तर्वस्तु को पारज़्परिक बिज़्ब-विधान का जामा पहनाया और इस तरह पुराने ढंग के आलोचकों के लिए अधिक आसानी से ग्राह्य बन गये। बालों, होठों, आँखों और कई बार तो वक्षों की बात करना जारी रखा, साथ ही प्रिय के लिए स्त्रीलिंग का इस्तेमाल करने से सावधानीपूर्वक बचते रहे (हालाँकि अपनी नज़्मों में उन्होंने ऐसी कोई झिझक नहीं दिखाई)। ग़ज़ल के समर्थक इसका विश्वसनीय जवाब खोजने में असफल रहे हैं।

यह सच है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में उज़्री भारत के शहरी समाज में गणिकाएँ महज़्वपूर्ण भूमिका अदा करती थीं और यह भी कि कमसिन लड़कों से लगाव रखने का रिवाज़ आम था। बेशक़ उर्दू ग़ज़ल के कवि का 'स्त्री' वेश रूप एकान्तिक और निरपेक्ष नहीं है। शहरी सज़्यता ने, विदेशी परिष्करणों के सज़्पर्क में, जो तरक़्क़ी प्राप्त की थी, उसके चलते वह ऐसा कर भी नहीं सकता था। लेकिन मुज़्य लहजा भारतीय और भारतीय अर्थ में स्त्रियोचित बना रहा।

इसमें व्याकरण भी काफ़ी मददगार था। ज़्योंकि यद्यपि उर्दू के लिंग का स्पष्ट बोध होता है और सारी क्रियाएँ और विशेषकर उस संज्ञा या सर्वनाम के अनुसार होते हैं, जिसे वे संचालित करते हैं या जिसकी विशेषता बताते हैं, मध्यम पुरुष और उज़म पुरुष के बहुवचन रूपों में हमेशा ये विशेषता नहीं पायी जाती। उदाहरण के लिए, दिल्ली की बोलचाल की आम भाषा में, मध्यम और उज़म पुरुष के बहुवचन क्रिया-रूपों का इस्तेमाल स्त्रीलिंग के रूप में भी किया जा सकता है और 'उन' (उज़म पुरुष का एक बहुवचन) का इस्तेमाल न केवल दोनों में से किसी भी लिंग के समूहों के लिए, बल्कि किसी अकेली स्त्री या पुरुष के लिए भी किया जा सकता है ज़्योंकि बहुवचन रूपों का प्रयोग सज़्मान या प्रेम के प्रतीक के रूप में होता है। उर्दू में काफ़ी संज्ञाएँ ऐसी हैं, जिनका कोई विशिष्ट पुल्लिंग या स्त्रीलिंग रूप नहीं होता, अत: सन्दर्भ की सन्दिग्धता का औचित्य उत्कृष्टता को प्राप्त करता है, जैसा कि दाग़ के इस शे'र से स्पष्ट है—

*निगाह बर्फ़ नहीं चेहरा आफ़ताब नहीं*
*वो आदमी है मगर देखने की ताब नहीं*

यहाँ 'वो' स्त्री भी हो सकता है और पुरुष भी। ऐतिहासिक रूप से कहें तो भी, उर्दू ग़ज़ल में 'स्त्रैण' नायक के पक्ष में स्थितियों का जायज़ा लिया जा सकता है। उर्दू के पहले बड़े शायर क़ुली क़ुतुबशाह और उनके समकालीन अज़्सर इस तरह लिखते हैं, मानो उनके काव्य का नायक स्त्री हो।

व्याकरणिक सन्दिग्धताओं की स्थितियों में भी जिन उपाधियों और बिज़्बों का प्रिय के लिए इस्तेमाल किया गया है, वह प्रसंगत: प्रणयी के स्त्री होने का और प्रिय के पुरुष होने का संकेत देते हैं। इससे पहले बहमनी युग में कोई दूसरा दस्तूर नहीं था। वली के समय में भी, सुदुर सत्रहवीं सदी में, हम कई बार व्याकरण की दृष्टि से स्त्रैण नायक को पाते हैं; हालाँकि व्याकरणिक सन्दिग्धताओं में इज़ाफ़ा हो रहा था, 'स्त्री सुलभ' भावनाएँ और अनुभव साफ़ तौर पर मिलते हैं। प्रणयी का भटकना

और प्रिय के घर या सड़कों पर उसकी गुप्त सैर भले ही ऐसा विषय हों, जिनसे ईरानी काव्य अनजान नहीं था, मगर प्रिय के यहाँ रात में जाने का जो ज़िक्र उर्दू कविता में मिलता है उसका एक अलग महत्त्व आता है। वली के निम्न शे'र में प्रिय स्त्री है, मगर प्रसंग काफ़ी स्पष्ट है—

*इस रैन अँधेरी में मत भूल पड़ूँ तिस सूँ*
*टुक पाँव के झाँझे की झनकार सुनाती जा*

ज़ाहिर है कि प्रेमिका प्रेमी को मिलने के लिए आई है। प्रेमी भी उसके पास आ रहा है और उसकी पायल की, आश्वस्त करने वाली हल्की मधुर खनखन को सुनना चाहता है। साफ़ तौर पर प्रेमिका पीछा किये जाने के लिए प्रस्तुत नहीं है, बल्कि वो एक सक्रिय भागीदार ज़्यादा है, क्योंकि यहाँ पुरुष अँधेरे में और मिलनस्थल की अनभिज्ञता से घबरा रहा है।

उन्नीसवीं सदी तक, अभिव्यक्ति की सन्दिग्धता में वृद्धि हुई, मगर स्त्री के शरीर (सम्पूर्ण शरीर नहीं, पर कुछ शारीरिक विशेषताएँ) पोशाक, और व्यवहार को भी ज़्यादा प्रमुखता मिलने लगी। सामान्य तौर पर, जहाँ स्त्री के शरीर या उसकी पोशाक या उसके तौर-तरीक़ों का वर्णन विशिष्ट स्त्री सम्बन्धी शब्दों में किया गया है और केवल बालों, आँखों, होठों आदि के परम्परागत रूप में नहीं किया गया, वहाँ काव्य का स्तर गिर गया है और उसका स्वर अनुभूति के तनाव से विहिन हो गया है। सिराज औरंगाबादी, जो वली के बाद मगर परवर्ती अठारहवीं सदी के दिल्ली के उस्तादों से पहले आते हैं, उनके बेतरतीब शे'र को देखिए—

*धूप में ग़म की अबस जी को जलाया अफ़सोस*
*पिउ के साये में अमाँ था मुझे मालूम न था*

'पिउ' शब्द का इस्तेमाल महिलाओं द्वारा पुरुष के लिए होता है, और फिर, सिराज ने जिस भावना को व्यक्त किया है वो परम्परागत भारतीय सन्दर्भ में, पुरुष की अपेक्षा स्त्री से अधिक संगत है।

उन्नीसवीं सदी के काव्य से स्त्रीत्व का बोध कराने वाले व्याकरणिक प्रयोगों के तिरोभाव की क्षतिपूर्ति 'स्त्रैण' शब्दों और स्थितियों पर अत्यधिक ज़ोर देकर की गयी। प्रणयी और प्रिय के मध्य चलने वाले विभिन्न क्रियाकलापों के वर्णन को *मुआमिला बन्दी* कहा जाता है। सोलहवीं सदी के फ़ारसी कवि, बाबा फ़ुग़ानी शिराज़ी (जिन्हें बहुत से लोग भारतीय शैली का पहला कवि मानते हैं) को काव्य में इस विषय के प्रवर्तन का श्रेय दिया जाता है। उर्दू के उस्तादों ने *मुआमिआ बन्दी* को एक ऐसे परिष्कृत उपकरण के रूप में विकसित किया, जो स्त्री सुलभ हताशा और लालसा को व्यक्त करने की क्षमता रखता था। मगर उन्नीसवीं सदी में *रेख़्ती*-स्त्रियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली उक्तियों में लिखा जाने वाला, उर्दू ग़ज़ल का एक रूप का प्रादुर्भाव इस बात को उद्घाटित करने वाला और ज़्यादा प्रभावशाली घटना थी। *रेख़्ती* का केन्द्रीय पात्र स्त्री थी, यही वह वेशरूप था, जिसे इस विधा के कवियों (जो कि ज़्यादातर पुरुष थे) ने धारण किया था। हालाँकि कई बार ग़ैर-स्त्री सुलभ विषय उसमें मिलते हैं, मगर *रेख़्ती* वह काव्य है जिसमें स्त्रियों के बारे में स्त्रियों द्वारा अधिकारपूर्वक लिखा जाता था। ख़ासकर जब हम यह देखते हैं कि इसका विकास लखनऊ में हुआ, जहाँ के नियमित काव्य के अक्सर स्पष्टत: स्त्री को प्रिय का दर्ज़ा दिया गया था, जिसका गुणगान पुरुष प्रणयी किया करते थे।

बीसवीं सदी में स्त्री के शारीरिक लक्षणों, वस्त्रों आदि के स्पष्ट वर्णन में कभी आई और वे लुप्त हो गये। लेकिन ऐसा हाली के सुधरवाली उत्साह और अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार (उन दिनों का अतिनैतिक पाठ्यक्रम हेरिक जैसे कवियों से अनजान था) के चलते अधिक था, 'स्त्रैण' परम्परा में आई कोई अनवति इसके लिए उतनी ज़िम्मेदार नहीं थी। ईर्ष्या, दुर्बलता, विषाद, प्रेम के लिए ललकना, ख़ून के आँसू बहाना आदि ऐसे विषय थे जो लोकप्रिय बने रहे, अभी हाल में पचास वर्षों के आसपास इनका पतन हुआ है। ये इक़बाल और उर्दू में प्रगतिशील आन्दोलन के शुरुआती प्रहार के शिकार बने। प्रगतिशीलों ने शुरुआती ग़ज़ल पर प्रहार की, लेकिन बाद में, उन्होंने ही इसे दुगने उत्साह के साथ अपनाया और कुछ अच्छी ग़ज़लें लिखीं जिनका, उनके भाषाई वातावरण के चलते, पुराने नमूनों में शुमार किया जा सकता है।

हमारे समय में जो बड़ा परिवर्तन आया है, उसका कारण प्रेम-काव्य को प्रदान की जाने वाली प्रतिष्ठा में कमी आना है। ग़ज़ल अब मुख्य रूप से प्रेम-काव्य की विधा नहीं रही। अँग्रेज़ी का प्रभाव भी इसके लिए ज़िम्मेदार है, जिसने हिन्दी काव्य में भी स्त्रैण प्रणयी को उखाड़ फेंका है। लेकिन जहाँ तक उर्दू का सवाल है, ग़ज़ल ने अपनी ताक़त और लोकप्रियता को बरक़रार रखा है क्योंकि जैसा कि मैंने बताया, इसके पुराने उस्तादों ने इसे सीमित रूप से नहीं देखा, बल्कि उन्होंने अपनी ताक़त के परम्परागत भारतीय स्रोतों को स्वच्छन्दता से प्रवाहित होने दिया, रहस्यवादी और अमूर्त चिन्तन को, जटिल और समृद्ध शाब्दिक कौशल को, वातावरण की चेतना को, दृष्ट सीमाओं के पार जाकर चीज़ों की पड़ताल करने की चाहत को। ग़ज़ल में अभी भी ऐसी ख़ूबियाँ पायी जा रही हैं, भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में। पाकिस्तान में तो शुद्ध ईरानी और अरबी-ईरानी परम्पराओं की ओर लौटने की प्रवृत्तियाँ, अन्ध-राष्ट्रवादियों के समर्थन के बावजूद, लोकप्रियता अर्जित करने में असफल रही हैं। उर्दू ग़ज़ल वह फूल है, जो केवल हिन्दुस्तानी मानस की सामायिक मिट्टी में ही खिल सकता है।

संक्षेप में, यह तर्क दिया जा सकता है कि उर्दू ग़ज़ल के मूल में स्थित और इससे उभरकर आने वाला काव्य-व्यक्तित्व किसी ख़ास व्यक्ति से सादृश्यता स्थापित नहीं करता या वह व्यक्तियों के किसी समूह का प्रतिनिधित्व भी नहीं करता। इसके साथ-साथ कोई भी व्यक्ति या सीमित समूह किसी विशाल संस्कृति का प्रतिनिधि होने का दावा नहीं कर सकता। उर्दू ग़ज़ल के मामले में, विरोधी तत्त्वों की स्पष्टता इतनी असन्दिग्ध है, फिर भी उन्हें इतनी अच्छी तरह से समायोजित किया गया है और वह इतनी ख़ुशी से अपना सहअस्तित्व बनाये रखती है कि उसकी सम्पूर्ण तस्वीर अब तक हमारे पाठकों-प्रेक्षकों की पहुँच से बाहर रही है। अन्त में, प्रूस्त की एक प्रसिद्ध उक्ति को उद्धृत करना चाहूँगा। वह कहते हैं—''रचनाकार जो कुछ लिखता है, वह एक अलग किस्म के व्यक्तित्व, जिसे हम अपनी आदतों में, अपने समाज में, अपने व्यसनों में प्रकट नहीं करते, का उत्पाद होता है।''

('शब्दसृष्टि' से साभार)

# शब भर रहा चर्चा तेरा

## क़तील शिफ़ाई

(1919–2001)

तुम्हारी अंजुमन से उठके दीवाने कहाँ जाते
जो वाबस्ता हुए तुमसे वो अफ़साने कहाँ जाते

निकल कर दैरो-काबा[1] से अगर मिलता न मयख़ाना
तो ठुकराए हुए इन्साँ ख़ुदा जाने कहाँ जाते

तुम्हारी बेरुख़ी ने लाज रख ली बाद:ख़ाने[2] की
तुम आँखों से पिला देते तो पैमाने कहाँ जाते

चलो अच्छा हुआ काम आ गयी दीवानगी अपनी
वगर्ना हम ज़माने भर को समझाने कहाँ जाते

क़तील अपना मुकद्दर ग़म से बेगाना अगर होता
तो फिर अपने-पराए हमसे पहचाने कहाँ जाते

[1]मन्दिर और काबा [2]शराबघर

**2**

आ जाये किसी दिन तू ऐसा भी नहीं लगता
लेकिन वो तेरा वादा झूठा भी नहीं लगता

मिलता है सकूँ दिल को उस यार के कूचे में
हर रोज़ मगर जाना अच्छा भी नहीं लगता

देखा है तुझे जबसे बेचैन बहुत है दिल
कहने को कोई तुझसे रिश्ता भी नहीं लगता

क्या फ़ैसला अब कीजै बारे में क़तील उसके
वो ग़ैर नहीं लेकिन अपना भी नहीं लगता

## अहमद नदीम क़ासमी

पैमा[1] जो बँध रहे हैं, कोई सुन रहा न हो,
यानी कहीं क़रीब हमारा ख़ुदा न हो।

मैं सुन रहा हूँ कब से तेरे दिल की धड़कनें,
लेकिन कहीं ये वक़्त की आवाज़े-पा[2] न हो।

दुख है तो सिर्फ़ ये, कि वो दुख देके ख़ुश हुआ,
वर्ना किसी भी दुख से मुझे दुख ज़रा न हो।

तहज़ीब का ये कितना मुहज़्ज़ब[3] उसूल है
पर्दे में चाहे कुछ हो, मगर बरमला[4] न हो।

इक उम्र से है मुझको उस इन्सान की तलाश,
अच्छा जो मुझसे बढ़के हो, मुझसे बुरा न हो,

गर वो मेरी दुआ है तो पूरी भी हो 'नदीम',
गर वो मेरा ख़ुदा है तो फिर ना-रसा[5] न हो।

[1]वादे [2]पावों की आवाज़ [3]सुसज्य, सुसंस्कृत [4]खुल्लमखुल्ला [5]जिसे पा न सकें

**2**

वो कोई और न था चन्द ख़ुश्क पत्ते थे,
शजर से टूट के जो फ़सले-गुल पे रोए थे।

अभी-अभी तुम्हें सोचा तो कुछ न याद आया,
अभी-अभी तो हम इक दूसरे से बिछड़े थे।

तुम्हारे बाद चमन पर जब इक नज़र डाली,
कली-कली में ख़िज़ाँ के चराग़ जलते थे।

तमाम उम्र वफ़ा के गुनाहगार रहे,
ये और बात कि हम आदमी तो अच्छे थे।

शबे-ख़ामोश[1] को तनहाई ने ज़ुबाँ दे दी,
पहाड़ गूँजते थे, दश्त[2] सनसनाते थे।

वो एक बार मरे, जिनको था हयात[3] से प्यार,
जो ज़िन्दगी से गुरेज़ा[4] थे, रोज़ मरते थे।

ये इर्तिक़ा[5] का चलन है कि हर ज़माने में,
पुराने लोग नये आदमी से डरते थे

'नदीम' जो भी मुलाक़ात थी, अधूरी थी,
कि एक चेहरे के पीछे हज़ार चेहरे थे।

[1]ख़ामोश रात [2]जंगल [3]ज़िन्दगी [4]अछूते [5]विकासक्रम

## नासिर काज़मी

(1125–1972)

शाम का शीशा काँप रहा था
पेड़ों पर सोना बिखरा था

जंगल-जंगल, बस्ती-बस्ती
रेत का शहर उड़ा जाता था

अपनी बेचैनी भी अजब थी
तेरा सफ़र भी नया-नया था

तेरी पलकें बोझल-सी थीं
मैं भी थककर चूर हुआ था

तेरे होंठ भी ख़ुश्क हुए थे
मैं तो ख़ैर बहुत प्यासा था

खिड़की के धुँधले शीशे पर
दो चेहरों का अज़्स जमा था

जगमग जगमग कंकरियों का
दश्ते-फ़लक[1] में जाल बिछा था

तेरे शाने[2] पर सर रखकर
मैं सपनों में डूब गया था

यों गुज़री वो रात सफ़र की
जैसे ख़ुशबू का झोंका था

[1]आसमान का जंगल [2]कन्धे

**2**

पत्थर का वो शहर भी ज़्या था
शहर के नीचे शहर बसा था

पेड़ भी पत्थर, फूल भी पत्थर
पज़ा-पज़ा पत्थर का था

चाँद भी पत्थर, झील भी पत्थर
पानी भी पत्थर लगता था

लोग भी सारे पत्थर के थे
रंग भी उनका पत्थर-सा था

पत्थर का इक साँप सुनहरा
काले पत्थर से लिपटा था

पत्थर की अँधी गलियों में
मैं तुझे साथ लिये फिरता था

गूँगी वादी गूँज उठती थी
जब कोई पत्थर गिरता था

पिछले पह्र का सन्नाटा था
तारा तारा जाग रहा था

पत्थर की दीवार से लगकर
आईना तुझे देख रहा था

बालों में थी रात की रानी
माथे पर दिन का राजा था

इक रुख़सार पे जुल्फ गिरी थी
इक रुख़सार पे चाँद खिला था

ठोढ़ी के जगमग शीशे में
होठों का साया पड़ता था

चन्द्र किरन-सी उँगली-उँगली
नाख़ून-नाख़ून हीरा-सा था

एक पाँव में फूल-सी जूती
एक पाँव सारा नंगा था

तेरे आगे शमा धरी थी
शमा के आगे इक साया था

तेरे साये की लहरों को
मेरा साया काट रहा था

## इब्ने इंशा

(1927–1978)

कल चौधवीं की रात थी, शब भर रहा चर्चा तेरा
कुछ ने कहा ये चाँद है, कुछ ने कहा चेहरा तेरा

हम भी वहीं मौजूद थे, हमसे भी सब पूछा किए
हम हँस दिये, हम चुप रहे, मंजूर था पर्दा तेरा

इस शह्‍र में किससे मिलें, हमसे तो छूटीं महफ़िलें
हर शख़्स तेरा नाम ले, हर शख़्स दीवाना तेरा

कूचे को तेरे छोड़ कर जोगी ही बन जाएँ मगर
जंगल तेरे, परबत तेरे, बस्ती तेरी, सहरा तेरा

हम और रस्मे-बंदगी आशुफ़्तगी[1] उफ़तादगी[2]
एहसान है ज़्या ज़्या तेरा, ऐ हुस्ने-बेपरवा तेरा

दो अश्क जाने किसलिए, पलकों पे आकर टिक गये
अल्ताफ़[3] की बारिश तेरी, इकराम[4] का दरिया तेरा

ऐ बेदरीग़ो[5]-बेअमाँ, हमने कभी की है फ़ुग़ाँ[6]
हमको तेरी वहशत सही, हमको यही सौदा तेरा

हम पर ये सख़्ती की नज़र, हम हैं फ़क़ीरे-रहगुज़र
रस्ता कभी रोका तेरा, दामन कभी थामा तेरा

हाँ हाँ तेरी सूरत हसीं, लेकिन तू ऐसा भी नहीं
इस शख़्स के अशआर से शोहरा[7] हुआ ज़्या ज़्या तेरा

बेदर्द सुननी हो तो चल, कहता है ज़्या अच्छी ग़ज़ल
आशिक़ तेरा, रुस्वा तेरा, शाइर तेरा, इंशा तेरा

[1] परेशानहाली [2] बदहाली [3] कृपा [4] बड़प्पन [5] अफ़सोस से रहित [6]फ़रियाद [7] ज़्याति

## असरारुल हक़ 'मजाज़' लखनवी

(1909–1955)

कमाले-इश्क़ है दीवाना हो गया हूँ मैं
ये किसके हाथ से दामन छुड़ा रहा हूँ मैं

तुम्हीं तो हो जिसे कहती है नाख़ुदा[1] दुनिया
बचा सको तो बचा लो कि डूबता हूँ मैं

ये मेरे इश्क़ की मजबूरियाँ मआज़-अल्लाह[2]
तुम्हारा राज़ तुम्हीं से छुपा रहा हूँ मैं

इस इक हिजाब[3] पे सौ बेहिजाबियाँ सदक़े[4]
जहाँ से चाहता हूँ तुमको देखता हूँ मैं

बताने वाले वहीं पर बताते हैं मंज़िल
हज़ार बार जहाँ से गुज़र चुका हूँ मैं

कभी ये ज़ोम[5] कि तू मुझसे छुप नहीं सकता
कभी ये वह्‍म कि ख़ुद भी छुपा हुआ हूँ मैं

मुझे सुने न कोई मस्ते-वाद:-ए-इशरत[6]
मजाज़ टूटे हुए दिल की इक सदा हूँ मैं

[1]नाविक, पार लगाने वाला [2]अल्लाह बचाए [3]पर्दा [4]न्योछावर [5]घमंड [6]विलास की शराब से मतवाला

**2**

कमाल-ए-इश्क है दीवाना हो गया हूँ मैं
ये किसके हाथ से दामन छुड़ा रहा हूँ मैं

तुम्हीं तो हो जिसे कहती है नाख़ुदा दुनिया
बचा सको तो बचा लो कि डूबता हूँ मैं

ये मेरे इश्क़ की मजबूरियाँ माज़ अल्लाह
तुम्हारा राज़ तुम्हीं से छुपा रहा हूँ मैं

इस एक हिजाब पे सौ बे-हिजाबियाँ सदक़े
जहाँ से चाहता हूँ तुमको देखता हूँ मैं

बताने वाले वहीं पर बताते हैं मंज़िल
हज़ार बार जहाँ से गुज़र चुका हूँ मैं

कभी ये ज़ोम कि तू मुझसे छुप नहीं सकता
कभी ये वहम कि ख़ुद भी छुपा हुआ हूँ मैं

मुझे सुने न कोई मस्त-ए-बाद-ए-इशरत
मजाज़ टूटे हुए दिल की एक सदा हूँ मैं

इंटरव्यू से मैं घबराता हूँ, सवाल छोटे होने चाहिए, नहीं हुए तो! मैं जवाब छोटे कर दूँगा।

मैंने ग्यारह साल से ही शायरी शुरू कर दी थी! छठी जमात से ही... तब तो ये हाल हैं! शेर मोहज़्मद ख़ाँ नाम केवल सर्टिफ़िकेटों में रहा, हाँ कुछ दिन शेर मोहज़्मद 'असग़र' रहा। फिर हाई स्कूल में, गाँव से शहर आए, लुधियाना तो अजीब क़िस्म की रूमानियत तारी रहती, मेरे जैसा आदमी, गाँव के माहौल से आकर कैसा मायूस रहता है, तो पहला नाम रखा उसमें वो झलकता भी है! वो था 'मायूस अदमाबादी' रखा। स्कूल में हमारे उस्ताद थे, उन्होंने कहा, समझाया सारिया के हवाले कि मायूसी गुनाह है वग़ैरह-वग़ैरह... फिर हमने क़ैसर सहराई!

मेरी पहली किताब संगम पज़्लिशर्स ने छापी, जो राजिन्दर सिंह बेदी वग़ैरह ने मिलकर कज़्पनी बनायी थी। बग़दाद की एक रात ने ओवरनाइट रिकगनिज़न दिलाया।

**—इज़्ने इंशा**

प्रस्तुति : म.कु.

## मीराजी

(1912–1949)

दीद:-ए-अश्कबार[1] है अपना
और दिले-बेक़रार है अपना

रश्क़े-सहरा[2] है घर की वीरानी
यही रंगे-बहार है अपना

चश्मे-गिरियाँ[3] से चाके-दामाँ[4] से
हाल सब आशकार[5] है अपना

हाय-हू में हर एक खोया है
कौन याँ ग़मगुसार है अपना

सिर्फ़ वो एक सबके हैं मुज़्तार
उनपे ज़्या इज़्तियार है अपना

[1]आँसुओं से भरी आँख [2]रेगिस्तान के लिए ईर्ष्या [3]रोती हुई आँखें [4]फटे हुए दामन [5]प्रकट

## जाँ निसार अज़्तर

(1914–1976)

अशआर मेरे यों तो ज़माने के लिए हैं
कुछ शे'र फ़क़त उनको सुनाने के लिए हैं

अब ये भी नहीं ठीक कि हर दर्द मिटा दें
कुछ दर्द कलेजे से लगाने के लिए हैं

आँखों में जो भर लोगे तो काँटो-से चुभेंगे
ये ज़्वाब तो पलकों पे सजाने के लिए हैं

देखूँ तेरे हाथों को तो लगता है तेरे हाथ
मन्दिर में फ़क़त दीप जलाने के लिए हैं

सोचो तो बड़ी चीज़ है तहज़ीब बदन की
वर्न: तो बदन आग बुझाने के लिए है

ये इल्म का सौदा, ये रिसालें, ये किताबें
इक शज़्स की यादों को भुलाने के लिए हैं

## साहिर लुधियानवी

( 1921-1980 )

तंग आ चुके हैं क़शमक़श-ए-ज़िन्दगी से हम
ठुकरा न दें जहाँ को कहीं बेदिली से हम

मायूसी-ए-मआल-ए-मुहज़्बत[1] न पूछिए
अपनों से पेश आये हैं बेगानगी से हम

लो आज हमने तोड़ दिया रिश्त:-ए-उज़्मीद
लो अब कभी गिला[2] न करेंगे किसी से हम

उभरेंगे एक बार अभी दिल के वलवले
गो दब गये हैं बारे-ग़मे-ज़िन्दगी[3] से हम

गर ज़िन्दगी में मिल गये फिर इज़िफ़ाक़ से
पूछेंगे अपना हाल तेरी बेबसी से हम

अल्लाह रे फ़रेबे-मशीयत[4] कि आज तक
दुनिया के ज़ुल्म सहते रहे ख़ामुशी से हम

[1]प्रेम के परिणाम से निराशा [2]शिक़ायत [3]ज़िन्दगी के दुख का बोझ [4]ईश्वरेच्छा, क़ुदरत का फ़रेब

## मजरूह सुल्तानपुरी

मुझे सहल हो गयी मंज़िलें वो हवा के रुख़ भी बदल गये
तिरा हाथ-हाथ में आ गया कि चिराग़ राह में जल गये

वो लजाये मेरे सवाल पर कि उठा सके न झुका के सर
उड़ी ज़ुल्फ चेहरे पे इस तरह कि शबों के राज़ मचल गये

वही बात जो न वो कह सके मिरे शेर-ओ-नग़मे में आ गयी
वही लब न मैं जिन्हें छू सका क़दहे-शराब में ढल गये

तुझे चश्मे-मस्त पता भी है शबाब गर्मी-ए-बज़्म है
तुझे चश्मे-मस्त ख़बर भी है कि सब आबगीने पिघल गये

उन्हें कब के रास भी आ चुके तिरी बज़्मे-नाज़ के हादिसे
अब उठे कि तेरी नज़र फिरे जो गिरे थे गिर के सँभल गये

मिरे काम आ गयी आख़िरश यही काविशें यही गर्दिशें
बढ़ीं इस क़दर मिरी मंज़िलें कि क़दम के ख़ार निकल गये

## शकील बदायूनी

ग़मे-आशिक़ी से कह दो रहे-आम तक न पहुँचे
मुझे ख़ौफ़ है ये तोहमत मिरे नाम तक न पहुँचे

मैं नज़र से पी रहा था कि ये दिल ने बद्दुआ दी—
तेरा हाथ ज़िन्दगी भर कभी जाम तक न पहुँचे

नयी सुब्ह पर नज़र है मगर आह ये भी डर है
ये सहर भी रफ़्ता-रफ़्ता कहीं शाम तक न पहुँचे

ये अदा-ए-बेनियाज़ी तुझे बेवफ़ा मुबारिक
मगर ऐसी बेरुख़ी क्या कि सलाम तक न पहुँचे

जो निक़ाबे-रुख़ उठा दी तो ये क़ैद भी लगा दी
उठे हर निगाह लेकिन कोई बाम तक न पहुँचे

## जिगर मुरादाबादी

दिल गया रौनक़े हयात गयी
ग़म गया सारी कायनात गयी

दिल धड़कते ही फिर गयी वो नज़र
लब तक आयी न थी के बात गयी

उनके बहलाए भी न बहला दिल
राएगाँ सइये इल्तफ़ात गयी

मर्गे आशिक़ तो कुछ नहीं लेकिन
इक मसीहा-नफ़स की बात गयी

नहीं मिलता मिज़ाजे-दिल हमसे
ग़ालिबन दूर तक ये बात गयी

क़ैदे-हस्ती से कब नजात 'जिगर'
मौत आयी अगर हयात गयी

## जॉन एलिया

मत पूछो कितना ग़मगीं हूँ गंगा जी और जमुना जी
ज़्या मैं तुमको याद नहीं हूँ गंगा जी और जमुना जी

अपने किनारों से कह दीजो आँसू तुमको रोते हैं
अब मैं अपना सोग-नशीं हूँ गंगा जी और जमुना जी

मैं जो बगूला बन कर बिखरा वक़्त की पागल आँधी में
ज़्या मैं तुज़्हारी लहर नहीं हूँ गंगा जी और जमुना जी

अब तो यहाँ के मौसम मुझसे ऐसी उज़्मीदें रखते हैं
जैसे हमेशा से मैं यही हूँ गंगा जी और जमुना जी

अमरोहे में बान नदी के पास जो लड़का रहता था
अब वो कहाँ है ? मैं तो वहीं हूँ गंगा जी और जमुना जी

**2**

ख़ूब है इश्क़ का ये पहलू भी,
मैं भी बरबाद हो गया तू भी

ये न सोचा था ज़ेरे-साय-ए-ज़ुल्फ़[1]
कि बिछड़ जाएगी ये ख़ुशबू ज़ी

हुस्न कहता है छेड़ने वाले
छेड़ भी और कभी-कभी छू भी

याद आते हैं मोजिज़े[2] अपने,
और उसके बदन का जादू भी,

हाय उसका वो मौज-मौज[3] बदन,
मैं तो प्यासा रहा लबे-जू[4] भी

उसकी यादों से है मेरा परहेज़,
ऐ सबा[5] अब न आईयो तू भी

मैं वही जॉन एलिया जो कभी
सज़्त मग़रूर ज़ी थे, बदख़ू[6] ज़ी

[1]ज़ुल्फ़ों की छाँव में [2]चमत्कार [3]लहरों जैसा [4]नदी किनारे [5]हवा [6]रुखा, कड़वा

**3**

हम तो जैसे, यहाँ के थे ही नहीं
धूप थे, सायबाँ के थे ही नहीं

रास्ते कारवाँ के साथ रहे
मरहले[1] कारवाँ के थे ही नहीं

अब हमारा मकान किसका है
हम तो अपने मकाँ के थे ही नहीं

उनको आँधी में ही बिखरना था
बालो-पर आशियाँ के थे ही नहीं

उस गली ने ये सुन के सब्र किया
जाने वाले यहाँ के थे ही नहीं

हो तेरी ख़ाके-आस्ताँ[2] पे सलाम
हम तेरे आस्ताँ के थे ही नहीं

[1]पड़ाव [2]दहलीज़ की धूल

**4**

धरम की बाँसुरी से राग निकले,
कि सूराख़ों से काले नाग निकले

रखो दैरो-हरम[1] को अब मुक़फ़्फ़ल[2]
कई पागल यहाँ से भाग निकले

वो गंगाजल हो या हो आबे-ज़म-ज़म[3]
ये वो पानी है जिनसे आग निकले

ख़ुदा से ले लिया जन्नत का वादा,
ये ज़ाहिद[4] तो बड़े ही घाघ निकले

पिलाया था हमें अमृत किसी ने,
मगर मुँह से लहू के झाग निकले

[1]मन्दिर-मस्जिद [2]तालों में बन्द [3]मज़्का का पवित्र जल [4]धर्माचार्य, धर्मगुरु

## शकेब जलाली

मुरझा के कली झील में गिरते हुए भी देख
सूरज हूँ, मेरा रंग मगर दिन ढले भी देख

हर चन्द राख हो के बिखरना है राह में
जलते हुए परों से उड़ा हूँ मुझे भी देख

आलम में जिसकी धूम थी, उस शाहकार[2] पर
दीमक ने जो लिखे कभी वो तबसरे[3] भी देख

तूने कहा न था कि मैं कश्ती पे बोझ हूँ
आँखों को अब न ढाँप, मुझे डूबते भी देख

बिछती थीं जिसकी राह में फूलों की चादरें,
अब उसकी ख़ाक घास के पैरों तले भी देख

ज़्या शाख़े-बा-समर[4] है जो तकता है फ़र्श को
नज़रें उठा 'शकेब', कभी सामने भी देख

[1]दुनिया [2]कृति [3]व्याज़्याएँ [4]फलों से लदी डाल

**2**

जहाँ तलक भी ये सहरा दिखाई देता है
मेरी तरह से अकेला दिखाई देता है

न इतनी तेज़ चले, सरफ़िरी हवा से कहो
शजर पे एक ही पत्ता दिखाई देता है

बुरा न मानिये दुनिया की ऐब-जोई का
उन्हें तो दिन का भी साया दिखाई देता है

ये एक अब्र का टुकड़ा कहाँ-कहाँ बरसे
तमाम दश्त[1] ही प्यासा दिखाई देता है

वहीं पहुँच के गिराएँगे बादबाँ अपने
वो दूर कोई जज़ीरा[2] दिखाई देता है

मेरी निगाह से छुपकर कहाँ रहेगा कोई
कि अब तो संग[3] भी शीशा दिखाई देता है

सिमट के रह गये आख़िर पहाड़ से क़द भी
ज़मीं से हर कोई ऊँचा दिखाई देता है

खिली है दिल में किसी के बदन की धूप 'शकेब'
हर एक फूल सुनहरा दिखाई देता है

[1]जंगल [2]टापू [3]पत्थर

**3**

हमजिंस[1] अगर मिले न कोई आसमान पर
बेहतर है ख़ाक डालिये ऐसी उड़ान पर

आ कर गिरा था कोई परिन्दा लहू में तर
तस्वीर अपनी छोड़ गया है चट्टान पर

यारो! मैं इस नज़र की बुलन्दी को ज़्या करूँ
साया भी अपना देखता हूँ आसमान पर

कितने ही जख़्म हैं मिरे इक ज़ख़्म में छुपे
कितने ही तीर आ के लगे इक निशान पर

जल-थल हुई तमाम ज़मीं आसपास की
पानी की बूँद भी न गिरी सायबान पर

मलबूस[2] ख़ुशनुमा[3] हैं मगर खोखले हैं जिस्म
छिलके सजे हों जैसे फलों की दुकान पर

हक़[4] बात आ के रुक सी गयी थी कभी 'शकेब'
छाले पड़े हुए हैं अभी तक ज़बान पर

[1]अपनी नस्ल का साथी [2] कपड़े [3]सुन्दर [4]सच

## मज़हर इमाम

पेशानी पर चाँद लिये कौन उभरा आधी रात गये
ख़ून रगों में चहका, बिफरा, चमका, आधी रात गये

सारे बल्ब बुझे थे लेकिन सारा कमरा रौशन था
लम्हा चलते-चलते ठिठका, ठहरा, आधी रात गये

दर्द का भोला भाला चेहरा, जागा-सा कुछ सोया सा
क्या बतलाऊँ मैंने क्या-क्या देखा आधी रात गये

एक नवेली दुल्हन बन कर इक दिन अन्दर आया था
जाने कब का भूला भटका लम्हा आधी रात गये

बाहर जाकर देखा तो शब सोई थी चट्टान बनी
मैं जब अपने ख़्वाबों से उकताया आधी रात गये

ऐसे भी दिन आते हैं जब साँसों का दम घुटता है
जागा करती है जब सारी दुनिया आधी रात गये

**2**

जैसे किसी तूफ़ान का ख़दशा[1] भी नहीं था
क्या लोग थे अन्देश-ए-फ़र्दा[2] भी नहीं था

क्यों लोग मज़ारों पे दुआ माँग रहे थे
मुझ पर किसी आसेब का साया भी नहीं था

किसी बाग़े-तिलिस्मात[3] में गुम हो गयीं आँखें
मैंने तेरी जानिब अभी देखा भी नहीं था

क्यों ताज़ा हवा का कोई झोंका नहीं आया
एहसास के दर पर कोई पर्दा भी नहीं था

गिरती हुई दीवार को सब देख रहे थे
इस शहर में कुछ और तमाशा भी नहीं था

नाकरदा-गुनाहों[4] की सज़ा दे मुझे या रब
जो काम किया मैंने, वो अच्छा भी नहीं था

[1]डर [2]आने वाले दिन की चिन्ता [3]जादू भरी फुलवारी [4]जो गुनाह नहीं किया

## परवीन शाकिर

(1952-1994)

इस हवाये-बेअमाँ में, सर पे इक चादर तो है
लाख दीवारें शिकस्तः हों, पर अपना घर तो है

जो भी आएगा यहाँ दस्तक तो देकर आएगा
इक हदे-दीवार तो है, इक हिसारे-दर तो है

ये भी क्या कम है कि अपनी जंग में तनहा नहीं
कारज़ारे[1]-ज़िन्दगी में मेरा इक लश्कर तो है

कौन है अब तक अनासिर[2] को बुहम[3] रखे हुए
मौसमे-बेचहरगी में कोई सूरतगर तो है

होता जाएगा निज़ामे-साबित[4]-ओ-सय्यार[5] और
रक़्स करने को ज़मीं के पास इक महवर[6] तो है

आसमाने-सब्ज़गूँ पर एक तारा, एक चाँद
दस्तरस में कुछ नहो ये ख़ुशनुमा मंज़र तो है

घर से निकली तो ख़बर बन जाएगी आपस की बात
जो भी क़िस्सा हो, अभी तक सहन के अन्दर तो है

नम तो होनी है मिरी मिट्टी, किसी पानी से हो
बारिशें ना-महरबाँ हो जाएँ, चश्मे-तर तो है

सानेहा दोनीम[7] होने का पुराना तो नहीं
औ' दिलों में भी, अभी तारीख़[8] को कुछ डर तो है

ढूँढ़ लेगा फिर उफुक खोई हुई परवाज़ का
देखने में आज ये तायर शिकस्तः पर तो है

[1]युद्ध, [2]तत्त्व [3]साथ [4] स्थिर [5]घूमने वाला [6]धुरी [7]दो टुकड़े [8]इतिहास

**2**

फिर मेरे शह्र से गुज़रा है वो बादल की तरह
दस्ते-गुल[1] फैला हुआ है मेरे आँचल की तरह

कह रहा है किसी मौसम की कहानी अब तक
जिस्म बरसात में भीगे हुए जंगल की तरह

ऊँची आवाज़ में उसने तो कभी बात न की
ख़फ़गियों[2] में भी वो लहजा रहा कोयल की तरह

मिल के उस शख़्स से मैं लाख ख़मोशी से चलूँ
बोल उठती है नज़र पाँव की छागल[3] की तरह

पास जब तक वो रहे, दर्द थमा रहता है
फैलता जाता है फिर आँख के काजल की तरह

अब किसी तौर से घर जाने की सूरत ही नहीं
रास्ते मेरे लिए हो गये दलदल की तरह

जिस्म के तीर:-ओ-आसेबज़दा[4] मन्दिर में
दिल सरे-शाम सुलग उठता है सन्दल[5] की तरह

[1]फूल का हाथ (पंखुडी) [2]नाराज़गियों [3]चौड़ी घुँघरूदार पायल [4]भयावह और भूतग्रस्त [5]चन्दन

## कैफ़ी आज़मी

मैं ढूँढ़ता हूँ जिसे वो जहाँ नहीं मिलता
नयी ज़मीन नया आसमाँ नहीं मिलता

नयी ज़मीन नया आस्माँ भी मिल जाये
नये-बशर[1] का कहीं कुछ निशाँ नहीं मिलता

वो तेग[2] मिल गयी जिससे हुआ है क़त्ल मिरा
किसी के हाथ का उस पर निशाँ नहीं मिलता

वो मेरा गाँव है वो मेरे गाँव के चूल्हे
कि जिनमें शोले तो शोले, धुआँ नहीं मिलता

जो इक ख़ुदा नहीं मिलता तो इतना मातम ज्यों
मुझे ख़ुद अपने क़दम का निशाँ नहीं मिलता

खड़ा हूँ कब से मैं चेहरों के एक जंगल में
तुज्हारे चेहरे का कुछ भी यहाँ नहीं मिलता

[1]मानव [2]तलवार

**2**

की है कोई हसीन ख़ता हर ख़ता के साथ
थोड़ा-सा प्यार भी मुझे दे दो सज़ा के साथ

गर डूबना ही अपना मुक़द्दर है तो सुनो
डूबेंगे हम ज़रूर मगर नाख़ुदा[1] के साथ

मंज़िल से वो भी दूर था और हम भी दूर थे
हमने भी धूल उड़ाई बहुत रहनुमा[2] के साथ

रक़्स-ए-सबा[3] के जश्न से हम तुम भी नाचते
ऐ काश तुम भी आ गये होते सबा के साथ

इज्कीसवीं सदी की तरफ़ हम चले तो हैं
फ़ित्ने भी जाग उठे हैं आवाज़-ए-पा के साथ

ऐसा लगा ग़रीबी की रेखा से हूँ बलन्द
पूछा किसी ने हाल कुछ ऐसी अदा के साथ

[1]खेवनहार, माँझी [2]मार्गदर्शक [3]पुरवाई का नृत्य

**3**

शोर यूँही न परिन्दों[1] ने मचाया होगा
कोई जंगल की तरफ़ शहर से आया होगा

पेड़ के काटने वालों को ये मालूम तो था
जिस्म जल जाएँगे जब सर पे न साया होगा

बानी-ए-जश्न-ए-बहाराँ[2] ने ये सोचा भी नहीं
किस ने काँटों को लहू अपना पिलाया होगा

बिजली के तार पे बैठा हुआ तन्हा पंछी
सोचता है कि वो जंगल तो पराया होगा

अपने जंगल से जो घबरा के उड़े थे प्यासे
हर सराब[3] उन को समन्दर नज़र आया होगा

[1]पक्षियों [2]बसन्त उत्सव का प्रवर्तक [3]मरीचिका

**4**

वो भी सराहने लगे अरबाब-ए-फ़न[1] के बाद
दाद-ए-सुख़न[2] मिली मुझे तर्क-ए-सुख़न[3] के बाद

दीवानावार चाँद से आगे निकल गये
ठहरा न दिल कहीं ज़ी तिरी अंजुमन के बाद

होठों को सी के देखिए पछताइएगा आप
हंगामे जाग उठते हैं अक़्सर घुटन के बाद

ग़ुर्बत[4] की ठंडी छाँव में याद आई उसकी धूप
क़द्र-ए-वतन[5] हुई हमें तर्क-ए-वतन[6] के बाद

इन्साँ की ख़्वाहिशों की कोई इन्तिहा नहीं
दो गज़ ज़मीं भी चाहिए, दो गज़ कफ़न के बाद

एलान-ए-हक़ में ख़तरा-ए-दार-ओ-रसन[7] तो है
लेकिन सवाल ये है कि दार-ओ-रसन के बाद

[1]कलाकारगण [2] कविता की प्रशंसा [3]शाइरी छोड़ना [4]परदेश [5]देश की प्रतिष्ठा की पहचान [6]देश त्याग [7]फाँसी पाने का ख़तरा

## शहरयार

वास्तविक नाम : कुँवर अख़लाक़ मुहम्मद ख़ाँ
(1936-2012)

शदीद[1] प्यास थी फिर भी छुआ न पानी को
मैं देखता रहा दरिया तिरी रवानी[2] को

सियाह रात ने बेहाल कर दिया मुझको
कि तूल दे नहीं पाया[3] किसी कहानी को

बजाय मेरे किसी और का तक़र्रुर[4] हो
क़ुबूल जो करे ख़्वाबों की पासबानी[5] को

अमाँ की जा[6] मुझे ऐ शहर तूने दी तो है
भुला न पाऊँगा सेहरा[7] की बेकरानी[8] को

जो चाहता है कि इक़बाल हो सवा तेरा[9]
तो सबमें बाँट बराबर से शादमानी[10] को

[1]तीव्र [2]प्रवाह [3]लम्बा न खींच सका [4]नियुक्ति [5]पहरेदारी [6]शरणस्थली [7]रेगिस्तान [8]असीमपन [9]तेरा प्रताप बढ़े [10]प्रसन्नता

**2**

सियाह रात नहीं लेती है नाम ढलने का
यही तो वक़्त है सूरज तिरे निकलने का

यहाँ से गुज़रे हैं, गुज़रेंगे हम-से अहले-वफ़ा
ये रास्ता नहीं परछाइयों के चलने का

कहीं न सबको समन्दर बहा के ले जाए
ये खेल ख़त्म करो किश्तियाँ बदलने का

बिगड़ गया जो ये नक़्शा हविस के हाथों से
तो फिर किसी के सँभाले नहीं सँभलने का

ज़मीं ने कर लिया क्या तीरगी[1] से समझौता
ख़्याल छोड़ चुके क्या चिराग़ जलने का

[1]अन्धकार

**3**

कहाँ तक वक़्त के दरिया को हम ठहरा हुआ देखें
ये हसरत है कि इन आँखों से कुछ होता हुआ देखें

बहुत मुद्दत हुई ये आरज़ू करते हुए हमको
कभी मंज़र कहीं हम कोई, अनदेखा हुआ देखें

सुकूते-शाम[1] से पहले की मंज़िल सख़्त होती है
कहो लोगों से सूरज को न यूँ ढलता हुआ देखें

धुएँ के बादलों में छुप गये उजले मकाँ सारे,
ये चाहा था कि मंज़र शहर का बदला हुआ देखें

हमारी बेहिसी[2] पर रोने वाला भी नहीं कोई,
चलो जल्दी चलो कि शहर को जलता हुआ देखें

[1]सन्ध्या का मौन [2]जड़ता

4

किस फ़िक्र किस ख़्याल में खोया हुआ सा है
दिल आज तेरी याद को भूला हुआ सा है

गुलशन में इस तरह से कब आई थी फ़स्ले-गुल[1]
हर फूल अपनी शाख़ से टूटा हुआ सा है

चल चल के थक गया है कि मंज़िल नहीं कोई
क्यों वक़्त एक मोड़ पर ठहरा हुआ सा है

क्या हादिसा हुआ है जहाँ में कि आज फिर
चेहरा हर-एक शख़्स का उतरा हुआ सा है

नज़राना तेरे हुस्न को क्या दें कि अपने पास
ले-दे के एक दिल है सो टूटा हुआ सा है

पहले था जो भी, आज मगर कारोबारे-इश्क़
दुनिया के कारोबार से मिलता हुआ सा है

लगता है उसकी बातों से ये शहरयार भी
यारों के इल्तिफ़ात[2] से मारा हुआ सा है

[1]बहार का मौसम [2]कृपा

## अहमद फ़राज़

(1931–2008)

रंजिश ही सही दिल ही दुखाने के लिए आ
आ फिर से मुझे छोड़ के जाने के लिए आ

कुछ तो मेरे पिन्दारे-मुहब्बत[1] का भरम रख
तू भी तो कभी मुझको मनाने के लिए आ

पहले से मरासिम[2] न सही फिर भी कभी तो
रस्मो-रहे-दुनिया[3] ही निभाने के लिए आ

किस किस को बताएँगे जुदाई का सबब हम
तू मुझसे ख़फ़ा है तो ज़माने के लिए आ

इक उम्र से हूँ लज़्ज़ते-गिरिय:[4] से भी महरूम[5]
ऐ राहते-जाँ[6] मुझको रुलाने के लिए आ

अब तक दिले-ख़ुशफ़हम[7] को है तुझसे उमीदें
ये आख़िरी शमअें[8] भी बुझाने के लिए आ

[1]प्रेमाभिमान [2]प्रेम व्यवहार [3]सांसारिक शिष्टाचार [4]विलाप का स्वाद [5]वंचित [6]प्राणाधार [7]अच्छे विचार वाला हृदय [8]दीपक (बहुवचन में)

**2**

अबके रुत बदली तो ख़ुश्बू का सफ़र देखेगा कौन
ज़ख़्म फूलों की तरह महकेंगे पर देखेगा कौन

देखना सब रक़्से बिस्मिल में मगन हो जाएँगे
जिस तरफ़ से तीर आएगा उधर देखेगा कौन

ज़ख़्म जितने भी थे सब मनसूब क़ातिल से हुए
तेरे हाथों के निशान-ए-चारागर देखेगा कौन

वह हवस हो या वफ़ा हो बात महरूमी की है
लोग तो फल फूल देखेंगे शजर देखेगा कौन

मेरी आवाज़ों के साये मेरे बाम-ओ-दर पे हैं
मेरे लफ़्ज़ों में उतर कर मेरा घर देखेगा कौन

हम चराग़े शब ही जब ठहरे तो फिर क्या सोचना
रात थी किसका मुक़द्दर और सहर देखेगा कौन

मेरी किताबें मेरी मंज़िलें हैं, एक जिस्मानी तौर पर, रूहानी तौर पर, जिन-जिन मनाज़िल से हम गुज़रते हैं, बस उन्हीं मंज़िलों का बयान हैं, हिज्र, विसाल, नफ़रत, मोहब्बत जैसे तजुर्बात जैसे-जैसे हुए बयाँ हुए।

मैं ज्यों दूर रहा कैम्पबाज़ी से या नहीं जुड़ा किसी ख़ास क़िस्म की आइडियोलॉजी वाले ग्रुप से? बस ये लगता था कि अन्दर की जो पोएटिक कनविक्शन की कमज़ोरी ही लोगों को ऐसा करवाती है; कमज़ोर आदमी, कमज़ोर शायरी, तख़लीकी जज़्बा इस क़िस्म की छोटी-छोटी पनाहों की तरफ़ ले जाती है। आइडियोलॉजिकल चीज़ों या नॉनफ़िलासफी को वर्सीफाई करना तो शायरी नहीं। शायरी कुछ और चीज़ है।

**— मुनीर नियाजी**

प्रस्तुति : म.कु.

# मुनीर नियाज़ी

उस बेवफ़ा का शहर है और हम हैं दोस्तो
अश्के-रवाँ की नहर है और हम हैं दोस्तो

ये अजनबी-सी मंज़िलें और रफ़्तगा की याद
तन्हाइयों का ज़हर है और हम हैं दोस्तो

लायी है अब उड़ाके गये मौसमों की बास
बरखा के रुत का क़हर है और हम हैं दोस्तो

फिरते हैं मिस्ले-मौज़े-हवा शह्र-शह्र में
आवारगी की लहर है और हम हैं दोस्तो

शाम-ए-अलम ढली तो चली दर्द की हवा
रातों का पिछला पहर है और हम हैं दोस्तो

आँखों में उड़ रही है लुटी महफ़िलों की धूल
इबरत सराय-ए-दहर है और हम हैं दोस्तो

**2**

जो मुझे भुला देंगे मैं उन्हें भुला दूँगा
सब ग़ुरूर उनका मैं ख़ाक में मिला दूँगा

रखता हूँ सब नसीहतें, सुन रहा हूँ सब बातें
सब हिसाब उनका मैं एक दिन चुका दूँगा

रोशनी दिखा दूँगा, उन अँधेर नगरों में
एक हवा ज़ियाओं की चार-सूँ चला दूँगा

**3**

नौहागरों[1] में दीद-ए-तर[2] भी उसी का था
मुझ पर ये ज़ुल्म बारेदिगर[3] भी उसी का था

देखा मुझे तो तर्के-तअल्लुक़[4] के बावजूद
वो मुस्करा दिया ये हुनर भी उसी का था

ख़ंज़र-दर-आस्तीं[5] ही मिला, जब कभी मिला
वो तेग[6] खींचता तो ये सर भी उसी का था

नश्तर चुभे हुए थे रगे-जाँ के आसपास
वो चारागर[7] था और मुझे डर उसी का था

महफ़िल में कल 'फ़राज़' ही शायद था लबकुशा[8]
मक़्तल[9] में आज कास-ए-सर[10] भी उसी का था

[1]रोनेवालों [2]भीगी आँखें [3]दोबारा [4]सम्बन्ध विच्छेद [5]आस्तीन में खंजर लिए [6]तलवार [7]इलाज करने वाला [8]बोलने वाला [9]वधस्थल [10]खोपड़ी, कपाल

**4**

अजब जुनूने-मुसाफ़त[1] में घर से निकला था
ख़बर नहीं है कि सूरज किधर से निकला था

ये कौन फिर से उन्हीं रास्तों में छोड़ गया
अभी-अभी तो अज़ाबे-सफ़र[2] से निकला था

मैं रात टूट के रोया तो चैन से सोया
कि दिल का ज़हर मेरे चश्मेतर से निकला था

ये अब जो आग बना शहर-शहर फैला है
यही धुआँ मेरे दीवारो-दर से निकला था

ये अब जो सर हैं, ख़मीदा[3], कुलाह[4] की ख़ातिर
ये ऐब भी तो हम अहले-हुनर से निकला था

वो क़ैस[5], अब जिसे मजनू पुकारते हैं 'फ़राज़'
तेरी तरह कोई दीवाना घर से निकला था

[1]यात्रा के जुनून में [2]यात्रा की पीड़ा [3]झुके हुए [4]टोपी [5]मजनूँ का प्रारम्भिक नाम

## दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता

(उपन्यास)

**सुरेन्द्र वर्मा**

मूल्य : 280 रुपये

उपभोक्ता समाज में जीने की एक ही शर्त है— अपनी किसी योग्यता को बाजार में बेच पाना। छोटे बाजार में छोटी कीमत, बड़े बाजार में ऊँची कीमत। ऊँची कीमत से ही सरप्लस, अधिशेष बनेगा और धन का संचय हो सकेगा। इससे सुख और ऊँची जीवन शैली तो प्राप्त हो जाती है, लेकिन बाजार अपनी पूरी कीमत वसूलता है।

सुरक्षा और समृद्धि का सपना सँजोये शिक्षित-सुन्दर नील और अल्प-शिक्षित भोला अवसर और समृद्धि के महानगर मुम्बई पहुँचते हैं। भोला को अंडरवर्ल्ड पनाह देता है तो नील मिसेज दस्तूर का शोध-सहायक बनता है। अंडरवर्ल्ड भोला पर विश्वास बढ़ाता और भोला तरक्की करता जाता है। दो पैसे भी जोड़ता है। उधर सजीला, शालीन, ज़हीन नील असन्तुष्ट अधेड़ धनाढ्य महिलाओं के लिए पुरुष-वेश्या (जिगोलो) बन जाता है। उसका सितारा ऊँचा चढ़ता जाता है। सोमपुरिया सेठ की बेटी पारुल नील से प्रेम कर गर्भवती हो गयी और नील नैन के प्रेम में पागल। नील नैन से विवाह की सोचता है तो पारुल घराना उसे कुचल देता है। भोला के जरिए माफिया तक जाता है तो माफिया भी हत्या की सुपारी लेकर नील को मार डालता है। भोला हतप्रभ और सुन्न हो जाता है।

साँस रोककर पढ़ी जानेवाली इस कथा में सफेदपोश अपराधी और माफिया दोनों हैं। दो जिन्दादिल मुम्बई गये थे—मुर्दा बनकर रह गये। उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में सुरेन्द्र वर्मा एक नयी कथाभूमि लेकर उपस्थित हुए हैं। यह कृति न केवल पाठकों को मोहेगी वरन चौंकाएगी भी।

## ख़ूबसूरत है आज भी दुनिया

(ग़ज़ल)

**माधव कौशिक**

मूल्य : 110 रुपये

आज का समय इतिहास के सर्वाधिक संकटपूर्ण कालखंडों में से एक है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति तथा बाज़ारवाद का अजगर हमारे सम्बन्धों की सारी ऊर्जा तथा ऊष्मा को सोखने लगा है। भूमंडलीकरण तथा उदारवाद की आँधी ने मानवीय समाज के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद ने इस विषैले वातावरण को रक्तरंजित कर इसे और अधिक भयावह बना दिया है। ऐसी अराजक परिस्थितियों तथा दमघोंटू वातावरण में केवल सृजनशील रचनाकार ही अपने कलम जैसे नाजुक हथियार के साथ युद्ध के मैदान में डटे हैं। इन कलमकारों की अदम्य जिजीविषा तथा अटूट आस्था ही समाज का सम्बल बनती है।

'ख़ूबसूरत है आज भी दुनिया' संग्रह की ग़ज़लों में इन्हीं विषम तथा विकट स्थितियों में फँसे आम आदमी की आह और कराह के साथ उसके सपने, उसकी आशा-निराशा तथा उसके संघर्ष को वाणी देने की कोशिश की गयी है। इस सारे कलुष तथा कालिमा के बावजूद दुनिया का नैसर्गिक सौन्दर्य हमें जीने के लिए बाध्य करता है। संसार की इसी ख़ूबसूरती को बनाए रखने तथा बचाए रखने के लिए प्रत्येक सृजनशील साहित्यकार अपनी तरह से प्रयास करता है। इन ग़ज़लों की प्रत्येक काव्य-पंक्ति में मानवता के हाहाकार के पार्श्व से उठते हुए मानव-मूल्यों के जयकार का स्वर भी सुनाई देगा। इसी घटाटोप अँधियारे को चीर कर आस्था, विश्वास तथा संघर्षशीलता का उजास आपको आग पर चलने के लिए विवश करता रहेगा।

## भारतीय ज्ञानपीठ के दो नये गौरवशाली ग्रन्थ
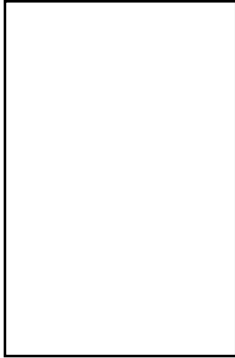
**संचयन मोहन राकेश**
(रचना संचयन)
**सम्पा. : रवीन्द्र कालिया**
सहायक सम्पा. : कुणाल सिंह
मूल्य : 600 रुपये

# संचयन मोहन राकेश

मोहन राकेश नयी कहानी के दौर के प्रतिष्ठित कथाकार, उपन्यासकार, चिन्तक और नाटककार हैं। राकेश की उस पूरे दौर के विचार और संवेदना परिदृश्य के निर्माण में अहम भूमिका थी। राकेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, ध्वनि नाटक, बीज नाटक और रंगमंच— इन सभी क्षेत्रों में मोहन राकेश का नाम सर्वोपरि है। कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार— तीनों रूपों में वे सृजन के नये प्रस्थान निर्मित करते हैं। इस संचयन में हमने मोहन राकेश के दो उपन्यासों— 'अँधेरे बन्द कमरे' और 'न आने वाला कल' का संक्षिप्त पाठ प्रस्तुत किया है। 'अँधेरे बन्द कमरे' हिन्दी के उन गिने-चुने उपन्यासों में है जो नागर जीवन की त्रासदियों को प्रस्तुत करता है। 'न आने वाला कल' तेज़ी से बदलते आधुनिक जीवन तथा व्यक्ति और उनकी प्रतिक्रियाओं पर बहुत प्रसिद्ध उपन्यास है। राकेश ने भले ही कई कालजयी कहानियों तथा उपन्यासों का सृजन किया हो, लेकिन वे मूलत: एक नाटककार ही थे। 'आषाढ का एक दिन' उनका सर्वाधिक चर्चित नाटक रहा है। इस संचयन में इसे अविकल रूप से शामिल किया जा रहा है। साथ ही साथ 'अंडे के छिलके' तथा अन्य कतिपय एकांकियों को भी इस संचयन में स्थान दिया गया है। हमने कोशिश की है कि तब के दौर में राकेश ने यत्र-तत्र जो विचार प्रकट किये, यहाँ उनकी भी शमूलियत हो। इस क्रम में हमने राकेश के ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण कुछ निबन्धों का भी संचयन किया गया है। इस संचयन की एक उपलब्धि के तौर पर मोहन राकेश की डायरी के कुछ पन्नों को लिया जा सकता है। आशा है हिन्दी साहित्य और मोहन राकेश के पाठक इन रचनाओं के चयन को पसन्द करेंगे।
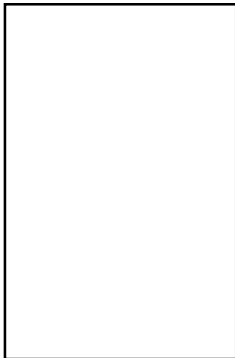
**संशय के साये**
(रचना संचयन)
**कृष्ण बलदेव वैद**
सम्पा. : अशोक वाजपेयी
उदयन वाजपेयी
मूल्य : 550 रुपये

# संशय के साये **कृष्ण बलदेव वैद संचयन**

मोहन राकेश नयी कहानी के दौर के प्रतिष्ठित कथाकार, उपन्यासकार, चिन्तक और नाटककार हैं। राकेश की उस पूरे दौर के विचार और संवेदना परिदृश्य के निर्माण में अहम भूमिका थी। राकेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, ध्वनि नाटक, बीज नाटक और रंगमंच— इन सभी क्षेत्रों में मोहन राकेश का नाम सर्वोपरि है। कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार— तीनों रूपों में वे सृजन के नये प्रस्थान निर्मित करते हैं। इस संचयन में हमने मोहन राकेश के दो उपन्यासों— 'अँधेरे बन्द कमरे' और 'न आने वाला कल' का संक्षिप्त पाठ प्रस्तुत किया है। 'अँधेरे बन्द कमरे' हिन्दी के उन गिने-चुने उपन्यासों में है जो नागर जीवन की त्रासदियों को प्रस्तुत करता है। 'न आने वाला कल' तेज़ी से बदलते आधुनिक जीवन तथा व्यक्ति और उनकी प्रतिक्रियाओं पर बहुत प्रसिद्ध उपन्यास है। राकेश ने भले ही कई कालजयी कहानियों तथा उपन्यासों का सृजन किया हो, लेकिन वे मूलत: एक नाटककार ही थे। 'आषाढ का एक दिन' उनका सर्वाधिक चर्चित नाटक रहा है। इस संचयन में इसे अविकल रूप से शामिल किया जा रहा है। साथ ही साथ 'अंडे के छिलके' तथा अन्य कतिपय एकांकियों को भी इस संचयन में स्थान दिया गया है। हमने कोशिश की है कि तब के दौर में राकेश ने यत्र-तत्र जो विचार प्रकट किये, यहाँ उनकी भी शमूलियत हो। इस क्रम में हमने राकेश के ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण कुछ निबन्धों का भी संचयन किया गया है। इस संचयन की एक उपलब्धि के तौर पर मोहन राकेश की डायरी के कुछ पन्नों को लिया जा सकता है।

# गुलज़ार से राहत इन्दौरी तक का सफ़र

## गुलज़ार

हवास का जहान साथ ले गया
वो सारे बादबान साथ ले गया

बतायें ज़्या, वो आफ़ताब था कोई
गया तो आसमान साथ ले गया

किताब बन्द की और उठके चल दिया
तमाम दास्तान साथ ले गया

मैं सजदे से उठा तो कोई भी न था
वो पाँव के निशान साथ ले गया

वो बे-पनाह प्यार करता था मुझे
गया तो मेरी जान साथ ले गया

सिरे उधड़ गये हैं सुबह-ओ-शाम के
वो मेरे दो जहान साथ ले गया

**2**

आँखों में जल रहा है प बुझता नहीं धुआँ
उठता तो है घटा-सा बरसता नहीं धुआँ

पलकों के ढाँपने से भी, रुकता नहीं धुआँ
कितनी उँड़ेली आँखें प बुझता नहीं धुआँ

आँखों से आँसुओं के मरासिम पुराने हैं
मेहमाँ ये घर में आयें तो चुभता नहीं धुआँ

चूल्हे नहीं जलाये कि बस्ती ही जल गयी
कुछ रोज़ हो गये हैं अब उठता नहीं धुआँ

आँखों के पोंछने से लगा आग का पता
यूँ चेहरा फेर लेने से छुपता नहीं धुआँ

काली लकीरें खींच रहा है फ़िज़ाओं में
बौरा गया है, मुँह से ज़्यों खुलता नहीं धुआँ

चिंगारी इक अटक सी गयी मेरे सीने में
थोड़ा-सा आ के फूँक दो, उड़ता नहीं धुआँ

**3**

दिन कुछ ऐसे गुज़ारता है कोई
जैसे एहसाँ उतारता है कोई

दिल में कुछ यूँ सँभालता हूँ ग़म
जैसे ज़ेवर सँभालता है कोई

आईना देख कर तसल्ली हुई
हमको इस घर में जानता है कोई

पेड़ पर पक गया है फल शायद
फिर से पत्थर उछालता है कोई

कौन लपकेगा चाँद को बढ़कर
रोज़ ये गेंद उछालता है कोई

**4**

एक परवाज़ दिखायी दी है
तेरी आवाज़ सुनायी दी है

सिर्फ़ एक सफ़ह पलट कर उसने
सारी बातों की सफ़ाई दी है

फिर वहीं लौट के जाना होगा
यार ने कैसी रिहाई दी है

जिसकी आँखों में कटी थीं सदियाँ
उसने सदियों की जुदाई दी है

ज़िन्दगी पर भी कोई ज़ोर नहीं
दिल ने हर चीज़ पराई दी है

आग में ज़्या-ज़्या जला है शब भर
कितनी ख़ुशरंग दिखायी दी है

## जावेद अख़्तर

हमारे शौक़ की ये इन्तिहा थी
क़दम रख़्खा कि मंज़िल रास्ता थी

बिछड़ के डार से बन-बन फिरा वो
हिरन को अपनी कस्तूरी सज़ा थी

कभी जो ख़्वाब था वो पा लिया है
मगर जो खो गयी वो चीज़ क्या थी

मैं बचपन में खिलौने तोड़ता था
मिरे अंजाम की वो इब्तिदा थी

मुहब्बत मर गयी मुझको भी ग़म है
मेरे अच्छे दिनों की आशना थी

जिसे छू लूँ मैं वो हो जाए सोना
तुझे देखा तो जाना बद्दुआ थी

मरीज़े-ख़्वाब को तो अब शिफ़ा है
मगर दुनिया बड़ी कड़वी दवा थी

**2**

वो ढल रहा है तो ये भी रंगत बदल रही है
ज़मीन सूरज की उँगलियों से फिसल रही है

जो मुझको ज़िन्दा जला रहे हैं वो बेख़बर हैं
कि मेरी ज़ंजीर धीरे-धीरे पिघल रही है

मैं क़त्ल तो हो गया तुम्हारी गली में लेकिन
मेरे लहू से तुम्हारी दीवार गल रही है

न जलने पाते थे जिसके चूल्हे भी हर सवेरे
सुना है कल रात से वो बस्ती भी जल रही है

मैं जानता हूँ कि ख़ामोशी में ही मसलहत है
मगर यही मसलहत मेरे दिल को खल रही है

कभी तो इंसान ज़िन्दगी की करेगा इज़्ज़त
ये एक उम्मीद आज भी दिल में पल रही है

## निदा फाज़ली

गरज बरस प्यासी धरती पे फिर पानी दे मौला
चिड़ियों को दाने बच्चों को गुड़धानी दे मौला

दो और दो का जोड़ हमेशा चार कहाँ होता है
सोच-समझ वालों को थोड़ी नादानी दे मौला

फिर रौशन कर ज़हर का प्याला चमका नयी सलीबें
झूठों की दुनिया में सच को लाभ-हानि दे मौला

फिर मूरत से बाहर आकर चारों ओर बिखर जा
फिर मन्दिर को कोई मीरा दीवानी दे मौला

तेरे होते कोई किसी की जान का दुश्मन क्यों हो
जीने वालों को मरने की आसानी दे मौला

**2**

उठके कपड़े बदल, घर से बाहर निकल, जो हुआ सो हुआ
रात के बाद दिन, आज के बाद कल, जो हुआ सो हुआ

जब तलक साँस है, भूख है प्यास है, ये ही इतिहास है
रखके काँधे पे हल, खेत की ओर चल, जो हुआ सो हुआ

ख़ून से तर-ब-तर, करके हर रहगुज़र, थक चुके जानवर
लकड़ियों की तरह, फिर से चूल्हे में जल, जो हुआ सो हुआ

जो मरा क्यों मरा, जो जला क्यों जला, जो लुटा क्यों लुटा
मुद्दतों से हैं गुम, इन सवालों के हल, जो हुआ सो हुआ

मन्दिरों में भजन, मस्जिदों में अज़ाँ आदमी है कहाँ
आदमी के लिए एक ताज़ा ग़ज़ल, जो हुआ सो हुआ

## बशीर बद्र

**( जन्म : 1935 )**

मेरी नज़र में ख़ाक, तेरे आईने में गर्द है
ये चाँद कितना ज़र्द है, ये रात कितनी सर्द है

कभी-कभी तो यों लगा कि ये सभी मशीन हैं
तमाम शह्र में न कोई ज़न[1] न कोई मर्द है

ख़ुदा की नज़्मों की किताब सारी कायनात है
ग़ज़ल के शे'र की तरह हर एक फ़र्द[2], फ़र्द[3] है

इसे तबर्रुक़े-हयात[4] कहके पलकों पर रखूँ
अगर मुझे यक़ीन हो ये रास्ते की गर्द है

वो जिनके ज़िक्र से रगों में दौड़ती थीं बिजलियाँ
उन्हीं का हाथ हमने छूके देखा कितना सर्द है

[1]औरत [2]व्यक्ति [3]इकाई [4]जीवन का प्रसाद

**2**

आसमाँ-आसमाँ तारों का सफ़र लगता है
इस पहाड़ी पे मुझे चाँद का घर लगता है

चाँद महराब पे सोई हुई इक आयत है
बेवज़ू आँखें हैं पढ़ते हुए डर लगता है

ऐसा लगता है कोई साँप छुपा बैठा हो
फूल से हाथ मिलाते हुए डर लगता है

ज़िन्दगी तूने मुझे क़ब्र से कम दी है ज़मीं
पाँव फैलाऊँ तो दीवार में सर लगता है

मैं तेरे साथ सितारों से गुज़र सकता हूँ
कितना आसान मुहब्बत का सफ़र लगता है

**3**

जाने वालों से राब्ता[1] रखना
दोस्तो! रस्मे-फ़ातहा[2] रखना

जब किसी से कोई गिला रखना
सामने अपने आईना रखना

घर की तामीर चाहे कैसी हो
इसमें रोने की कुछ जगह रखना

जिस्म में फैलने लगा है शह्र
अपनी तन्हाइयाँ बचा रखना

मस्जिदें हैं नमाज़ियों के लिए
अपने दिल में कहीं ख़ुदा रखना

मिलना-जुलना जहाँ ज़रूरी हो
मिलने-जुलने का हौसला रखना

उम्र करने को है पचास के पार
कौन है किस जगह पता रखना

[1]सम्बन्ध [2]क़ब्र पर प्रार्थना करना

**4**

रात आँखों में ढली, पलकों पे जुगनू आये
हम हवाओं की तरह जा के उसे छू आये

बस गयी है मेरे अहसास में ये कैसी महक
कोई ख़ुशबू मैं लगाऊँ तेरी ख़ुशबू आये

उसने छू कर मुझे पत्थर से फिर इंसान किया
मुद्दतों बाद मेरी आँखों में आँसू आये

उसकी आँखें मुझे मीरा का भजन लगती हैं
पलकें झपकाये तो लोबान की ख़ुशबू आये

उन फ़क़ीरों को ग़ज़ल अपनी सुनाते रहियो
जिनकी आवाज़ में दरगाहों की ख़ुशबू आये

## मुनव्वर राना

हमारा तीर कुछ भी हो निशाने तक पहुँचता है
परिन्दा कोई मौसम हो ठिकाने तक पहुँचता है

धुआँ बादल नहीं होता कि बचपन दौड़ पड़ता है
ख़ुशी से कौन बच्चा कारख़ाने तक पहुँचता है

हमारी मुफ़लिसी पर आपको हँसना मुबारक हो
मगर यह तंज़ हर सैयद घराने तक पहुँचता है

मैं चाहूँ तो मिठाई की दुकानें खोल सकता हूँ
मगर बचपन हमेशा रामदाने तक पहुँचता है

अभी ऐ ज़िन्दगी तुझको हमारा साथ देना है
अभी बेटा हमारा सिर्फ़ शानों तक पहुँचता है

सफ़र का वक़्त आ जाये तो फिर कोई नहीं रुकता
मुसाफ़िर ख़ुद से चल कर आब-ओ-दाने तक पहुँचता है।

2

बहुत पानी बरसता है तो मिट्टी बैठ जाती है
न रोया कर बहुत रोने से छाती बैठ जाती है

यही मौसम था जब नंगे बदन छत पर टहलते थे
यही मौसम है अब सीने में सर्दी बैठ जाती है

चलो माना कि शहनाई मर्सरत[1] की निशानी है
मगर वह शख़्स जिसकी आ के बेटी बैठ जाती है

बड़े-बूढ़े कुएँ में नेकियाँ क्यों फेंक आते हैं
कुएँ में छुप के आख़िर क्यों ये नेकी बैठ जाती है

नक़ाब उलटे हुए जब भी चमन से वह गुज़रता है
समझ कर फूल उसके लब पे तितली बैठ जाती है

सियासत नफ़रतों का ज़ख़्म भरने ही नहीं देती
जहाँ भरने पे आता है तो मक्खी बैठ जाती है

वो दुश्मन ही सही आवाज़ दे उसको मुहब्बत से
सलीक़े से बिठा कर देख हड्डी बैठ जाती है

[1] ख़ुशी

**3**

जिसे दुश्मन समझता हूँ वही अपना निकलता है,
हर इक पत्थर से, मेरे सिर का, कुछ रिश्ता निकलता है

डरा-धमका के तुम हमसे वफ़ा करने को कहते हो,
कहीं तलवार से भी पाँव का काँटा निकलता है

ज़रा-सा झुटपुटा होते ही छुप जाता है सूरज भी,
मगर इक चाँद है जो शब में भी तन्हा निकलता है

किसी के पास आते हैं तो दरिया सूख जाते हैं
किसी की ऐड़ियों से रेत में चश्मा निकलता है

फ़ज़ा में घोल दी है नफ़रतें अहले-सियासत[1] ने
मगर पानी कुएँ से आज तक मीठा निकलता है

जिसे भी जुर्मे-गद्दारी में तुम सब क़त्ल करते हो
उसी की जेब से क्यों मुल्क का झंडा निकलता है

दुआएँ माँ की, पहुँचाने को मीलो-मील जाती हैं
कि जब पदरेस जाने के लिए बेटा निकलता है

[1]सियासत के लोग

## वसीम बरेलवी

ज़रा-सा क़तरा कहीं आज अगर उभरता है
समन्दरों ही के लहज़े में बात करता है

खुली छतों के दिये कब के बुझ गये होते
कोई तो है, जो हवाओं के पर कतरता है

शराफ़तों की यहाँ कोई अहमियत[1] ही नहीं
किसी का कुछ न बिगाड़ो, तो कौन डरता है

यह देखना है कि सहरा[2] भी है, समन्दर भी
वह मेरी तश्नालबी[3] किसके नाम करता है

तुम आ गये हो, तो कुछ चाँदनी-सी बातें हों
ज़मीं पे चाँद कहाँ रोज़-रोज़ उतरता है

ज़मीं की कैसी वकालत हो, फिर नहीं चलती
जब आसमाँ से कोई फ़ैसला उतरता है

[1] महज़ा [2] मरुस्थल [3] प्यास

**2**

सभी का धूप से बचने को सर नहीं होता
हर आदमी के मुक़द्दर में घर नहीं होता

कभी लहू से भी तारीख़ लिखनी पड़ती है
हर एक मारिका[1] बातों से सर नहीं होता

मैं उसकी आँख का आँसू न बन सका, वर्ना
मुझे भी ख़ाक में मिलने का डर नहीं होता

मुझे तलाश करोगे, तो फिर न पाओगे
मैं इक सदा हूँ, सदाओं का घर नहीं होता

हमारी आँख के आँसू की अपनी दुनिया है
किसी फ़क़ीर को शाहों का डर नहीं होता

क़लम उठाये मेरे हाथ थक गये, फिर भी
तुम्हारे घर की तरह मेरा घर नहीं होता

मैं उस मकान में रहता हूँ और ज़िन्दा हूँ
'वसीम' जिसमें हवा का गुज़र नहीं होता

**3**

कैसा दर्या है कि प्यासा तो न मरने देगा
अपनी गहराई का अन्दाज़ा[1] न करने देगा

ख़ाक-ए-पा[2] हो के मिलो, जिससे मिलो, फिर देखो
इस बुलन्दी[3] से तुम्हें कौन उतरने देगा

प्यार तहज़ीब-ए-तअल्लुक़[4] का अजब बन्धन है
कोई चाहे, तो हदें पार न करने देगा

डूब जाने को, जो तक़दीर समझ बैठे हों
ऐसे लोगों में मुझे कौन उभरने देगा

सब से जीती भी रहे, सब की चहीती भी रहे
ज़िन्दगी, ऐसे तुझे कौन गुज़रने देगा

दिल को समझाओ कि बेकार परेशाँ है 'वसीम'
अपनी मनमानी उसे कोई न करने देगा

[1]अनुमान [2]चरण-रज [3]ऊँचाई [4]सम्बन्धों की संस्कृति

**4**

हद[1] से बढ़ के तअल्लुक़[2] निभाया नहीं
मैंने इतना भी ख़ुद को गँवाया नहीं

जाते-जाते मुझे कैसा हक़ दे गया
वो पराया भी हो के पराया नहीं

प्यार को छोड़ के बाक़ी हर खेल में
जितना खोना पड़ा, उतना पाया नहीं

वापसी का सफ़र कितना दुश्वार[3] था
चाहकर भी उसे भूल पाया नहीं

उम्र सारी तमाशों में गुज़री मगर
मैंने ख़ुद को तमाशा बनाया नहीं

ज़िन्दगी का ये लम्बा सफ़र और 'वसीम'
जेब में दो क़दम का किराया नहीं

[1]सीमा [2]सम्बन्ध [3]कठिन

## राहत इन्दौरी

अपने होने का हम इस तरह पता देते थे
ख़ाक मुट्ठी में उठाते थे, उड़ा देते थे

बेसमर[1] जान के हम काट चुके हैं जो शजर[2]
याद आते हैं कि बेचारे हवा देते थे

उसकी महफ़िल में वही सच था, वो जो कुछ भी कहे
हम भी गूँगों की तरह हाथ उठा देते थे

अब मेरे हाल पे शर्मिन्दा हुए हैं वो बुज़ुर्ग
जो मुझे फूलने-फलने की दुआ देते थे

अब से पहले के जो क़ातिल थे बहुत अच्छे थे
क़त्ल से पहले वो पानी तो पिला देते थे

[1]फल विहीन [2]पेड़

2

आँख प्यासी है, कोई मंज़र दे
इस जज़ीरे[1] को भी समन्दर दे

अपना चेहरा तलाश करना है
गर नहीं आईना, तो पत्थर दे

बन्द कलियों को चाहिए शबनम
इन चिराग़ों में रोशनी भर दे

पत्थरों के सरों से कर्ज़ उतार
इस सदी को कोई पयम्बर दे

क़हक़हों में गुज़र रही है हयात,
अब किसी दिन उदास भी कर दे

फिर न कहना कि ख़ुदकुशी है गुनाह
आज फ़ुरसत है, फ़ैसला कर दे

[1]टापू

## पिछले पन्ने

**गुलज़ार**

(संस्मरण)

संस्मरण विधा लेखन की दूसरी विधाओं के बनिस्बत कठिन व दुष्कर विधा है और किन्हीं अर्थों में दुस्साध्य भी। इसलिए कि लेखन का बीज कही जा सकने वाली 'कल्पना' के लिए इस विधा में कोई स्पेस नहीं होता। कल्पना वह पानी है जिससे कुम्हार की तरह एक लेखक इतिवृत्तात्मकता की मिट्टी को गूँथकर एक रचना रचता है। इसी अर्थ में इसे एक दुस्साध्य विधा माना जा सकता है।

फिर संस्मरण ही एक ऐसी विधा है जहाँ लेखक की भी मौजूदगी होती है। यहाँ कठिनता यह है कि संस्मरण लेखक के पास जबर्दस्त अनुपात-बोध होना आवश्यक है। अर्थात् अपने कथ्य में लेखक की मौजूदगी बस उतनी होनी चाहिए जितना दाल में नमक।

लेकिन लेखक अगर गुलज़ार जैसी क़द्दावर शख़्सियत का मालिक हो तो इस अनुपात-बोध के गड़बड़ाने का ख़तरा पैदा हो जाना लाज़िमी है। 'पिछले पन्ने' के संस्मरणों से गुज़रते हुए बारहाँ हम चौंकते हैं कि गुलज़ार ने बिना अपनी कोई ख़ास मौजूदगी दर्ज किये, बड़ी रवानगी के साथ इन्हें रचा है। पुस्तक में संकलित पोर्ट्रेट्स व मर्सिया हमें दग्ध-विदग्ध करते हैं। बिमल राय, भूषण बनमाली, मीना कुमारी, जगजीत सिंह आदि को यहाँ जिस अपनेपन से याद किया गया है, हम उनके जीवन की उन अँधेरी कन्दराओं में भी झाँक आते हैं जो इनकी शख़्सियत की ऊपरी चमकीली रोशनियों में अब तक कहीं छिपी हुई थीं।

एक निहायत ही ज़रूरी व संग्रहणीय पुस्तक, जहाँ लेखक हमारे समकाल के आकाश में चमकते सितारों को ज़मीन पर उतार लाया है।

**—कुणाल सिंह**

# हिन्दी ग़ज़ल : सोचा था कुछ तो होगा

## अजय तिवारी

**हिन्दी में ग़ज़ल पर बातचीत** कई मायनों में दिलचस्प है। एक तो यह कि इश्क़ के नाजुक ख़यालों को माशूक़ा से कहने के लिए फ़ारसी में ग़ज़ल का जो रूप स्वीकृत था, वह बहुत कुछ दरबारी संस्कृति में सीमित बना रहा। हिन्दी में ग़ज़ल लोकप्रिय हुई बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में। देशव्यापी आन्दोलन के माहौल में—

*आज ये दीवार परदों की तरह हिलने लगी*
*शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।*

—दुष्यन्त कुमार

व्यवस्था की बुनियाद नहीं हिली लेकिन सत्ता के परदे हिल गये थे। ज़ाहिर है, ग़ज़ल के रूप और उसकी अन्तर्वस्तु में भारी परिवर्तन आ गया।

दूसरा अर्थ यह कि साहित्य-रूपों का जन्म और विकास विशेष सांस्कृतिक परिस्थितियों में होता है। जब उन्हें भिन्न सांस्कृतिक परिवेश में अपनाया जाता है, तब उनके स्वरूप में अप्रत्याशित परिवर्तन आता है। हिन्दी की ग़ज़ल इस मायने में काफ़ी ध्यान खींचने वाली विधा है।

### विरासत और अन्दाज़

जहाँ तक हिन्दी का सवाल है, लगभग शुरू से ग़ज़ल का प्रयोग होता रहा है। अगर हिन्दी-उर्दू को अलग भाषा मानें, तब कहना होगा कि 19वीं सदी में उर्दू के जन्म से पाँच-छः सौ साल पहले, खड़ी बोली में रचना की शुरुआत के समय से, ख़ुसरो और कबीर के लेखन में भी हमें ग़ज़ल का रूप दिखता है। हालाँकि अमीर ख़ुसरों की प्रसिद्धि ग़ज़ल के लिए नहीं है, लेकिन उनके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग ग़ज़ल के ढाँचे में ही हैं। 'जे हाल मिस्कीं मकुन तग़ाफुल...' उर्दू नहीं थी, फ़ारसी और हिन्दी की सन्धि थी। पूरे तौर पर हिन्दी में लिखी हुई उनकी ग़ज़ल बोलचाल की भाषा और मुहावरे का आदर्श पेश करती है—

*जब यार देखा नैन भर, दिल की गयी चिन्ता उतर,*
*ऐसा नहीं कोई अजब, राखे उसे समझाय कर।*
*जब आँख से ओझल भया, तड़पन लगा मेरा जिया,*
*हक़्का इलाही ज्या किया, आँसू चले भर लाय कर।...*

आगे चलकर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और अरबी-फ़ारसी बोझिल उर्दू का बँटवारा हुआ। यह काम 19वीं सदी की शुरुआत में अँग्रेज़ शासकों ने काफ़ी दूरदर्शिता के साथ किया। आज भी हमारे बौद्धिक जीवन से यह बँटवारा ख़त्म नहीं हुआ है। किसानों और मज़दूरों की भाषा में ऐसा कोई बँटवारा नहीं है लेकिन शिक्षित समुदाय इस सांस्कृतिक अलगाववाद को कट्टरता से अपनाता और बढ़ाता है। इतना होने पर भी साहित्य-रूपों का इतिहास और व्यवहार इस बँटवारे की निरर्थकता सिद्ध करता है। खुसरो के कनिष्ठ समकालीन (ऐन परवर्ती) कबीर थे। कबीर के समय भी उर्दू का जन्म नहीं हुआ था। लेकिन—

*'हमन' है इश्क़ मस्ताना, हमन को होशियारी ज्या,*
*रहें आज़ाद या जग में, हमन दुनिया से यारी ज्या।*

यह अभिव्यक्ति ग़ज़ल थी और हिन्दी में थी! उसके लहज़े में ऐसी रंगत खुसरो की अपेक्षा ज़्यादा है जिसे बाद में उर्दू कविता के साथ जुड़ा हुआ पाया जाता है। उर्दू के जन्म से पाँच सौ साल पहले, भक्त कवि कबीर के यहाँ वह लय और लहजा यह बताता है कि भाषा और छन्द का एक देसी ठाठ था, जिसके विकास का स्वाभाविक क्रम साम्राज्यवाद की सांस्कृतिक नीति के कारण खंडित हुआ। इससे हिन्दी (और उर्दू) के साहित्य का कितना नुकसान हुआ, इसका अन्दाज़ा लगाना मुश्किल है।

मुहम्मद मीर तक़ी 'मीर' को हिन्दी से अलग, उर्दू का कवि माना जाता है। लेकिन उनका समय 19वीं सदी में उर्दू के जन्म से पहले का

है— 18वीं सदी का। वे भी खुसरो की तरह ठेठ देसी भाषा के कवि हैं—

*सिरहाने मीर के आहिस्ता बोलो*
*अभी टुक रोते-रोते सो गया है।*

बोलचाल की यह भाषा हिन्दी है, इसमें सन्देह न रहे, ख़ुद मीर इस बारे में सचेत थे। अरबी-फ़ारसी प्रभावित 'उर्दू' से वे परिचित नहीं थे। वे ऐसी भाषा को कृत्रिम मानते थे और उसके विरोधी थे। वे अपनी 'हिन्दी' को काफ़ी गर्व से देखते थे। अरबी मिलाकर भाषा को कृत्रिम रूप देने का विरोध करते हुए उन्होंने एक मुशायरे में ललकारा था—

*ज़्या जाने लोग कहते हैं किसको सुरूरे-क़ल्व*
*आया नहीं है लफ़्ज़ ये हिन्दी ज़बाँ के बीच।*

मीर की इस हिन्दी ज़बान के दूसरे बड़े शायर थे मिर्ज़ा असदुल्ला ख़ाँ 'ग़ालिब'। 'उर्दू' से वे भी ख़ास दिलचस्पी रखते नहीं मालूम होते। वे मीर की 'रेज़्ता' के वारिस हैं—

*रेज़्ते के तुज़्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब*
*कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था।*

अपने पुरखों को आदर से याद करना हिन्दी की परज़्परा है। ग़ालिब उसी परज़्परा में मीर को याद कर रहे हैं। रेज़्ता बोलचाल की भाषा है। उसमें मीर ने पहले लिखा और कीर्तिमान रचा। ग़ालिब बाद में आये। मीर के आगे वे अपनी उस्तादी भूल जाते हैं। वरना अपने समय के 'उर्दू' शायरों की बात हो तो ग़ालिब भरपूर आत्मविश्वास से कहते हैं—

*हैं और भी दुनिया में सुख़नबर बहुत अच्छे*
*कहते हैं कि ग़ालिब का है अन्दाज़े-बयाँ और।*

हिन्दी को राष्ट्रभाषा या राष्ट्रीय सज़्पर्क की भाषा का दर्ज़ा हासिल है। उज़र और दक्षिण भारत को आर्य और द्रविड़ में बाँटकर अँग्रेज़ शासकों ने एक दूसरा विभाजन पैदा किया है, जिसके कारण उज़र भारत में दक्षिण की भाषाओं के प्रति विरोध और उदासीनता दिखायी देती है तथा दक्षिण भारत में उज़र की भाषाओं, विशेषत: हिन्दी का विरोध राजनीतिक लाभ का स्रोत बना हुआ है। साधारण लोगों को यह ध्यान भी नहीं आता कि हिन्दी का एक रूप दक्षिण में विकसित हुआ था। हैदराबाद के आस-पास विकसित हिन्दी का 'दकनी' रूप साहित्य की दृष्टि से, विशेषत: गद्य-रचना की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। दकनी को उर्दू कोई नहीं कहता। 16वीं-17वीं शताज़्दी में दकनी के पहले महाकवि मुहज़्मद क़ुली कुतुबशाह (1565-1612) ने सूफ़ियाना ढंग की शायरी की मिसाल पेश की। सांसारिक प्रेम के रूप में आध्यात्मिक प्रेम का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने बोलचाल की वही भाषा लिखी जो आज भी वहाँ प्रचलित है—

*साक़िया आ शराबे नाब कहाँ*
*चन्द प्याले में आफ़ताब कहाँ...*
*परदे में ज़्यूँ छुपेगा, ओझल काँ*
*सूर के नूर ऊपर नक़ाब कहाँ।*

मोह-माया के संसार में ख़ालिस शराब कहाँ मिली है? जैसे चाँद के प्याले में सूरज नहीं मिलता! सूरज नक़ाब में छिपता है न परदे में, वह अपना प्रकाश दिखाकर रहता है। यह बात प्रेम और ईश्वर दोनों पर समान रूप से लागू होती है।

क़ुली के परवर्ती शज़्सुद्दीन वली दकनी का समय 17 वीं सदी के उज़रार्ध से 18 वीं सदी के प्रारज़्भिक दो-ढाई दशक तक है—1668 से 1720-25 तक। क़ुली की तरह वली भी गहरे अर्थ और सरल भाषा का उदाहरण पेश करते हैं—

*मत ग़ुस्से के शोले सूँ जलते को जलाती-जा*
*टुक मेहर के पानी सूँ तू आग बुझाती जा...*
*तुझ मुख की परस्तिश में गयी उम्र मेरी सारी*
*ऐ बुत की पुजनहारी टुक इसको पुजाती जा...*

उज़र भारत में मीर का 'टुक' दक्षिण भारत में वली के यहाँ मौजूद है। बोलचाल की भाषा का यह व्यापक प्रसार सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के अन्त:सज़्बन्ध का द्योतक है। विडज़्बना देखिए, इन्हीं वली दकनी की मजार को 21वीं सदी के आरज़्भ में बुत के पुजनहारों ने तहस-नहस करके उसका नामोनिशान मिटा दिया! जन-संस्कृति की विरासत का विध्वंस 'सांस्कृतिक' राष्ट्रवाद की पहचान है। भाषा, क्षेत्र और सज़्प्रदाय का विद्वेष अँग्रेज़ों ने उत्पन्न किया, उसके सच्चे वारिस आज के क्षेत्रीय अन्धराष्ट्रवादी और हर रंग के सज़्प्रदायवादी हैं।

आज हम इस बँटवारे को आत्मसात कर चुके हैं। हमारे पुरखों ने इस अलगाव के विरुद्ध जो संघर्ष किया था, उसे ज़ी भूल गये हैं। मीर अपनी भाषा को 'हिन्दी' कहते थे। वह अमीर ख़ुसरो की 'हिन्दवी' और मिर्ज़ा ग़ालिब की 'रेज़्ता' ही थी। इनके वारिस हैं सैयद इंशा अल्ला ख़ाँ। 19वीं सदी के आरज़्भ में जब साज़्प्रदायिक आधार पर हिन्दी-उर्दू में अलगाव का सिद्धान्त विधिवत प्रचारित किया जाने लगा, तब इंशा ने पूरी तरह सचेत रूप में उसका विरोध किया। हिन्दी की अत्यन्त प्रसिद्ध 'रानी केतकी की कहानी' इन्हीं की लिखी है। कहानी का उद्देश्य कोई नया कथानक देना नहीं, बल्कि ब्रज और फ़ारसी से अलग बोलचाल की हिन्दी का उदाहरण पेश करना है—

*यह वह कहानी है कि जिसमें हिन्दी छुट*
*और किसी बोली का मेल है न पुट।*

इंशा जातीय भाषा के सहज विकास के श्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। उनका महज़्व तब पूरी तरह समझ में आता है जब हम देखते हैं कि इंशा के 50-60 साल बाद राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द अपनी स्वाभाविक भाषानीति छोड़कर अँग्रेज़ी शासन की साज़्प्रदायिक भाषानीति के घनघोर प्रचारक बन गये थे। इंशा ने कहानी के अलावा ग़ज़ल में भी अपनी रवाँ भाषा और कबीर वाली लय का इस्तेमाल करते हुए लिखा—

*कमर बाँधे हुए चलने को यों सब यार बैठे हैं*
*बहुत आगे गये बाक़ी जो है तैयार बैठे हैं...*
*नसीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो*
*जहाँ पूछो यही कहते हैं, हम बेकार बैठे हैं...*

बेकारी भूमंडलीकृत पूँजीवाद की ही निशानी नहीं है, 19वीं सदी के प्रगतिशील ब्रिटिश पूँजीवादी की निशानी भी है। निस्सन्देह, जहाँ देखो बेकारी का आलम अमीर घरों में न तब था, न अब है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और सैयद इंशा अल्ला ख़ाँ की भाषा नीति का अन्तर दोनों की वर्ग-स्थिति से सज़्बन्धित है।

## विकास की दिशाएँ

उर्दू से अलग, जिसे आधुनिक अर्थ में हिन्दी का साहित्य कहा जाता है, उसके लिए भी ग़ज़ल शुरू से ही एक परिचित माध्यम है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'रसा' हों या उनके साथी चौधरी बदरी नारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' और 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' का नारा देने वाले पं. प्रताप नारायण मिश्र, प्रसिद्ध सन्त स्वामी रामतीर्थ हों या रीतिवादी लाला भगवानदीन, राष्ट्रवादी मैथिलीशरण गुप्त हों या छायावादी जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रगतिवादी त्रिलोचन हों या प्रयोगवादी शमशेर— ग़ज़ल की रचना का अटूट सिलसिला दिखाई देता है। इनमें किसकी ग़ज़ल अच्छी है, किसकी ख़राब, ऐसा कोई मूल्य-निर्णय विवाद का कारण बन जाएगा इसलिए सिर्फ़ इतना कहना उचित है कि अंशत: निराला और कुछ दूर तक शमशेर को ग़ज़ल रचना में स्वीकृति मिल सकी है। इसके कारणों पर विचार करना एक स्वतन्त्र विषय है, इसलिए यहाँ सिर्फ़ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि आगे हिन्दी में लोकप्रिय होने वाली ग़ज़ल का स्वरूप ज़्या है!

सितारेहिन्द और इंशा अल्ला के बीच जो फ़र्क़ था, वह आज़ादी के बाद भी हिन्दुस्तान में बना रहा। इसलिए साहित्य में, ग़ज़ल में भी, उसकी झलक मिलती है। भाषा के बारे में सज़ाधारी वर्ग की नीति का समर्थन करने वाले अनेक बुद्धिजीवी हो सकते हैं, लेकिन साहित्य में ऐसा खुला समर्थन ज़रा मुश्किल होता है। इसलिए सज़ाधारी वर्ग के मूल्यों का प्रचार या समर्थन भी जन-साधारण के नाम पर किया जाता है। फिर भी, यह पहचानना सज़्भव है कि साहित्य वास्तव में जनता का पक्ष ले रहा है या व्यवस्था का। यह पहचान विषय-वस्तु से भी होती है और भाषा से भी। सज़ाधारी वर्ग की ओर झुकाव रखने वाला साहित्य जनता के प्रतिरोध को झुठलाता है, अलगाववाद को बढ़ावा देता है और अभिजात संस्कृति का प्रसार करता है। उसी के अनुरूप उसकी भाषा बोलचाल का ढाँचा छोड़कर चलती है।

हिन्दी ग़ज़ल की मुज़्यधारा बोलचाल की भाषा को अपनाकर चलती है और उसका सामाजिक-सांस्कृतिक झुकाव हमेशा व्यवस्था-विरोधी भले न होता हो, पर वह मूलत: सज़ाविरोधी है और जन-साधारण की ओर अभिमुख है। प्रसिद्ध समकालीन ग़ज़लकार मुनव्वर राना ने अपनी सामाजिक स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा है—

*जहाँ मैं हूँ, वहाँ आवाज़ देना जुर्म ठहरा है,*
*जहाँ वो है, वहाँ तक पाँव की आहट नहीं जाती।*

यह इश्क़िया मज़मून का शे'र नहीं है। कवि अपनी जगह पहचानता है। इससे उसमें हीन भावना नहीं आती। आत्मविश्वास आता है। कुछ-कुछ नागार्जुन वाली हेकड़ी से वह कहता है—

*मियाँ, मैं शेर हूँ, शेरों की गुर्राहट नहीं जाती,*
*मैं लहज़ा नर्म भी कर लूँ तो झुँझलाहट नहीं जाती।*

यहाँ कवि का तेवर, ग़ज़ल की वस्तु और उसकी भाषा में तारतज़्य है। यह बात हिन्दी में लिखी जाने वाली ज़्यादातर अच्छी ग़ज़ल पर लागू होती है। हर साहित्य-रूप की तरह ग़ज़ल में भी नक़्क़ालों की भरमार है और बहुत कुछ व्यर्थ का लिखा जा रहा है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी कुछ चर्चा आगे चलकर करेंगे। लेकिन इतना तय है कि विषय-वस्तु में सामाजिक विषमता से लेकर राजनीतिक सन्देश तक, किसानों और मज़दूरों के नज़रिए से लेकर जीवन-स्थितियों की विडज़्बना तक; पुरानी दरबारी ग़ज़ल से हिन्दी ग़ज़ल की दुनिया बहुत आगे आ गयी है और उसकी भाषा भी उसी के अनुरूप जीवन के कई रंग लिये हुए है।

इसकी शुरुआत अंशत: निराला से हुई थी— *'खुला भेद विजयी कहाये हुए जो, लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं',* और उसे व्यापक लोकप्रियता प्रदान करने का श्रेय दुष्यन्त कुमार को है। उन्होंने आठवें दशक के असन्तोष, सज़्भावना, पतन और उज़्मीद को बड़े सटीक ढंग से व्यज़्त किया था। कवि दुष्यन्त कुमार की प्रतिभा बहुत कुछ नयी कविता के भीतर दबी हुई थी, उसमें किसी ऐतिहासिक अनुभव का दबाव नहीं झलकता था; लेकिन ग़ज़लकार के रूप में उन्होंने, एक संक्षिप्त दौर को ही सही, बड़े सार्थक रूप में व्यज़्त किया है। लोगों में स्पष्ट राजनीतिक दिशा का ज्ञान भले न हो, लेकिन भीतर का असन्तोष प्रखर हो रहा था—

*गूँगे निकल पड़े हैं ज़ुबाँ की तलाश में*
*सरकार के ख़िलाफ़ ये साज़िश तो देखिए*

व्यवस्था-परिवर्तन का दृश्य नहीं था। बुनियाद नहीं हिल रही थी। इसे न जयप्रकाश नारायण हिला रहे थे, न दुष्यन्त कुमार। लेकिन लोगों में ग़ुस्सा था। वह सरकार (सज़ा) के ख़िलाफ़ मुखरित हो रहा था। यह परिवर्तन भी महज़्वपूर्ण था ज़्योंकि जहाँ 'सिर्फ़ गूँगे और बहरे लोग बसते' थे, वहाँ 'ज़ुबाँ की तलाश' होने लगी थी! यह दृश्य आज से मिलता-जुलता है। 'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' का आन्दोलन हो, या निजी बस में छात्रा से सामूहिक बलात्कार, लोगों का बहुत कुछ स्वत:स्फूर्त आन्दोलन लगातार सज़ा-केन्द्रों को निशाना बना रहा है। उसे राजनीतिक दिशा और आशय भले न मिला हो लेकिन असन्तोष अपनी ज़बान खोज रहा है। सज़ाधारी समुदाय ख़ुशामद की संस्कृति में डूबा हुआ है—

*एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है,*
*आज शायर, यह तमाशा देख कर हैरान है।*

1972-75 और 2012-15 में एक जैसा तथ्य देखकर पाठक हैरान नहीं है ज़्योंकि पतन भी एक 'संस्कृति' है जिसकी अपनी भी एक निरन्तरता है—

*फिसले जो इस जगह तो लुढ़कते चले गये*
*हमको पता नहीं था कि इतना ढलान है।*

मदमस्त सज़ा, ख़ुशामद और पतन का वातावरण, जनता का दिशाहीन असन्तोष और किसी सार्थक विकल्प का आभाव— कुल मिलाकर जनता अपनी दयनीयता में रहने को विवश है—

*उफ़ नहीं की उजड़ गये,*
*लोग सचमुच ग़रीब हैं।*

इन ग़रीबों को सांस्कृतिक-वैचारिक सहयोग देने का काम मध्यवर्ग करता है लेकिन पहले दौर में 'बी इंडियन बाई इंडियन' के बाज़ारवादी उन्मेष में मध्यवर्ग के भीतर उदासीनता का गहरा असर आने लगा था, जिसका विकसित रूप आज दिखायी देता है—

*इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात,*
*किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।*

चार दशक बाद लगभग वैसी स्थितियाँ फिर दिखायी देती हैं। कवि अपने समय के इतिहास को अगर गहराई से अनुभव करता है तो उसकी रचना अपनी प्रासंगिकता भविष्य में बनाये रहती है। दुष्यन्त के समय पूँजीवाद आर्थिक राष्ट्रवाद का सहारा लेते हुए विश्व-बाज़ार की खिड़कियाँ खोल रहा था; आज वह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आर्थिक भूमंडलीकरण को दो रणनीतियों की तरह साथ-साथ इस्तेमाल करता है। दुष्यन्त को 'झोले में संविधान' लिये हुए कोई आदमी दिख रहा था, लेकिन आज ऐसा आदमी भी नहीं दिखता जो 'मुकम्मल बयान' हो! उत्तर-सोवियत संसार में अन्धाधुन्ध बाज़ारीकरण की ओर बढ़ते विकासशील समाज की उलझनें जन-असन्तोष को और भी विकल्पनहीन, और भी निरीह बना देती हैं। लेख के शीर्षक के रूप में दिया गया 'सोचा था कुछ तो होगा', इसी विडम्बना और विवशता का संकेत है। डॉ. चन्द्र त्रिखा ने अपने एक शे'र में लिखा है—

*हमने चन्द लगाये नारे, सोचा था कुछ तो होगा*
*गुम्बद से टकराकर लौटे इन नारों के साये हैं...*

यह अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति है जो क्रान्ति और परितर्वन की उम्मीद रखकर प्रयत्न करने वाले बहुत-से लोगों का अनुभव होगा। जोश भरे नारे आज सिर्फ़ अपनी अनुगूँज रह गये हैं!

कविता की ख़ूबी यह होती है कि राजनीतिक हताशा के समय भी वह लोगों की उम्मीद और सपने को जिलाये रखती है। उसका एक बड़ा कारण यह है कि राजनीति का अन्तिम लक्ष्य सत्ता है, साहित्य का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य। राजनीति साहित्य का इस्तेमाल करती है, दमन भी करती है। साहित्य राजनीति से संवाद करता है, उसका मूल्यांकन भी करता है। एक ही ज़मीन पर रहते हुए दोनों का रुख़ दो तरफ़ होता है। इसलिए साहित्य पतन, अवसाद, निराशा से लड़ने और उबरने में मनुष्य की सहायता करता है। बहुत-से शायर अलग-अलग ढंग से, अलग-अलग सन्दर्भों में यह काम कर रहे हैं। पंजाबी के प्रसिद्ध कवि बल्ली सिंह चीमा ने लिखा है—

*डूबते वक़्त भी तिनके का सहारा है मुझे*
*यूँ लगे है कि किनारों ने पुकारा है मुझे...*
*मौत हर मोड़ मुसीबत में मेरे साथ रही,*
*फिर भी जीवन ही हर एक चीज़ से प्यारा है मुझे।...*

जीवन और मृत्यु का प्रश्न दार्शनिक सन्दर्भ में नहीं, संघर्ष की परिस्थितियों में आया है। वह नयी कविता की तरह निराशा और आत्महत्या की ओर ठेलने वाला नहीं है। राम मेश्राम ने व्यंग्य की सूक्ष्म अन्तर्धारा का उपयोग करते हुए राजनीतिक वातावरण और साहित्यिक संवेदना का अन्तर स्पष्ट किया है—

*चापलूसी से, ख़ुशामद से, क़दमबोसी से*
*मुल्क सकते में है एहसान-फ़रामोशी से*
*हर तरफ़ फ़ौज गुनाहों की है किस-किस से लड़ूँ*
*दोस्त कहते हैं खिसक आइए ख़ामोशी से...*
*आपने ख़ून के आँसू नहीं पीकर देखे*
*आप कहते हैं ग़ज़ल होती है मयनोशी से।*

राजनीति मयनोशी में व्यस्त है और कवि जनता के साथ ख़ून के आँसू पी रहा है। दोनों में यह अन्तर है। हिन्दी ग़ज़ल अपनी राजनीतिक और सामाजिक पक्षधरता में जितनी स्पष्ट है, उसकी अभिव्यक्ति और भाषा भी उतनी ही चलती हुई बोलचाल के नज़दीक है। इसलिए अपनी विषय-वस्तु में ही नहीं, कला में भी वह बहुत हद तक जनतान्त्रिक है। इस बात की पहचान सबसे बढ़कर छन्द और लय से होती है। (यह कहना ख़तरा मोल लेना है क्योंकि आज छन्द ही नहीं, लय से भी कविता का सम्बन्ध छूट चुका है। लेकिन यह बात आज़मा कर देखी जा सकती है कि लयहीन होकर कविता अपने समाज और संस्कृति से टूट गयी है। मुक्त छन्द के अच्छे कवियों में निरन्तर एक लय आज भी पायी जाती है।) कबीर की 'हमन है इश्क़ मस्ताना' की लय बाद की 'उर्दू' कविता में विकसित हुई, नासिर काज़मी ने हिन्दी के छन्द को ग़ज़ल का आधार बना दिया—

*मैं जब तेरे घर पहुँचा था, तू कहीं बाहर गया हुआ था*
*तेरे घर के दरवाज़े पर सूरज नंगे पाँव खड़ा था*
*दीवारों से आँच आती थी, मटकों में पानी जलता था*
*तेरे आँगन के पिछवाड़े सब्ज़ दरख़्तों का रमना था*
*एक तरफ़ कुछ कच्चे घर थे, एक तरफ़ नाला चलता था*
*इक भूले हुए देस का सपना आँखों में घुलता जाता था*
*आँगन की दीवार का साया, चादर बनकर फैल गया था...*

यहाँ जैसा वर्णन—दृश्य-चित्रण—है, वैसी ही भाषा और लय भी है। एक अच्छी कविता चमत्कार में नहीं रमती। वह वातावरण सजीव करती है। जातीय छन्द इस काम में सहयोग करता है। ख़ुसरो से वली तक इसी परम्परा की नींव पड़ी थी। सादगी इस परम्परा का सबसे महत्त्वपूर्ण सौन्दर्य-मूल्य है। दरबारी 'ग़ज़ल' का चमत्कार इस सादगी की गरिमा को नहीं छू सकता।

जैसे-जैसे ग़ज़ल का प्रसार बढ़ा है, वैसे-वैसे बोलचाल की हिन्दी का मानक रूप ही नहीं, बहुत-से स्थानीय रंग भी अभिव्यक्त होते हैं। बहुत-से उदाहरण गिनाने की ज़रूरत नहीं है। बात स्पष्ट करने के लिए सिर्फ़ एक काफ़ी है। बिहार में भोजपुर क्षेत्र का एक ज़िला है रोहतास। वहाँ की बोली-बानी का असर लिये हुए, और शासक सचेत रूप में, आसिफ़ रोहतासवी कृष्ण की कथा कहते हैं—

*नहीं रहा अब प्यार तुम्हारे गोकुल में*
*जिनगी जार-बेजार तुम्हारे गोकुल में।*
*कैसे जमुना जाय नहाने को राधा,*
*क़दम-क़दम बटमार तुम्हारे गोकुल में।*
*अब वसुदेव-नन्द में स्वारथ-लिप्सा है,*
*रिश्ते हैं व्यापार तुम्हारे गोकुल में।*

इन पंक्तियों को उर्दू उच्चारण के शुद्ध रूप में लिख दीजिए, 'जिनगी जार-बेजार' का वजन 'ज़िन्दगी ज़ार-बेज़ार' के कवित्व को डुबा देगा। भाषा-संस्कृति के स्थानीय रूपों के प्रति जागरूकता रिश्तों को व्यापार बनाने वाले भूमंडलीय पूँजीवाद के प्रतिकार का एक तरीक़ा है। इससे ज़ाहिर है कि हिन्दी की ग़ज़ल आज की बदली हुई दुनिया से नावाक़िफ़ और उदासीन नहीं है।

## सचाइयों के पहलू

यह दोहराना कोई मायने नहीं रखता कि ग़ज़ल में आज के जीवन की सचाइयाँ अनेक स्तरों पर व्यक्त हुई हैं। महत्त्वपूर्ण बात है जीवन को देखने का नज़रिया जो बाज़ारवादी व्यवस्था की असंगतियाँ देखता है और उससे प्रताड़ित होने वालों से हमदर्दी रखता है। कई बार ऐसा भी लगता है कि वर्ग-विरोधों की तस्वीर और रचनाकार की पक्षधरता बहुत-से कवियों और कहानीकारों से ज़्यादा साफ़-साफ़ ग़ज़लकारों के यहाँ प्रकट होती है। मोईनुद्दीन 'शाहीन' सवाल उठाते हैं—

*कोठी बना ली आपने किरदार बेचकर*
*कैसे मैं घर बनाऊँगा अख़बार बेचकर*

बाज़ार में दोनों हैं लेकिन उनमें समकक्षता नहीं है। यह मिर्ज़ा ग़ालिब के समय का बाज़ार नहीं रह गया है। उसमें दिलो-जाँ से आगे बढ़कर किरदार बिकने लगे हैं। कवि 'हम' और 'आप' की भाषा में बात करता है। उसका 'हम' उस 'मज़दूर बाप' से जुड़ा है जो 'लाया है खिलौना भी औज़ार बेचकर।' उसकी लाचारी यह है कि किरदार बेच कर कोठी बनाने वाले समय में उसने 'तालीम दी है बच्चों को घर-बार बेचकर।' बाज़ार में उसके लिए इतनी ही जगह है। वह चाहकर भी अपने को नहीं बेच सकता। विकास शर्मा 'राज' ने टिप्पणी की है—

*अफ़सोस, अपनी जान का सौदा न कर सके*
*उस वक़्त क़ीमतों में बला का उछाल था।*

इसलिए बाज़ारवादी व्यवस्था एक हिस्से के लिए सम्भावनाएँ पैदा करती है, दूसरे हिस्से के लिए विवशताएँ। श्रम की क़ीमत गिरती है, सौन्दर्य की क़ीमत बढ़ती है। श्रम और सौन्दर्य का आपसी सम्बन्ध पूरी तरह टूट जाता है। कवि यह रिश्ता फिर जोड़ता है। केदारनाथ अग्रवाल की तरह पहली अप्रैल को (1936) जनमे मुज़फ़्फ़र हनफ़ी ने श्रम की बेबसी के साथ-साथ सृजन और श्रम का रिश्ता अच्छी तरह पहचाना है—

*फूल खिले थे, हाथ लगा था पत्थर को जब पहली बार*
*आख़िर पत्थर घिसते-घिसते हाथ हो गया पत्थर का...*
*अन्दर से अच्छे होते हैं अक्सर आड़े-तिरछे लोग*
*जैसे अफ़साना मंटो का, जैसे शेर मुज़फ़्फ़र का...*

यह आत्मविश्वास श्रम की मूल्यवत्ता से जुड़ा है, अहं की सत्ता से नहीं।

समाज में बढ़ती हुई खाई जीवन के हर पहलू को अपनी लपेट में लेती जाती है। ग़रीब अपनी क़ीमत नहीं लगा सकता लेकिन उसे अनुकूलित करने वाले साधन— शिक्षा और धर्म बाज़ार के हाथ में हैं। डॉ. शेरजंग गर्ग ने सही लिखा है—

*बिकाऊ बिकाऊ, नहीं कुछ टिकाऊ*
*मदरसे और मन्दिर भी बाज़ार निकले।*

'जो बिकता है वो टिकता है' का प्रतिवाद कविता है! डॉ. गर्ग को सफलता के 'बाज़ार' और विवशता के 'दर्द' का अन्तर पता है—

जेबों में नहीं, सिर्फ़ गरेबान में झाँको
यह दर्द का दरबार है, बाज़ार नहीं है

बाज़ार का प्रतिवाद कविता के स्वभाव में ही निहित है।

किसी समाज को, उसकी प्रगतिशीलता और पतनशीलता को, पहचानने के लिए औरतों, बुज़ुर्गों और बच्चों से उसका सलूक देखना चाहिए। यहाँ हम सिर्फ़ बच्चों का उदाहरण लें जो ख़ुद अबोध होते हैं और हम उन्हें भविष्य के नागरिक के रूप में ढालते हैं। उससे बाज़ारवादी समाज की असली चमक-दमक पता चल जाएगी। एक तरफ़ पूरी क्रूरता के साथ हम उनकी मासूमियत छीनते हैं, जैसा ज़हीर कुरैशी ने लक्ष्य किया है—

*वो भीख माँगता ही नहीं था इसीलिए*
*उस फूल जैसे बच्चे को अन्धा किया गया।...*

दूसरी तरफ़ उतने ही सुसंस्कृत रूप में संचार माध्यमों के द्वारा हम उसकी मासूमियत छीनते हैं, जिसका इशारा अहमद वसी ने किया है—

*समझने लगता है दुनिया को बच्चा, पैदा होते ही*
*अब इस दुनिया में बच्चा बनके वो पैदा नहीं होता।*

इस प्रकार के अनेक प्रसंगों द्वारा बचपन के साथ समाज के अतिचार की पूरी तस्वीर उभरती है।

बाज़ारवाद का विकल्प है श्रम की संस्कृति। ग़ज़ल में श्रम के प्रति जागरूक प्रतिबद्धता अपेक्षाकृत अधिक मिलती है। शनावर किरतपुरी श्रमिक के आत्म-विश्वास का ज़िक्र करते हुए कहते हैं—

*चमकती धूप को दुश्मन नहीं बनाता मैं*
*चराग़ शाम से पहले नहीं जलाता मैं...*
*ये रोज़ो-शब के मसारिफ़ तो ख़ैर अपनी जगह*
*ज़रूरतों से ज़ियादा नहीं कमाता मैं...*

बाज़ार न ज़रूरतों को सीमित रखने का विचार देता है, न उन्हें पूरा करने के साधनों का। अधिक उत्पादन, अधिक उपयोग उसके जीवन का आधार है। इससे विषमता बढ़ती है, संकट बढ़ता है। बढ़ती विषमता से गिरती हुई माँग का और गिरती माँग से बढ़ती हुई मन्दी का सम्बन्ध आज की अर्थव्यवस्था में अटल है। यह पूरी तस्वीर ग़ज़ल में नहीं मिलती। ग़ज़लकारों की जागरूकता में कमी के कारण या ग़ज़ल की विधागत सीमा के कारण, यह बहस का विषय है। महत्त्वपूर्ण यह है कि ग़ज़ल की संवेदना का दायरा बढ़ते हुए मज़दूरों तक और उससे भी आगे किसानों तक पहुँचा है।

जिस तरह बच्चों, बुज़ुर्गों, महिलाओं के प्रति व्यवहार किसी समाज की मानवीयता की कसौटी है, उसी तरह किसान की स्थिति किसी अर्थव्यवस्था की कसौटी है। पश्चिमी भारत की हरित क्रान्ति का नतीजा देखने के बाद 1974 में उत्तर भारत के किसान की स्थिति के बारे में क़ैफ़ी आज़मी ने लिखा था—

*वो तेग मिल गयी जिससे हुआ है क़त्ल मेरा*
*किसी के हाथ का उस पर निशाँ नहीं मिलता*
*वो मेरा गाँव है वो मेरे गाँव के चूल्हे*
*कि जिनमें शोले तो शोले धुआँ नहीं मिलता।*

पूँजीवाद न सिर्फ़ उद्योग और कृषि में विषमता बढ़ाता है बल्कि कृषि और कृषि में भी फ़ासला पैदा करता है। भूमंडलीय पूँजीवाद ने यह फासला और बढ़ाया है। किसान की हालत और ख़राब हुई है। लगभग 50 किसान रोज़ आत्महत्या करते हैं। भविष्य के अनिश्चय को देखते

हुए भी शनावर किरतपुरी ने किसान के संघर्ष को विश्वास का आधार बनाकर लिखा है—

*अदा करेगा ये दिल जो लगन बाक़ी है*
*तबाह फ़स्ल हुई है किसान बाक़ी है*
*वही हुजूम है चौपाल में बुज़ुर्गों का*
*अलाव बुझने लगी दास्तान बाक़ी है*
*कहाँ है आख़िरी सफ़हा किताब का जाने*
*उसकी बरक़ में कहानी की जान बाक़ी है*

वह आख़िरी पन्ना भले आज न दिखे, लेकिन कहानी की जान उसी में है— यह उज़्मीद किसान के जीवन को नज़दीक से जानने का नतीज़ा है। यह बाज़ारवाद के प्रतिकार का नज़रिया है। यह नज़रिया बहुत से शायरों में है। उनकी विचाराधाराएँ अलग-अलग हैं, लेकिन संवेदना एक बिन्दु पर मिलती है। अहमद कमाल परवाज़ी व्यंग्य की अन्तर्धारा लिये हुए अपनी बात कहते हैं और देश की पहचान सज़्पन्नता और चकाचौंध से दूर पड़े किसान के ज़रिए करते हैं—

*ज़ुबा रसीद-सी, चेरा लगान जैसा है*
*वो सर से पाँव तक हिन्दोस्तान जैसा है*
*ख़ुदा के फज़्ल से सोना उगा रही है ज़मीन*
*मगर किसान तो अब भी किसान जैसा है।*

अन्दाज़ सरल है, बात नहीं। लाखों टन सड़ते हुए अनाज से किसानों की बढ़ती हुई आत्महत्या का सज़्बन्ध तलाशिये, ग़ज़ल का मर्म समझ में आ जाएगा। किसान आज भी किसान जैसा है— इस किसान को प्रेमचन्द के साहित्य ने दिखाया था, आज भी उसकी हालत नहीं बदली है। औपनिवेशिक भारत की कृषि समस्या और उदारीकृत भारत की कृषि समस्या में समानता (निरन्तरता) है। ग़ज़ल हमें न विचारधारा देती है, न व्याज़्या, वह सवाल और नज़रिया देती है। हिन्दी ग़ज़ल इस दृष्टि से सफल कही जाएगी।

**व्यंग्य, विद्रूप, विडज़्बना**

हिन्दी ही नहीं, रूसी सहित पूर्वी भू-भाग के प्राय: सभी साहित्यों में, शहरीकरण के साथ बढ़ते अजनबीपन, स्वार्थपरता और प्रतिस्पर्धा का चित्रण मिलता है। पिछले दो दशक के बाज़ारवादी विकास ने इस समस्या को बढ़ाया है—

*हालाँकि याद आता है अब भी बहुत हमें*
*वो शहर जिसमें कोई हमारा कभी न था*
*हम जिसके साथ-साथ थे उसके कभी न थे*
*जो साथ था हमारे, हमारा कभी न था...*

— आलम ख़ुर्शीद

इतना बेगानापन मनुष्य की संस्कृति में नहीं होता। बेगानेपन से क्रूरता जन्म लेती है। शहर और जंगल के माध्यम से इस क्रूरता का बेहद विडज़्बनापूर्ण चित्रण कैफ़ी आज़मी ने किया था—

*शोर यूँही न परिन्दों ने मचाया होगा*
*कोई जंगल की तरफ़ शहर से आया होगा...*

काफ़ी बाद में, बाबरी मस्जिद के विध्वंस और ख़ून-ख़राबे की पृष्ठभूमि में शहर और जंगल के रिश्ते को उन्होंने फिर याद किया—

*राम बनवास से जब लौट के घर को आये*
*याद जंगल बहुत आया जो शहर को आये...*

बेग़म अज़्तर की गायी मशहूर ग़ज़ल 'हमने समझा था कि बरसात में बरसेगी शराब', जिस सुदर्शन फ़ाख़िर की है, उन्होंने जंगल की बजाय रेगिस्तान से शहर की तुलना करते हुए बड़ी मार्मिक व्यंजना की है—

*पत्थर के ख़ुदा, पत्थर के सनम, पत्थर के ही इंसाँ पाये हैं*
*तुम शहरे मुहज़्बत कहते हो, हम जान बचाकर आये हैं*
*बुतख़ाना समझते हो जिसको पूछो न वहाँ ज़्या हालत है*
*हम लोग वहीं हैं लौटे हैं बस शुक्र करो लौट आये हैं*
*हम सोच रहे हैं मुद्दत से अब उम्र गुज़ारें भी तो कहाँ*
*सहरा में ख़ुशी के फूल नहीं, शहरों में ग़मों के साये हैं...*

ग़ज़ल में विडज़्बना का चित्रण दो रूपों में मिलता है। पहला— आदर्श के सन्दर्भ में, यानी जैसा होना चाहिए और जैसा है, इस फ़र्क़ की रोशनी में वर्तमान की समीक्षा; दूसरा— यथार्थ के सन्दर्भ में, यानी जैसा है और जैसा दिखता है, इस फ़र्क़ को सामने रखकर वास्तविकता को समझने की कोशिश। पहला रूप साहित्य में बराबर मिलता है। दूसरा रूप विज्ञापनी संस्कृति की विशेषता है। खुशवीर सिंह 'शाद' ने बहुत-से अनुभवों को समेटकर लिखा है—

*समन्दर तेरी ये ख़ामोशियाँ कुछ और कहती हैं*
*मगर साहिल पे टूटी कश्तियाँ कुछ और कहती हैं*
*हमारे शहर की आँखों ने मंज़र और देखा था*
*मगर अख़बार की ये सुर्ख़ियाँ कुछ और कहती हैं...*

होने और दिखने के इस फ़र्क़ से कला भी अछूती नहीं रहती। रूपवाद इसी फ़र्क़ का परिणाम है। शुजा ख़ावर ने ज़्वाब और हक़ीक़त की तरह शज़्द और कथ्य के बीच अन्तराल पैदा करने वाली स्थितियों को लेकर कहा है—

*ज़्वाब इधर है, और हक़ीक़त है उधर*
*बीच में हम फँस गये हैं ज़्या करें...*
*हर कोई बैठा है लफ़्ज़ों पर सवार*
*हम ही ज़्यों मफ़्हूम का पीछा करें...*

लफ़्ज़ (कला) का पीछा करने की जगह मफ़्हूम (कथ्य) का पीछा करना मुश्किल का सामना करना है। अमीर कज़लबाश ने इस मुश्किल को पहचाना है— 'शे'र सुना और भूखा मर, इस ख़िदमत को जारी रख।' इसलिए कला की दो शैलियाँ समाज के दो हिस्सों से जुड़ी हैं। पूँजीवादी समाज में सच्ची कला की नियति बेहद विडज़्बनापूर्ण होती है। राजेन्द्र तिवारी ने शज़्द और अर्थ के बीच इस फ़ासले को व्यापारी सज़्यता से जोड़ा है—

*सब अपने लिए करते हैं, लफ़्ज़ों की तिजारत*
*लफ़्ज़ों की मआनी के लिए सोचता है कौन!*

मआनी यानी अर्थ। अर्थ मायने भी है, अभिव्यक्ति भी। शज़्द और अर्थ के बीच व्यापार की भूमिका को रखकर शायर ने संकेत में बड़ी बात कही है।

गाँव-शहर में, अमीर-ग़रीब में, शज़्द-अर्थ में फ़ासला बढ़ाने वाला

समाज एक तरफ़ विकास और पर्यावरण में अन्तर्विरोध उत्पन्न करके प्रकृति का नाश करता है—*'पज़्की सड़क में मेरा मकाँ आ गया मगर, वो पेड़ जिससे फूल बरसते थे कट गया।'* (कैसर-उल ज़ाफरी), दूसरी तरफ सज़्भावना और विवशता का फ़र्क़ बढ़ाकर आदमी को लाचार बनाता है—

*ज़मीं पे चल न सका आसमान से भी गया*
*कि पर कटा के परिन्दा उड़ान से भी गया।*
*किसी के हाथ से निकला हुआ वो तीर हूँ मैं*
*हदफ़ को छू न सका और कमान से भी गया।*

शाहिद कबीर की यह अभिव्यज़्ति ग़ज़ल की नज़ाकत का उपयोग करते हुए आज की जीवन-स्थितियों की विडज़्बना उजागर करते हैं। उनसे थोड़ा अलग मिज़ाज के, लेकिन अपनी ही तरह की ठसक वाले ग़ज़लकार हैं विज्ञान व्रत। वे छोटे छन्दों के माहिर हैं। लेकिन बात उतनी छोटी नहीं होती। वे इस विडज़्बना को देखते हैं कि 'आपसे मिलता रहा हूँ' लेकिन 'ख़ुद से मिलना बाक़ी है'! यह आत्महीनता बहुत-सी नृशंसता और स्वार्थपरता का कारण है। इसीलिए वे दोस्ताना सलाह देते हैं—

*या तो हमसे यारी रख, या फिर दुनियादारी रख...*
*जीने की तैयारी रख, मौत से लड़ना जारी रख...*

उन्हें अपनी ख़ासियत का अन्दाज़ा है। अच्छे शायरों की तरह आत्मविश्वास के साथ, किन्तु अहंकार के बग़ैर, वे कहते हैं—

*वो सितमगर है तो है, अब मेरा सर है तो है*
*आप भी हैं मैं भी हूँ, अब जो बेहतर है तो है...*
*एक सच है मौत भी, वो सिकन्दर है तो है...*

**सपना और उज़्मीद**

मौत को एक सच मानकर जीने की तैयारी करना यथास्थिति को पार करके भविष्य की उज़्मीद से जुड़ा है। कविता, ग़ज़ल भी, केवल व्यंग्य, विद्रूप, लाचारी के चित्र नहीं आँकती; वह स्वप्न, उज़्मीद और सुन्दरता का दृश्य भी अंकित करती है। इसीलिए कोई सज़ा न होने पर भी वह आततायी सज़ा को बहुत खटकती है। नक़ली, बनावटी, छद्म ग़ज़लकारों की संज़्या चाहे जितनी बड़ी हो, यह बात उनके बारे में नहीं कही जा रही है। वे तो हास्यास्पद उपमानों, लंगड़ाती तुकबन्दी, राष्ट्रवादी लज़्फ़ाज़ी और आत्मप्रशंसा से आगे नहीं बढ़ पाते। अच्छी ग़ज़ल का रास्ता इन कँटीली बाड़ों को छोड़ कर चलता है। दुष्यन्त की प्रसिद्धि राजनीतिक ग़ज़लों से हुई; पर कोमल भावों के बिना राजनीतिक विचारों में शज़्ति नहीं आ सकती थी—

*मैं तुज़्हें छूकर ज़रा-सा छेड़ देता हूँ,*
*और गीली पाँखुरी से ओस फरती है।*

इस पूरे दौर की ग़ज़ल में प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य के स्वतन्त्र चित्र कम हैं, लेकिन मर्मस्पर्शी हैं।

*बरसात पहली-पहली पड़ी है जो गाँवों में*
*ख़ुशबू तेरे बदन की उड़ी है हवाओं में।*

—पूरन कुमार 'होश'

*भीगने के बाद भी जलता रहा कोई बदन*
*जाने कैसा था वो सावन की फुहारों का तिलिस्म।*

—राजेन्द्र तिवारी

*ठंडी धूप की छतरी ताने पेड़ के पीछे पेड़ खड़ा था*
*धूप के लाल हरे होठों ने तेरे बालों को चूमा था*
*तेरे अज़्स की हैरानी से बहता दरिया ठहर गया था।*

—नासिर कासमी

सुन्दरता का स्वप्न जीवन के विद्रूप से टकराता है, उसे अस्वीकार करता है और ऐसे भविष्य में विश्वास जगाता है, जिसमें जावेद अज़्तर के अनुसार—

*कभी तो इंसान ज़िन्दगी की करेगा इज़्ज़त*
*ये एक उज़्मीद आज भी दिल में पल रही है।*

मुसीबतें असहाय और अकेला करती हैं। जागरूकता और उज़्मीद साझेदारी पैदा करती हैं। अहमद नवी ने महसूस किया था, *'ऐसे हालात हैं कि सबका हाल, मेरे हालात जैसा लगता है।'* इस साझेदारी को एक लक्ष्य की ओर मोड़ते हुए शहरयार ने कहा—

*अब रात की दीवार को ढाना है ज़रूरी*
*ये काम मगर मुझसे अकेले नहीं होगा...*

मेहनत करना, परिवार चलाना, मुसीबतों में भी अटूट बने रहना अकेले भी हो सकता है, पर मेहनत को सार्थक करना, परिवार को मानवीय बनाना, मुसीबतों को ठेलकर आगे बढ़ना साझेदारी से ही सज़्भव है। ग़ज़ल में दोनों पहलू आये हैं। इसलिए उज़्मीदों के बिखरने का चित्र है तो निराशा को भेदकर नयी शुरुआत का संकल्प भी है। बीते हुए को भूलकर फिर सक्रिय होने का आह्वान करते हुए निदा फ़ाज़ली ने कहा है—

*उठके कपड़े बदल, घर से बाहर निकल, जो हुआ सो हुआ*
*रात के बाद दिन, आज के बाद कल, जो हुआ सो हुआ...*
*रख के काँधे पे हल, खेत की ओर चल, जो हुआ सो हुआ...*

हारकर बैठ रहना न मनुष्य का स्वभाव है, न इतिहास का नियम। परिवर्तन सृष्टि का क्रम है। मनुष्य के प्रयत्न के बिना समय 'काल' में बदलता है, अचेत गति से चलता है; मनुष्य के प्रयत्न से वह इतिहास में बदलता है, सचेत गति से चलता है। जिस 'ज़्वाब' के बदले कोई 'समझौता' नहीं हो सकता, उसे साकार करने के लिए शहरयार उद्‌बोधन करते हैं—

*कहाँ तक वज़्त के दरिया को हम ठहरा हुआ देखें*
*ये हसरत है कि इन आँखों से कुछ होता हुआ देखें।*

और यही हसरत मनुष्य, उसकी रचना और इतिहास को एक धारा में लाती है। ग़ज़ल इस जीवन प्रक्रिया की साक्षी है। यह हिन्दी ग़ज़ल की अपनी ख़ूबी है। उसमें उर्दू ग़ज़ल सिर्फ़ वहीं अलग है जहाँ अरबी-फ़ारसी का अतिरिज़्त बोझ है या वैचारिक-सांस्कृतिक अलगाववाद है। ऐसी प्रवृज़ियाँ 'सांस्कृतिक' राष्ट्रवाद का दूसरा पहलू हैं और हमारे साहित्य की प्राणधारा उसे किनारे करते हुए बढ़ रही है।

**बी-30, श्रीराम अपार्टमेंट्स, 32/4, द्वारका**
**नयी दिल्ली-110078**
**मो.: 09717170693**
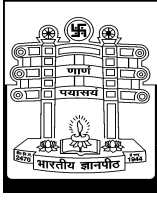
# भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003
फोन नं. 011-2462 6467, 2465 4196, फैक्स नं. 91-11-24654197
E-mail : jnanpith@satyam.net.in, sales@jnanpith.net, website : www.jnanpith.net

## ज्ञानपीठ पाठक परिवार के लिए आकर्षक योजनाएँ

ज्ञानपीठ पाठक परिवार की सदस्यता ग्रहण करें व घर बैठे सुन्दर सुरुचिपूर्ण व सस्ती पुस्तकें व ढेर सारे उपहार प्राप्त करें।

### ज्ञानपीठ पाठक परिवार का उद्देश्य

इस योजना का उद्देश्य है पुस्तक प्रेमियों को भारतीय ज्ञानपीठ की विविध विषयों की उत्तम पुस्तकें अच्छी छपाई, अच्छे कागज के साथ कम मूल्य पर उपलब्ध कराना ताकि वे घर बैठे ही श्रेष्ठ साहित्य प्राप्त कर सकें। विदित हो कि पुस्तकें नियमित रूप से अथवा निरन्तर खरीदना आवश्यक नहीं है।

### सदस्यता ग्रहण करने के लिए क्या करें?

1. सदस्यता राशि 500/- रुपये है। यह सदस्यता राशि हमारे पास जमा रहेगी, जो वापस नहीं होगी।
2. सदस्यता राशि मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा 'भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली' के नाम भिजवा सकते हैं।

### ज्ञानपीठ पाठक परिवार के सदस्यों को मिलने वाली सुविधाएँ:-

1. ज्ञानपीठ पाठक परिवार की सदस्यता ग्रहण करने वाले प्रत्येक सदस्य को भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित प्रत्येक सजिल्द पुस्तक पर 25% तथा पेपरबैक पर 15% की छूट मिलेगी।
2. यदि आप अपना आदेश छूट के बाद 500/- रु. या उससे अधिक का देते हैं तो डाक व्यय हम वहन करेंगे। उससे कम राशि के आदेश पर डाक व्यय की आधी राशि आपसे ली जाएगी।
3. हमारे द्वारा प्रकाशित 'ज्ञानपीठ समाचार' जिसका वार्षिक शुल्क 50/- रु. है, आपको प्रत्येक माह निःशुल्क प्राप्त होगा।
4. ज्ञानपीठ पाठक परिवार की सदस्यता राशि प्राप्त होते ही आपको एक प्रमाण पत्र भेजा जाएगा जिसमें आपका सदस्यता नम्बर अंकित होगा जो आपको अपने किसी भी पत्र व्यवहार अथवा आदेश में लिखना आवश्यक होगा। आप अपना आदेश ई-मेल अथवा एस.एम.एस. द्वारा भी भेज सकते हैं।
5. नये सदस्यों की नयी सदस्यता राशि बढ़ाकर 500/- रु. कर दी गयी है। नये सदस्यों को लगभग 200/- रु. की पुस्तकें निःशुल्क दी जाएँगी। सचित्र सूची के साथ वेबसाईट यथाशीघ्र अपडेट कर दी जाएगी।
6. ज्ञानपीठ पाठक परिवार के पुराने सदस्य भी अपनी पुरानी नियमावली के साथ सुविधा यथावत प्राप्त करते रहेंगे।
7. जो भी पुराने या नये सदस्य इस वर्ष एकमुश्त राशि 1000/- रु. नेट की पुस्तकें लेंगे उन्हें लगभग 100/- रु. मूल्य की पुस्तकें उपहार में दी जाएँगी।
8. पुराने सदस्यों को वर्ष में एक बार आदेश भिजवाना आवश्यक है। यदि आदेश प्राप्त नहीं होता तो उनको 'ज्ञानपीठ समाचार' नहीं भेजा जाएगा, परन्तु पाठक परिवार के माध्यम से मिलने वाली तमाम सुविधाएँ उसे मिलती रहेंगी।
9. यदि आपका पता बदल जाता है तो आप एक पोस्ट कार्ड पर अथवा मोबाइल नं. 09560400227 पर एस.एम.एस. द्वारा अपने नये पते की सूचना सदस्यता नम्बर के साथ सूचित कर दें। यदि आप ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित ज्ञानपीठ समाचार के पाठक हैं तो आपसे निवेदन है कि आप bookclub@jnanpith.net या मोबाइल नं. 09560400227 पर आदेश दे सकते हैं। आदेश मिलने के 24 से 72 घंटे के भीतर आपको पुस्तकें डिस्पैच कर दी जाएँगी। हमारे ई-मेल या मोबाइल नं. पर अपना मोबाइल नं. या ई-मेल ऐड्रस भेजें, जिससे ज्ञानपीठ आपको अधिक जानकारी और सुविधा दे सके।
10. ज्ञानपीठ पाठक परिवार की सदस्यता आप 500/- रु. नकद जमाकर हमारे द्वारा लगने वाले किसी भी पुस्तक मेले में भी रसीद लेकर ग्रहण कर सकते हैं, आपको हमारी छूट की सुविधा तुरन्त प्रदान कर दी जाएगी।

### सदस्यता के लिए आवेदन-पत्र

1. नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .................................................................. 2. जन्म तिथि ..................................

3.व्यवसाय.................4.पता..........................................................................................................

..............................................................पिनकोड........................ फोन नं./मो. ............................ फैक्स .........................

ई-मेल ....................................................................5. विशेष रुचि : कृपया बॉक्स में निशान (√) लगाएँ —

उपन्यास ☐ कहानी ☐ कविता ☐ शायरी ☐ नाटक ☐ हास्य-व्यंग्य ☐ निबन्ध ☐ आलोचना ☐ ज्योतिष ☐ संस्मरण ☐ दर्शन ☐ जैन साहित्य ☐

## बानी मनचन्दा

तुझे ज़रा दुख और सिसकने वाला मैं
तेरी उदासी देख न सकने वाला मैं

तेरे बदन में चिंगारी-सी ज़्या शय[1] है
अज़्स ज़रा-सा और चमकने वाला मैं

तेरे लहू में बेदारी[2]-सी ज़्या शय है
लज़्स[3] ज़रा सा और महकने वाला मैं

तेरी अदा में पुरकारी-सी ज़्या शय है
बात ज़रा-सी और सिसकने वाला मैं

रंगों का इक बाग़, हँसी चेहरा तेरा
ज़्या-ज़्या देखूँ आँख झपकने वाला मैं

सफ़र में तन्हा क़दम उठाना मुश्किल हो
साथ तुज़्हारे कभी न थकने वाला मैं

संग[4] नहीं हूँ बात न मानूँ मौसम की
हवा ज़रा-सी और लचकने वाला मैं

[1]वस्तु, चीज़ [2] जागृति [3] स्पर्श [4]पत्थर

2

मुझसे इक-इक क़दम पर बिछड़ता हुआ कौन था
साथ मेरे मुझे ज़्या ख़बर दूसरा कौन था

ता-ब-मंज़िल[1] ये बिखरी हुई गर्दे-पा[2] किसकी है
ऐ बराबर क़दम दोस्तो! वो जुदा कौन था

जाने किस ख़ौफ़ ने बज़्श दी हमको हमसायगी[3]
वरना इक दूसरे से यहाँ आश्ना[4] कौन था

पहले किस की नज़र में ख़ज़ाने थे उस पार के
मिस्ल[5] मेरे हदों से उधर देखता कौन था

कौन था मेरे पर तोलने पे नज़र जिसकी थी
जिसने सर पर मिरे आसमाँ रख दिया कौन था

किसकी भीगी सदा[6] झाँकती थी मिरी ख़ाक से
मैं था अपना खंडर इसमें मेरे सिवा कौन था

कौन था क़ाइले-क़हर[7] होना था जिसको अभी
टूटकर जिसपे बरसी भयानक घटा कौन था

[1]मंज़िल तक [2]चरण धूलि [3]पड़ोस [4]परिचित [5]मेरी तरह [6]आवाज़ [7]प्रकोप से निरुज़र

**3**

अजीब तजरुबा था भीड़ से गुज़रने का
उसे बहाना मिला तुझसे बात करने का

मुझे ख़बर है कि रस्ता मज़ार चाहता है
मैं ख़स्तापा[1] सही लेकिन नहीं ठहरने का

थमा के एक बिखरता गुलाब मेरे हाथ
तमाशा देख रहा है वो मेरे डरने का

निगाह हमसफ़रों पर रखो सरे-मंज़िल
कि मरहला[2] है ये इक दूसरे से डरने का

कोई भी बात न मुझको उदास करने की
कोई सुलूक़ न मुझपे गराँ[3] गुज़रने का

कोई सदा[4] न समाअत[5] पे नक़्श होने का
न कोई अक़्स[6] मिरी आँख में उतरने का

कराँ-कराँ[7] न सज़ा कोई सैर करने की
सफ़र-सफ़र न कोई हादसा गुज़रने का

बस एक चीख गिरी थी पहाड़ से यकलख़्त[8]
अजब नज़ारा था फिर धुन्ध के बिखरने का

ये आसमाँ में सियाही बिखेर दी किसने
हमें था शौक़ बहुत इसमें रंग भरने का

फिर एक मौज[9] उसे खींच ले गयी तहे-आब[10]
तमाशा ख़त्म हुआ डूबने-उबरने का

[1]थका [2]अवसर [3]भारी [4]आवाज़ [5]श्रवण शक्ति [6]बिम्ब [7] कोने-कोने [8]अचानक [9]लहर [10]पानी के नीचे

## फ़ज़्ल ताबिश

(1933–1995)

सूरज की आग अपने सरों पर लिये फिरो
महताब[1] उसकी सेह्‌न की नाली में फेंक दो

लोगों का जिस्म रौंद के दिन तो बिता दिया
अब रात भर ख़ुद अपना लहू चाटते रहो

बेशक़ मैं मौत जीता रहा हूँ तमाम उम्र
फिर भी मेरे क़दमों के निशानों पे मत चलो

बाहर की धुन्ध फाँकते रहना है उम्र भर
इक बार पहले जिस्म के अन्दर तो झाँक लो

काँधों पे है तो बोझ भी है बेख़बर भी है
बेहतर है उसको जलती सड़क पर उतार दो

[1]चाँद

## शुजाअ्-ख़ावर

(1948–2012)

नादीदनी[1] हर बज़्म का मंज़र है मगर देख
तन्हाई से बचना है तो ये काम भी कर देख

होता नहीं कुछ अपनी दुआओं का असर देख
जा आरज़ू-ए-वस्ल[2] कोई दूसरा घर देख

अब ख़ामुशी अच्छी नहीं ऐ लम्ह:-ए-इज़्हार[3]
ले आ गया जज़्बात की दीवार में दर[4] देख

देखा तो बहुत कुछ है शुजाअ, शह्र में तूने
इस शह्र में ज़िन्दा है हमारा भी हुनर देख

[1] न देखने योग्य [2]मिलन की इच्छा रखने वाले [3] अभिव्यक्ति का क्षण [4] दरवाज़ा

## अख़्तर नज़्मी

कभी एहसान का बदला नहीं माँगा करते
पेड़ साये का किराया नहीं माँगा करते

हम तो अपने लिए अपने ही जलाते हैं चिराग़
चाँद-सूरज से उजाला नहीं माँगा करते

हम कहाँ सोते हैं दिन भर की थकन सोती है
रात से ख़्वाब सुहाना नहीं माँगा करते

रेगज़ारों[1] के सफ़र पर जो निकल पड़ते हैं
अपनी राहों से वो दरिया नहीं माँगा करते

हम तो बिखराते हुए चलते हैं साये अपने
किसी दीवार से साया नहीं माँगा करते

नाम मत लिखिए सहारों के तलबगारों में
हम किसी से भी सहारा नहीं माँगा करते

माँगने से तो यहाँ कुछ नहीं मिलता 'नज़्मी'
हम जो चलते हैं तो रस्ता नहीं माँगा करते

[1]मरुस्थल

**2**

ख़्याल उसी की तरफ़ बार-बार जाता है
मिरे सफ़र की थकन कौन उतार जाता है

ये उसका, अपना तरीक़ा है दान करने का
वो जिससे शर्त लगाता है, हार जाता है

ये खेल मेरी समझ में कभी नहीं आया
मैं जीत जाता हूँ, बाज़ी वो मार जाता है

किसी के पास नहीं वक़्त उससे मिलने का
वो सबके पास मगर बार-बार जाता है

वो अपनी नींद दवाओं से क़र्ज़ लेता है
ये क़र्ज़ ख़्वाब में कोई उतार जाता है

ये लेन देन यहीं तक है, बस यहीं तक है
किसी के साथ कहाँ कारोबार जाता है

मैं सबके वास्ते करता हूँ कुछ न कुछ 'नज़्मी'
जहाँ जहाँ भी मिरा इख़्तियार जाता है

## विमल कृष्ण 'अश्क़'

बिफराई-बिफराई मौजें कोसों दूर किनारा-सा
ऊपर बादल नीचे जल-थल आँख तले अँधियारा-सा

पतझड़ की काली रातों में आँखें चुँधिया जाती हैं
माज़ी[1] की अमराई में दो लौगों का लश्कारा[2]-सा

पकते गुड़ की ख़ुशबू फैल गयी भँवराली रातों में
गाँव का रस्ता ठुमक-ठुमक कर मन को करे इशारा-सा

उसको ज्या मालूम नहीं था किसके मीत हुए जोगी
कुटिया में दो एक घड़ी को हो तो गया उजियारा सा

कोई चमकती-सी शय[3] मेरा पीछा करती रहती है
आँखें जिधर घुमाऊँ घूमे उसी तरफ़ अंगारा-सा

[1]अतीत [2]नाक की लौंग की चमक [3]चीज़

**2**

कैसे कहें कि चार तरफ़ दायरा न था
जाते कहाँ कि ख़ुद से परे रास्ता न था

चुप साँस ले रही थी दरख़्तों के आसपास
आवाज़ दे रही थी कोई बोलता न था

ख़ुद से चले तो रहगुज़र आईना हो गयी
अपने सिवाए और कोई सूझता न था

अब के बसन्त आया तो आँखें उजड़ गयीं
सरसों के खेत में कोई पत्ता हरा न था

परदा हिला के बादे-सहर[1] दूर तक गयी
ख़ुशबू किधर से आयी किसी को पता न था

गुज़री तमाम उम्र उसी शहर में जहाँ
वाक़िफ़ सभी थे गो कोई पहचानता न था

ऐ 'अश्क़' फिर किताब पढ़ी थी वरक़ वरक़[2]
वो तीरगी[3] भी लज़्ज़ कोई सूझता न था।'

[1]सुज़्ह की हवा [2]पन्ना-पन्ना [3]अँधेरा

**3**

जो भी मिल जाता है घरबार को दे देता हूँ
या किसी और तलबगार को दे देता हूँ

तुमको ख़ाली ही मिलेगा मेरे दिल का कासा
ग़म भी मिलते हैं तो अश्आर को दे देता हूँ

धूप को देता हूँ तन अपना झुलसने के लिए
और साया किसी दीवार को दे देता हूँ

जो दुआ अपने लिए माँगनी होती है मुझे
वो दुआ भी किसी ग़मख़्वार को दे देता हूँ

कभी कर देता हूँ काग़ज़ के हवाले ख़ुद को
अपना चेहरा कभी अख़बार को दे देता हूँ

जब भी लिखता हूँ मैं अफ़साना, यही होता है
अपना सबकुछ किसी किरदार को दे देता हूँ

मेरी दुकान की चीज़ें नहीं बिकतीं 'नज़्मी'
इतनी तफ़सील ख़रीदार को दे देता हूँ

## कृष्ण अदीब

जब भी आती है तेरी याद कभी शाम के बाद
और बढ़ जाती है अफ़सुर्दादिली शाम के बाद।

अब इरादों पे भरोसा है न तौबा पे यकीं
मुझको ले जाए कहाँ तिश्नालबी शाम के बाद

यूँ तो हर लम्हा तेरी याद का बोझिल गुज़रा
दिल को महसूस हुई तेरी कमी शाम के बाद

दिल धड़कने की सदा थी कि तेरे क़दमों की।
किसकी आवाज़ सरे-शाम सुनी शाम के बाद।

यूँ तो कुछ शाम से पहले भी उदासी थी 'अदीब'
अब कुछ और बढ़ी दिल की लगी शाम के बाद।

**2**

शहरों शहरों आज है तन्हा दिल पर गहरा दाग़ लिये
गलियों गलियों हो गये रुसवा दिल पर गहरा दाग़ लिये।

आज गुलिस्ता में फैली है ख़ुशबू तेरी यादों की
मौसम-ए-गुल है, हम हैं तन्हा दिल पर गहरा दाग़ लिये

रोते धोते जी को जलाते मंज़िल-ए-शब तक आ पहुँचे
चेहरे पर है गर्द-ए-तमन्ना दिल पर गहरा दाग़ लिये

ढूढँने उनको शहर-ए-बुताँ में आज गये थे हम भी 'अदीब'
आँख में लेकर ग़म का दरिया दिल पर गहरा दाग़ लिये

**3**

तल्लिख़ए-मय में ज़रा तल्खि-ए-दिल भी घोलें
और कुछ देर यहाँ बैठ के पी ले रो लें

हर तरफ़ एक पुरअसर-सी ख़ामोशी है
अपने साये से कोई बात करें कुछ बोलें

कोई तो शख़्स हो जी जान से चाहें जिसको
कोई तो जान-ए-तसव्वुर हो कि जिसके हो लें

आह ये दिल की कसक हाय ये आँखों की जलन
नींद आ सोयें अगर आज तो हम भी सो लें

**4**

ज़हन पे छाई हुई ग़म की घटा हो जैसे
दर्द में डूबी हुई सारी फ़िज़ा हो जैसे।

अब दिल-ए-ज़र किसी तौर बहलता ही नहीं
इसका पैमान-ए-वफ़ा टूट गया हो जैसे

पुरसिश-ए-ग़म की भी रस्म उठा दी उसने
हाल-ए-दिल सुन के वो शर्मिन्दा हुआ हो जैसे

अब तो हर साँस के आमद पे गुमाँ होता है
ज़िन्दगी एक फसुर्दा-सा दिया हो जैसे

**प्रस्तुति : आनन्द कज़्कड़**

## सुदर्शन फ़ाकिर

इश्क़ ने ग़ैरते-जज़्बात ने रोने न दिया
वरना ज़्या बात के किस बात ने रोने न दिया

आप कहते थे कि रोने से न बदलेंगे नसीब
उम्रभर आपकी इस बात ने रोने न दिया

रोनेवालों से कहो उनका भी रोना रो लें
जिनको मजबूरी-ए-हालात ने रोने न दिया

तुझसे मिलकर हमें रोना था बहुत रोना था
तंगी-ए-वक़्त-ए-मुलाक़ात ने रोने न दिया

एक-दो रोज़ का सदमा हो तो रो ले फ़ाकिर
हमको हर रोज़ के सदमात ने रोने न दिया

**2**

कुछ तो दुनिया की इनायात ने दिल तोड़ दिया
और कुछ तल्ख़िए-हालात ने दिल तोड़ दिया

हम तो समझे थे के बरसात में बरसेगी शराब
आई बरसात तो बरसात ने दिल तोड़ दिया

दिल तो रोता रहे और आँख से आँसू न बहें
इश्क़ की ऐसी रवायात ने दिल तोड़ दिया

वो मेरे हैं मुझे मिल जाएँगे आ जाएँगे
ऐसे बेकार ज़्यालात ने दिल तोड़ दिया

आपको प्यार है मुझसे के नहीं है मुझसे
जाने ज़्यों ऐसे सवालात ने दिल तोड़ दिया

**3**

पत्थर के ख़ुदा पत्थर के सनम पत्थर के ही इंसाँ पाये हैं
तुम शह्रे-मुहज़्बत कहते हो, हम जान बचाकर आये हैं

बुतख़ाना समझते हो जिसको पूछो न वहाँ ज़्या हालत है
हम लोग वहीं से लौटे हैं बस शुक्र करो लौट आये हैं

हम सोच रहे हैं मुद्दत से अब उम्र गुज़ारें भी तो कहाँ
सहरा में ख़ुशी के फूल नहीं, शहरों में ग़मों के साये हैं

होठों पे तबस्सुम हल्का-सा आँखों में नमी-सी है 'फ़ाकिर'
हम अहले-मुहज़्बत पर अज़्सर ऐसे ही ज़माने आये हैं

**4**

शायद मैं ज़िन्दगी की सहर लेके आ गया
क़ातिल को आज अपने ही घर लेके आ गया

ता-उम्र ढूँढ़ता रहा मंज़िल मैं इश्क़ की
अंजाम ये कि ग़र्दे-सफ़र लेके आ गया

नश्तर है मेरे हाथ में काँधों पे मैक़दा
लो मैं इलाज-ए-दर्द-ए-जिगर लेके आ गया

'फ़ाकिर' सनमक़दे में न आता मैं लौटकर
इक ज़ज़्म भर गया था इधर लेके आ गया

## क़ैसर-उल-ज़ाफ़री

मेरी तरह ही मुहज़्बत का दर्द झेले तो
छुपा-छुपा के कोई आँसुओं से खेले तो

मैं इन्तज़ार करूँगा पलट के आ जाना
सफ़र न काट सको तुम अगर अकेले तो

तेरे क़रीब से गुज़रूँ तुझे न पहचानूँ
मेरी नज़र भी कभी इन्तक़ाम ले ले तो

हवा को देख मेरे आँसुओं पे तंज न कर
यही धुआँ तेरी आँखों के साथ खेले तो

बहुत गुमाँ है तुझे अपनी नाख़ुदाई पर
कोई जो डूबने वालों का नाम ले ले तो

मैं अपनी ज़ात में 'क़ैसर' छुपा तो बैठा हूँ
लगा लिये कहीं तन्हाइयों ने मेले तो

**2**

चलने को चल रहा हूँ मगर जी उचट गया
आधा सफ़र तो ख़ाक उड़ाने में कट गया

बाहर की रोशनी मेरे दिल ने न की क़ुबूल
मैं अपनी रात ले के दरीचे से हट गया

लहरों का ज़ोर काट न पाया मेरा बदन
मुझको भिगो के वज़्त का दरिया पलट गया

फिर ज़्या हुआ धुएँ की लकीरों से पूछिये
परवाना उड़ के शज़्म की लौ से लिपट गया

तन्हाई देख ले मुझे 'क़ैसर' तो रो पड़े
महफ़िल में आके मैं कई चेहरों में बँट गया।

**3**

इतनी आग कहाँ ले जाते जलती बुझती छोड़ चले
बंजारों से डरने वालो लो हम बस्ती छोड़ चले

आगे-आगे चीख रहा है सहरा का इक ज़र्द सफ़र
दरिया जाने, साहिल जाने हम तो कश्ती छोड़ चले

मिट्टी के अज़्बार के नीचे डूब गया मुस्तक़बिल[1] भी
दीवारों ने देखा होगा बच्चे तज़्ती छोड़ चले

दुनिया रज़्खे चाहे फेंके ये है पड़ी ज़ज़्बीले-सुखन[2]
हमने जितनी पूँजी जोड़ी रज़्ी-रज़्ी छोड़ चले

[1]भविष्य [2]काव्य की झोली

**4**

याद करने के लिए भूल गया हो शायद
उसका अन्दाज़े-तग़ाफुल[1] भी वफ़ा हो शायद

ढूँढ़ती फिरती हैं माज़ी के खंडर में आँखें
किसी पत्थर पे तिरा नाम लिखा हो शायद

आख़िरी वज़्त में याद आई वतन की गलियाँ
आओ देखें कोई दरवाज़ा खुला हो शायद

ज़िन्दगी! तूने वो अहसान किये हैं मुझ पर
मर के भी क़र्ज़े-मुहज़्बत न अदा हो शायद

लाओ होठों से लगा लूँ कि यही जुरअ-ए-ज़हर[2]
मेरे जलते हुए ज़ज़्मों की दवा हो शायद

इक तमाशा थी मेरी चाकगिरेबानी भी
फिर कोई और न दीवाना हुआ हो शायद

ज़्या करूँ वज़्त की आहिस्ताख़िरामी[3] का गिला
वो भी मेरी ही तरह आबलापा[4] हो शायद

सर के ज़ज़्मों से ये अन्दाज़ा हुआ है 'क़ैसर'
उस गली में कोई पत्थर न बचा हो शायद

[1]उपेक्षा का तरीक़ा [2]विष का घूँट [3]धीरे चलने वाला [4] पैरों के छाले

## प्रेम बारबर्टनी

दुनिया सोचे शौक़ से सोचे आज और कल के बारे में
मैं ज़्यों अपना चैन गवाऊँ उस पागल के बारे में

संगे-मरमर की क़ब्रों में महवे-ज़्वाब थे हम दोनों
कल शब देखा ज़्वाब अजब-सा ताजमहल के बारे में

आख़िर उसकी सूखी लकड़ी एक चिता के काम आई
हरे-भरे क़िस्से सुनते थे जिस पीपल के बारे में

मेरे शीतल मन की ज्वाला को तो और भी भड़काया
लोग न जाने ज़्या कहते हैं गंगा जल के बारे में

चूमो घूँघट खोल के चूमो इस दुल्हन के होठों को
ये अपना दस्तूर है मय की हर बोतल के बारे में

वो जो कुटिया डाल रहा है वीराने में शह्‌र से दूर
सारा शह्‌र परीशाँ ज़्यों है उस पागल के बारे में

## कुमार 'पाशी'

कुछ पुराने नक़्श जो रह-रह के याद आये हमें
डूबते तारों ने ज़्या-ज़्या रंग दिखलाये हमें

किसमें जुरअत है कि उतरे पानियों के दरमियाँ
किसको ज़्वाहिश है जो अबके राह पर लाये हमें

हम ये ज़्या जानें कि ज़्यों सब्रो-सुकूँ जाता रहा
तू जो इक दिन पास आ बैठे तो समझाये हमें

रात भर छत पर हमें तारे सदा देते रहे
रात भर कमरे में इक परछाईं दहलाये हमें

ज़्वाब में डूबे तो फिर पाया न कुछ अपना सुराग़
किसको फ़ुर्सत है जो 'पाशी' ढूँढ़ने जाये हमें

2

जो कुछ नज़र पड़ा मेरा देखा हुआ लगा
ये जिस्म का लिबास भी पहना हुआ लगा

जो भी कहा है शेर पुराना लगा मुझे
जिस लफ़्ज़ को छुआ वही बरता हुआ लगा

दिल का नगर तो देर से वीरान था मगर
सूरज का शहर भी मुझे उजड़ा हुआ लगा

अपना भी जी उदास था मौसम को देख कर
उस शोख़ का मिज़ाज भी बदला हुआ लगा

'पाशी' से खुल के बात हमारी भी कल हुई
वह नौजवान तो हमें सुलझा हुआ लगा

## अमीर क़ज़्लबाश

कुछ तो अपनी निशानियाँ रख जा
इन किताबों में तितलियाँ रख जा

लोग थक-हार कर न लौट आएँ
रास्ते में कहानियाँ रख जा

इन दरख़्तों से फल नहीं गिरते
इनके नज़दीक आँधियाँ रख जा

हो रहा है अगर जुदा मुझसे
मेरी आँखों पे उँगलियाँ रख जा

मुन्तज़िर[1] कोई तो मिले तुझको
घर के बाहर उदासियाँ रख जा

आज तूफ़ान भी अकेला है
तू भी साहिल पे कश्तियाँ रख जा

[1]प्रतीक्षारत

**2**

नज़र में हर दुश्वारी रख
ख़्वाब नहीं बेदारी रख

दुनिया से झुक कर मत मिल
रिश्तों में हमवारी[1] रख

सोच-समझ कर बातें कर
लफ़्ज़ों में तहदारी रख

एक ख़बर है तेरे लिए
दिल पर पत्थर भारी रख

शेर सुना और भूखा मर
इस ख़िदमत को जारी रख

[1]समता

## पूरन कुमार 'होश'

बरसात पहली-पहली पड़ी है जो गाँवों में
ख़ुशबू तेरे बदन की उड़ी है हवाओं में

रुक-रुक के ऐसे चलती रही अपनी ज़िन्दगी
टूटा हो जैसे काँटा कोई चुभ के पाँवों में

हम अपनी बात कह के सरे-आम चल दिये
आवाज़ गूँजती रही चारों दिशाओं में

बेवजह मुल्तवी न करो रात का सफ़र
लुटने को लुट गये हैं मुसाफ़िर सराओं में

तुम मौन रहना साँस भी लेना तो ध्यान से
मैं खुल के आ न जाऊँ महकती घटाओं में

**2**

होली में धनक रंग भिगोई हुई काया
छलके हैं वो अंग-अंग सिजोई हुई काया

फिर ज़ोर से झकझोर से, निखरी-सी लगे है
मक्खन-सी वो लस्सी में बिलोई हुई ज़्या

हर रंग मधुर तान में इक रागनी छेड़े
है कृष्ण की बंसी में समोई हुई काया

दिन-दिन वही कहती हुई सुनती हुई आँखें,
रातों वही जागी हुई सोई हुई काया

ओढ़े है चुनर गेंदे-सी, पहने हुए सरसों
लागे है खड़ी खेत में बोई हुई काया

ऐ 'होश' क़लम थाम कि फिर तेरी ग़ज़ल से
उभरे है वो मदिरा में डुबोई हुई काया

# मुमकिन है बग़ावत

## इक़बाल साजिद

मैं भूख पहनूँ, मैं भूख ओढ़ूँ, मैं जूख देखूँ, मैं प्यास लिखूँ
बिरहना जिस्मों के वास्ते मैं ख़्याल कातूँ, कपास लिखूँ

सिसक-सिसक कर जो मर रहे हैं मैं उनमें शामिल हूँ और फिर भी
किसी के दिल में उम्मीद बोऊँ, किसी की आँखों में आस लिखूँ

लहू के क़तरे बदन के तायर हर इक ख़्वाहिश है शाख़ मेरी
किसी ज़बाँ पे महक उगाऊँ, किसी के लब पे मिठास लिखूँ

थमे जो बारिश तो लोग देखें, छतों पे चढ़के धनुक का मंज़र
मैं अपने दिल को उजाड़ पाऊँ, तमाम आलम उदास लिखूँ

मेरा सफ़र है समन्दर ऐसा, जिधर भी जाऊँ बिफर के जाऊँ
कहीं उछालूँ मैं मौजे वहशत, कहीं मैं ख़ौफ़ो-हरास लिखूँ

## तनवीर सुपरा

फिर इक़्तिदार[1] के लिए मसरूफ़े जंग हैं
वह लोग जिनके हाथ में वादों के संग[2] हैं

नारों पे कुदग़ने[3] हैं तो चीखें बुलन्द कर
अब लोग इस सकूते[4] मुसलसल से तंग हैं

लफ़्ज़ों की फ़ाख़्ताएँ उड़ाते उन्हें न देख
ये अम्न के वकील ही बुनियादे जंग हैं

[1]सज़ा [2]पत्थर [3] प्रतिबन्ध [4] मौन

**2**

दिनभर तो बच्चों की ख़ातिर मैं मज़दूरी करता हूँ
शब को अपनी ग़ैर मुकम्मल ग़ज़लें पूरी करता हूँ

मेरी गुमनामी का बायस उन लोगों की शोहरत है
अपने तन, मन, धन से जिनकी मैं मशहूरी करता हूँ

कल तक मुमकिन है तुमसे भरपूर बग़ावत कर बैठूँ
आज अगरचे शिकवे वा तरज़े जम्हूरी करता हूँ

आज भी सुपरा उसकी ख़ुशबू मिल मालिक ले जाता है
मैं लोहे की नाफ़ से पैदा जो कस्तूरी करता हूँ

## ज़फ़र गोरखपुरी

ज़िन्दगी ने मुझे सौग़ात अनोखी दी है
तेशा एक हाथ में, एक हाथ में बंसी दी है

कौन जाने कि हवस जिस्म से ज़्या-ज़्या ले जाए
चोर के हाथ में सन्दूक़ की कुंजी दी है

कितनी आसानी से मशहूर किया है ख़ुद को
मैंने अपने से बड़े शख़्स को गाली दी है

ज़िन्दगी दी है मुझे आग के दरिया की तरह
पार उतरने के लिए मोम की कश्ती दी है

बेतहाशा मैं तेरे घर की तरफ़ भागा हूँ
इन मशीनों ने ज़रा देर जो छुट्टी दी है

कैसे भीगे हुए हाथों से सँभालोगे ज़फ़र
उसने काग़ज़ पे बनाकर तुज़्हें तितली दी है

**2**

मकाँ गिरते न औरों के किसी रज़्तार से आता
अगर पानी को आना था मिरी दीवार से आता

बहलने के लिए ज़्वाबों की कठपुतली उठा लाया
मैं ख़ाली हाथ आख़िर किस तरह बाज़ार से आता

जुदाई पी गयी बीवी के रुख़सारों[1] की शादाबी[2]
मैं ख़ुशहाली लिये जब तक समन्दर पार से आता

किसी इक मोड़ पर लाज़िम[3] था मुझको ग़र्क़[4] हो जाना
मैं कितनी दूर तक टूटी हुई पतवार से आता

मगर वो रास्ता कितनों के घर नज़दीक कर देता
यही होता निकल कर वो मेरी दीवार से आता

'ज़फ़र' ऐसा भी ज़्या आना न दाग़े-दिल न ज़ख़्मे-सर
कोई तुहफ़ा तो लेकर कूचा-ए-दिलदार[5] से आता

[1]गालों [2]चमक [3]आवश्यक [4]डूबना [5]प्रेयसी की गली

## मोहज़्मद अलवी

अगर दरिया मिले तो पार करना
सफ़र को और भी दुश्वार करना

बहादुर हो तो इतना याद रखना
जगाकर दुश्मनों पर वार करना

कड़कती धूप में चलना हो मुश्किल
दरज़्तों से न इतना प्यार करना

चलो, चलते है 'अलवी' मैक़दे में
वहीं सचाई का इज़हार करना

**2**

न हो कुछ और लेकिन जान तो है
बदन में अब भी इक मेहमान तो है

ये दुनिया कल न होगी ये ग़लत है
मगर इस बात का इमकान[1] तो है

चलो गाली ही देकर याद कर लो
हमारी भी कोई पहचान तो है

अरे ज़्यों ख़ुदकशी करते नहीं हो
कोई मुश्किल नहीं, आसान तो है

[1]सज़्भावना

**3**

दिन एक के बाद एक गुज़रते हुए भी देख
इक दिन तो अपने आप को मरते हुए भी देख

हर वक़्त खिलते फूल की जानिब[1] तका न कर
मुरझा के पज़ियों को बिखरते हुए भी देख

पैबन्द बादलों के लगे देख जा-ब-जा
बगुलों को आसमान कुतरते हुए भी देख

उसको ख़बर नहीं है अभी अपने हुस्न की
आईना देके बनते सँवरते हुए भी देख

तारीफ़ सुन के दोस्त से 'अलवी' तू ख़ुश न हो
उसको तेरी बुराइयाँ करते हुए भी देख

[1]ओर

## मुज़्ज़फ़र हनफ़ी

ऐसे में ज़्या प्यार पनपता, पानी में ज़्या गलती रेत
तू गहरे सागर का मोती, मैं साहिल की जलती रेत

हौले हौले रात की लोरी ढल गयी दुख के बैनों में
धीरे-धीरे काकशाँ में जागी आँखें मलती रेत

इतना ख़ून फ़ुज़ूल बहाया, मुझसे तो पूछा होता
ठंडे आँसू के छींटों पर दो-दो हाथ उछलती रेत

मंज़िल वंज़िल हम ज़्या जानें, चलना है सो चलते जाएँ
हिज़्मत चूर, डगर अनजानी, डगमग पाँव फिसलती रेत

मुझसे पूछो इंसानों की हैवानी फ़ितरत का हाल
मैंने देखी है दो-आबे के खेतों में फलती रेत

कम-गोई ने इज़्ज़त रख ली बन्द है मुट्ठी लाखों की
वरना 'मुजफ़्फ़र' लुत्फ़ आ जाता, खुलती सीप निकलती रेत

**2**

एक सिपाही ज़्यों ज़िन्दा रह जाए हारे लश्कर का
ऊँचे नेज़े वालो! मैं भी बोझ उतारूँगा सर का

फूल खिले थे, हाथ लगा था पत्थर को जब पहली बार
आख़िर पत्थर घिसते घिसते हाथ हो गया पत्थर का

ऐ आवारा पीले पज़्ो, मैंने होठ नहीं खोले
एक बगूला पूछ रहा था आज पता तेरे घर का

अपने हिस्से की दो बूँदें खोज रहा हूँ बरसों से
हर क़तरे पर लिख रखा है किस ने नाम समन्दर का

चुपके-चुपके ऊँची कर ली मेरी खिड़की तक दीवार
हम-साये ने काट लिया है आसमान मुझ बेपर का

अन्दर से अच्छे होते हैं अज़्सर आड़े तिरछे लोग
जैसे अफ़साना मंटो का, जैसे शे'र 'मुजफ़्फ़र' का

**3**

मैं क़सबे का भोला पंछी अन्दर बाहर एक
जिस शहरी ने हाथ मिलाया काट लिया पर एक

आग लगाने वालों में थे मेरे भाई भी
जलने वाली बस्ती में था मेरा भी घर एक

टूटी फूटी नाव हमारी ज़ाज़्मी दोनों हाथ
लेकिन बेपतवार किये हैं सात समन्दर एक

सोने की हर लंका उनकी और मुझे बनवास
चतुर सयाने दस दस सर के मुझ मूरख सर एक

गुलशन पर दोनों का हक़ है काँटे हों या फूल
टकराने की शर्त न हो तो शीशा पत्थर एक

ऐसे में भी क़ायम रखी लहजे की पहचान
ग़ज़लों के नक़्क़ाल[1] बहुत हैं और 'मुज़फ़्फ़र' एक

[1] नक़्ल करने वाले

## ज़ुबैर रिज़्वी

कई कोठे चढ़ेगा वह कई ज़ीनों से उतरेगा
बदन की आग लेकर शब[1] गये फिर घर को लौटेगा

गुज़रती शब के होठों पर कोई बेसाख़्ता बोसा[2]
फिर इसके बाद तो सूरज बड़ी तेज़ी से चमकेगा

हमारी बस्तियों पर दूर तक फैला हुआ बादल
हवा का रुख़ अगर बदला तो सहराओं[3] पे बरसेगा

गजब की धार थी इक साइबाँ साबित न रह पाया
हमें यह ज़ोम[4] था बारिश में अपना सर न ज़ीगेगा

मैं उस महफ़िल की रौशन साइतों[5] को छोड़कर गुम हूँ
अब इतनी रात को दरवाज़ा अपना कौन खोलेगा

मेरे चारों तरफ़ फैली है हरफ़े सौत[6] की दुनिया
तुम्हारा इस तरह मिलना कहानी बनके फैलेगा

पुराने लोग दरियाओं में नेकी डाल आते थे
हमारे दौर का इंसान नेकी करके चीखेगा

[1]रात [2]चुम्बन [3]रेगिस्तान [4]घमंड [5]क्षणों [6]आवाज़ बाजा

**2**

गुरूबे शाम ही से ख़ुद को यूँ महसूस करता हूँ
कि जैसे इक दीया हूँ और हवा की ज़द पे रखा हूँ

चमकती धूप को तुम अपने दामन में न भर लेना
मैं सारी रात पेड़ों की तरह बारिश में भीगा हूँ

कोई टूटा हुआ रिश्ता न दामन में उलझ जाये
तुम्हारे साथ पहली बार बाज़ारों में निकला हूँ

यह किस आवाज़ को बोसा मेरे होठों पे काँपा है
मैं पिछली सब सदाओं की हलावत भूल बैठा हूँ

पिछड़ के तुम से मैंने भी कोई साथी नहीं ढूँढा
हुजूमे रह गुज़र में दूर तक देखो अकेला हूँ

## प्रकाश फिकरी

हवा बदली वो दिन रुख़े नहीं हैं
दरख़्तों के तले साये नहीं हैं

उन्हें छूकर ग़मों की धूप सेंको
यह पैकर बर्फ़ हैं शोले नहीं हैं

फ़ज़ा बाग़ों की सहमी सर्दियों-सी
गुलों के रंग जब फीके नहीं हैं

यह माना थे सफ़र में साथ मेरे
मगर वो यार अब जँचते नहीं हैं

कहाँ ख़ुद्दारियाँ[2] अपनी डुबोएँ
समन्दर भी बहुत गहरे नहीं हैं

जिन्हें मालूम मंज़िल का पता है
यहाँ वो काफ़िले रुकते नहीं हैं

ख़ामोशी का उन्हें है पास फिकरी
ये पत्थर बेज़बाँ बहरे नहीं हैं

[1]सरापा [2]अहं

2

दिल के मौसम की बात मानें भी
आओ भर लें ज़रा उड़ानें भी

बर्फ़ पिघली तो हँस पड़े खुल कर
नीली झीलें हरी चट्टानें भी

रंगे दरिया है आईने जैसा
तह में ज्या है ये राज़ जाने भीं

लय तो ख़ुशियों की तेज़ है लेकिन
साथ उड़ती है ग़म की तानें भी

तीरो नश्तर भी बेअसर से हैं
बे नमक टोकती ज़बानें भी

किन उज्मीदों पे ये समझते हो
ख़ाक रातों की मिल के छानें भी

जेब ख़ाली है घर चलें फिकरी
बन्द होती हैं अब दुकानें भी

## मुमताज राशिद

हर एक मरहला नक़्शे ज़ियाँ[1] है मेरे लिए
तेरा ख़ुलूस ही अब रायगाँ[2] है मेरे लिए

बिछड़ के तुझसे करूँ ज्या मैं आँसुओं का शुमार
यह सिलसिला तो कराँ ता कराँ है मेरे लिए

ख़रीद सकता है कोई भी जिसको मेरे सिवा
मेरी हयात वह जींसे-गराँ[3] है मेरे लिए

शिकस्ता पैरों से लिपटी है पज़ियाँ फिर भी
नज़र की आख़िरी हद आसमाँ है मेरे लिए

वो रौशनी हूँ मैं बुझते हुए चराग़ों की
हर एक शाम धुआँ ही धुआँ है मेरे लिए

मआल यह भी है शायद तेरे रफ़ाक़त[4] का
जो अजनबी-सी यह उम्रे रवाँ है मेरे लिए

यह जुर्म है कि दिखाया है आईना राशिद
हर एक हाथ में संगे गराँ है मेरे लिए

[1]नुकसान [2]बेकार [3]महँगी चीज़ [4]साथ

## महामाई
### चन्द्रशेखर कंबार

पौराणिक मिथकों को लेकर रचनाओं के सृजन की परज़्परा पुरानी रही है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सज़्मानित रचनाकार चन्द्रशेखर कंबार की रचनाओं में ऐसे मिथकों का पुन:सृजन हुआ है। उदाहरण के लिए इसी नाटक में नाटककार ने शेटिवी का चित्रण मृत्यु की देवी के रूप में किया है जबकि कन्नड़ लोककथा में उन्हें भाग्य की देवी का दर्जा प्राप्त है। विश्व की अधिकतर लोककथाओं की तरह इस नाटक का मूल कथ्य मृत्यु पर मनुष्य की जीत है, हालाँकि प्रत्येक लोककथा में इस महाविजय के तरीके व साधन अलग-अलग रहे हैं। उदाहरणार्थ मार्कंडेय की लोककथा में भज़्ति, सावित्री की कथा में ब्रह्मज्ञान व हरज़्युलिस में असीम शारीरिक शज़्ति जीत के साधन रहे हैं। 'महामाई' में इसे दूसरे ढंग से रखा गया है। यहाँ मृत्यु की देवी महामाई और उसके दज़्क पुत्र वैद्य संजीव के बीच अन्तर्द्वन्द्व है। माई जहाँ लोगों का प्राण हरती है, वहीं पुत्र उन्हें जीवनदान देता है। अन्तत: विजय पुत्र की होती है, लेकिन यहाँ यह जीत वैद्यक दक्षता के कारण नहीं, बल्कि मानवीय प्रेम व संवेदन के कारण हुई है। 'महामाई' की सार्थकता आज की मानवीय अवस्था से है जहाँ मनुष्य बिना आजादी के; विश्व-शज़्तियों द्वारा नियन्त्रित है। नाटक का नायक ऐसे विश्व में जी रहा है जहाँ आस्था जीवन में नहीं, मौत में है। जहाँ मौत की देवी उसे शज़्ति तो देती है, लेकिन उस शज़्ति को अपनी इच्छानुसार इस्तेमाल करने की आजादी नहीं देती। यहीं नायक संजीव शिव को जीवन के अधूरेपन और प्रेम की अनुभूति का भान होता है। इन्हीं मूलभूत प्रश्नों को लेकर प्रस्तुत नाटक 'महामाई' का ताना-बाना बुना गया है।

**महामाई**
चन्द्रशेखर कंबार
मूल्य : 120 रुपये

## सुनो चारुशीला
### नरेश सज़्सेना

नरेश सज़्सेना हिन्दी के उन चुनिन्दा कवियों में हैं जो बहुत कम लिखते, किन्तु बहुत ज्यादा पढ़े जाते हैं। इनकी पहली कविता सन् '60 में छपी थी और आज पचास साल के बाद कवि का यह दूसरा ही संकलन है। पहला संकलन 'समुद्र पर हो रही है बारिश' को पाठकों का असीम स्नेह व सज़्मान मिल चुका है।

नरेश सज़्सेना की कविताई की दुनिया हिन्दी कविता के तमाम 'ज़्लीशेज़' को तोड़ती है। नरेश से पहले किसी ने कॉन्क्रीट, सीमेंट, जंग खाये लोहे, गिट्टी आदि को कविता की आँगनबाड़ी में प्रवेश नहीं दिलाया था। कवि पेशे से इंजीनियर रहा है, इसलिए इन चीज़ों का दाख़िला उसकी मार्फत हिन्दी कविता में हुआ। यहाँ यह अलग से बताना ज़रूरी है कि कवि ने चौंकाने या अलग दिखने की वृज़ि से इन पर कलम नहीं चलायी, ये कहीं से कविता की देह को आहत नहीं करते। बल्कि नरेश के यहाँ उनके समकालीनों की निस्बत ज़्यादा छन्द-बोध दिखता है। इस संकलन में तो कुछ गीत भी दर्ज हैं, और बाक़ी कविताएँ भी बक़ौल राजेश जोशी 'लय की कुदाल' से उत्खनित हैं। एक अदृश्य लयात्मकता आदि से अन्त तक नरेश की कविताओं को बाँधे रखती है। 'सेतु', 'गिरना', 'दाग़ धज़्बे', 'ईश्वर की औक़ात', 'चीड़ लदे ट्रक पर', 'पानी ज़्या कर रहा है' आदि कविताओं की रहनवारी तो पहले से ही पाठकों के जेहन में है, बाकी कविताएँ भी हिन्दी कविता की एक अनिवार्य उपलज़्धि की तरह हैं।

कविता के प्रदेश में एक अत्यन्त संग्रहणीय कविता-संग्रह।

**सुनो चारुशीला**
नरेश सज़्सेना
मूल्य : 120 रुपये

# ‘ग़ज़ल’ को ग़ज़ल ज्यों कहें

अज्दुल बिस्मिल्लाह

**हिन्दी साहित्य में ‘ग़ज़ल’ अब** कोई नयी चीज़ नहीं है। ग़ज़ल लिखने वाले कवि तो हैं ही, ग़ज़ल पर विचार-विमर्श करने वाले विद्वान भी हैं। हिन्दी ग़ज़ल पर पी-एच.डी. ही नहीं, डी.लिट्. तक के शोध प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं, लिखे जा चुके हैं। लोग तो यह भी कह रहे हैं कि ‘ग़ज़ल’ को लेकर बहस ही ग़ैरज़रूरी है। यही नहीं, हालत यह है कि जो आदमी ग़ज़ल का ‘क-ख-ग’ नहीं जानता, वह ज़ी फ़ायलालुन, मफ़ाइलुन वग़ैरह की बातें करता है। यानी इस बात की सज्भावना ही समाप्त हो गयी है कि ग़ज़ल का वैज्ञानिक रूप सामने आये। ऐसा लगता है, मानो हर आदमी ग़ज़ल को बख़ूबी समझ गया है, जबकि स्थिति एकदम भिन्न है। ग़ज़ल के सज्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ अब भी प्रचलित हैं। उन्हीं के निवारण हेतु यह पुनर्विचार प्रस्तुत है।

ग़ज़ल पर विचार करने वाले विद्वान अथवा शोधकर्ता सर्वप्रथम ‘ग़ज़ल’ शज्द की व्याज्या करते हैं, जो कि स्वाभाविक है; मगर इस व्याज्या में कुछ लोग ग़ज़ल को ‘ग़ज़ाल’ या ‘ग़िज़ाला’ से जोड़ते हैं, जो कि सरासर ग़लत है। ग़ज़ल शज्द का ग़ज़ाल या ग़िज़ाला/ग़ज़ाला से कोई सज्बन्ध नहीं है। यह तर्क कि ग़ज़ल में चूँकि प्रेम के साथ-साथ प्रिया का सौन्दर्य-चित्रण भी होता है और ग़ज़ाल या ग़िज़ाला/ग़ज़ाला (हिरनी) अपनी सुन्दर आँखों और चाल के लिए मशहूर है... मात्र दूर की कौड़ी भिड़ाने वाली बात है।

वस्तुत: ग़ज़ल अरबी भाषा का एक पृथक शज्द है, और इस शज्द का एक अर्थ ‘प्रेमालाप’ है। दूसरा अर्थ है— कताई (Spinning)। वैसे तो पहला अर्थ ही कताई है, प्रेमालाप दूसरा अर्थ है। कालान्तर में इस शज्द के अन्य अर्थ भी लिये जाने लगे: Love verses, Ode और Sonnet— अर्थात् प्रेमविषयक कविता। बहुत सज्भव है कि इटली में ‘सॉनेट’ का जन्म ग़ज़ल के प्रज़ाव से हुआ हो। (एक बार मेरे इस विचार से आदरणीय त्रिलोचन शास्त्री जी ने सहमति व्यज्त की थी।)

ग़ज़ल की व्याज्या के सन्दर्भ में ‘शे'र’ शज्द का ज़िक्र होना भी लाज़िमी है। वैसे तो इस शज्द का अर्थ प्राय: ‘कविता’ ही बताया जाता है, मगर कहीं मेरे देखने में आया कि ‘शे'र’ का अर्थ ‘बाल’ होता है। और तर्क यह कि चूँकि प्रिया के सौन्दर्य-चित्रण में केशराशि के सौन्दर्य का महज्वपूर्ण स्थान है, इसलिए...। मगर यह भी सरासर ग़लत है। दरअसल यह ज्रम वर्तनी के कारण हुआ है। अरबी भाषा में ‘शे'र’ शज्द लिखने के लिए तीन अक्षरों का प्रयोग होता है— शीन, ऐन और रे। मगर इन तीन अक्षरों से निर्मित शज्द को ‘शा'र’ भी पढ़ा जा सकता है, यदि ‘ज़बर’ और ‘ज़ेर’ जैसी मात्राएँ न लगी हों, जो कि आमतौर पर नहीं ही होतीं और ‘शा'र’ शज्द का अर्थ है— बाला। वैसे ‘शा'र’ और ‘शे'र’ का आपस में कोई सज्बन्ध नहीं है।

ग़ज़ल एक ऐसी काव्य विधा है, जिसे न तो ‘प्रबन्ध’ की संज्ञा दी जा सकती और न ही ‘मुज्तक’ की। हाँ, ग़ज़ल के शे'र ज़रूर मुज्तक की भाँति होते हैं। ग़ज़ल में प्रयुज्त हर शे'र स्वतन्त्र होता है और उसका अपना अलग अर्थ होता है। एक ही भाव में कही गयी ग़ज़ल को ‘ग़ज़ले-मुसलसल’ कहा जाता है। हालाँकि इसका अधिक प्रचलन नहीं रहा। दो

पँक्तियों की जिस रचना को 'शे'र' कहा जाता है, पुराने अरब क़बीलों में उसे 'बैत' कहा जाता था। आज भी उर्दू की अन्त्याक्षरी प्रतियोगिताएँ 'बैतबाज़ी' कहलाती हैं। अरबी में बैत का शाब्दिक अर्थ है— घर। 'जिस तरह घर के दरवाज़े में दो किवाड़ होते हैं, उसी तरह बैत के दो मिसरे होते हैं।' जहाँ तक 'शे'र' शब्द की बात है, यह 'शऊर' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है जानना। अर्थात शे'र तब होता है, जब शाइर ('शायर' सही उच्चारण नहीं है) को किसी अनुभूति का ज्ञान हो जाये। मुक्तिबोध ने सम्भवत: इसी को ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान कहा है।

बैतों अथवा अशआ'र (शे'रों) से सुसज्जित ग़ज़ल नामक काव्य-शैली का जन्म अरब में हुआ। ग़ज़ल के व्याख्याकार यह जानकारी तो देते हैं, मगर यह नहीं बताते कि अरब में ग़ज़ल कहने की शुरुआत कैसे हुई! कहीं-कहीं तो यह भी देखने में आया कि ग़ज़ल का जन्म तो अरब में हुआ, मगर वहाँ के 'ग़ज़ल कहने वाले शाइरों का कुछ ख़ास अता-पता नहीं चलता।' अब ऐसा तो हो नहीं सकता कि किसी काव्य शैली का जन्म जिस भूभाग में हो, वहीं के रचनाकारों का पता न चले। कठिनाई दरअसल कुछ और ही है। हिन्दी में ग़ज़ल की व्याख्या करने वाले लोग मूल स्रोत तक नहीं पहुँच पाते, अत: इधर-उधर से प्राप्त सामग्री से ही अपना काम चला लेते हैं; जबकि वास्तविकता यह है कि अरब में ग़ज़ल का सिर्फ़ जन्म ही नहीं हुआ, बल्कि अरबी भाषा में रची गयी ग़ज़लों की एक समृद्ध परम्परा भी वहाँ क़ायम हुई।

ग़ज़ल के जन्म और विकास को समझने के लिए अरब की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जान लेना बहुत ज़रूरी है। अरब के इतिहास में इस्लामपूर्व के युग को 'ज़मान:-ए-जाहिलिय:' कहा जाता है। हिन्दी में इस शब्द का अनुवाद 'जाहिलों (यानी मूर्खों) का ज़माना' करना ग़लत होगा। दरअसल 'ज़मान:-ए-जाहिलिय:' का अर्थ है— अन्धकार युग। अरबी भाषा में इस युग के दौरान रची गयीं कविताओं की विशेषता यह थी कि वे मूलत: प्रशंसात्मक होती थीं और इसीलिए उन्हें 'क़सीदा' कहा जाता था। अरबी भाषा में 'क़सीदा' शब्द का अर्थ है— लम्बी कविता अथवा प्रशंसागान। इन कविताओं का स्वरूप कुछ-कुछ हिन्दी के चारणकाव्य की तरह ही था। अरब का समाज चूँकि तरह-तरह के क़बीलों में बँटा हुआ था और उनके बीच अकसर झड़पें हुआ करती थीं, इसलिए क़सीदों का केन्द्रीय विषय प्राय: युद्ध था; जिसमें वीरों का प्रशंसागान तो होता ही था, विपक्षियों पर व्यंग्य-बाण भी चलाये जाते थे। वे व्यंग्य-बाण गाली-गलौच से भरे हुए होते थे, इसलिए उस काव्य में अश्लीलता भी घुस गयी थी। ज़मान:-ए-जाहिलिय: के 'मुतनब्बी' नामक शहर के काव्य से इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है, किन्तु उसे प्रस्तुत करने का अवसर यहाँ नहीं है।

क़सीदे में जब प्रेम का प्रवेश हुआ तो ग़ज़ल का जन्म हुआ और इसका श्रेय जाता है इमरउल क़ैस (539 ई.) को। अरबी साहित्य के विशेषज्ञों का मानना है कि इमरउल क़ैस ज़मान:-ए-जाहिलिय: का पहला शाइर है, जिसने ग़ज़ल कही। उसी ने सर्वप्रथम प्रिया के उजड़े दयार पर रुक कर उसकी याद में अपने दोस्तों के साथ मिलकर रोने की काव्यात्मक परम्परा की नींव डाली।

अब इमरउल क़ैस की जीवन-कथा पर एक नज़र डाल लेने से इसके कारणों का स्पष्टीकरण अपने आप हो जाएगा। इमरउल क़ैस अरबी भाषा का एक महत्त्वपूर्ण कवि था। वह विवाहित था (उसकी पत्नी का नाम फ़ातिमा था), लेकिन वह अपने चचा की बेटी अनीज़ा से इश्क़ करता था। न सिर्फ़ इश्क़ करता था, बल्कि अपने इश्क़ का खुल्लम खुल्ला इज़हार (ग़ज़लगोई) भी करता था। उसकी इस हरक़त से ख़ानदान के लोग बहुत परेशान थे। बदनामी के डर से ख़ानदान वालों ने अनीज़ा से उसके मिलने पर पाबन्दी लगा दी थी। मगर फिर भी वह बाज नहीं आता था।

इस सिलसिले में एक दिलचस्प कहानी मिलती है, जो कृष्ण और गोपियों से जुड़े एक प्रसंग से काफ़ी साम्य रखती है। एक बार अनीज़ा अपनी सहेलियों के साथ किसी दूसरे नगर की ओर जा रही थी। इमरउल क़ैस को जब इसका पता चला तो वह अपने ऊँट पर सवार होकर उसके क़ाफ़िले का पीछा करने लगा। मार्ग में एक जलाशय मिला तो अनीज़ा अपनी सहेलियों के साथ उसमें स्नान करने लगी। उन्होंने अपने कपड़े उतार कर जलाशय के किनारे रख दिये और ऊँट-ऊँटनियों को चरने के लिए छोड़ दिया। इमरउल क़ैस वहाँ पहुँचा और सबके कपड़े उसने अपने क़ब्ज़े में कर लिये। लड़कियों को जब इस बात का पता चला तो वे जलाशय के अन्दर से ही अपने कपड़े लौटाने की, उससे प्रार्थना करने लगीं। तब उसने शर्त रखी कि बाहर निकल कर अपने कपड़े ले लो। इस पर लड़कियाँ सीने पर हाथ बाँधे निकलीं और कपड़े लेकर उन्होंने अपने तन ढाँपे। मगर इमरउल क़ैस ने अनीज़ा के कपड़े उसे नहीं दिये। उसके लिए यह शर्त रखी कि हाथ उठाकर कपड़े लो। मजबूरन बेचारी को हाथ उठाकर कपड़े लेने पड़े।

इस प्रकार काफ़ी वक़्त गुज़र गया और सबको भूख लग आयी। तब इमरउल क़ैस ने अपनी दरियादिली दिखाई और अपने ऊँट को काटकर उसके भुने हुए मांस से सबकी क्षुधा तृप्त की। मगर जब वहाँ से प्रस्थान की बात उठी तो इमरउल क़ैस ने कहा कि मुझे वहीं जाना है जहाँ तुम लोग जा रही हो और मैंने अपना ऊँट तुम लोगों को खिला दिया है, अब मैं कैसे चलूँ? इस समस्या का समाधान यह निकला कि इमरउल क़ैस अपनी प्रिया की ऊँटनी पर उसके साथ ही बैठ गया। फिर तो रास्ते भर वह अनीज़ा को तरह-तरह से परेशान करता रहा।

इस कहानी में कितनी सचाई है और कितनी अतिरंजना, यह तो नहीं पता, मगर इमरउल क़ैस ने अपनी शाइरी में अपनी प्रिया के शारीरिक सौन्दर्य का ऐसा चित्रण किया है, जो अश्लीलता से आगे बढ़कर नग्नता की सीमा को छू लेता है। लेकिन इसके बावजूद उसकी ग़ज़ल में कोमलता और कमनीयता की लौ दमकती हुई नज़र आती है। इसका प्रमाण उसके 'मुअल्लक़ात' से बख़ूबी सिद्ध है।

'मुअल्लक़ात' उन लम्बे क़सीदों को कहा जाता था, जो ज़मान:-ए-जाहिलिय: के चुनिन्दा संग्रह थे। इमरउल क़ैस के ऐसे मुअल्लक़े में 81 अशआ'र हैं और 'मतला' (ग़ज़ल का पहला शे'र। शाब्दिक अर्थ है— आकाश का उदय स्थल) की भाषा इस प्रकार है—

''ऐ मेरे दोनों साथियो! ज़रा ठहर जाओ, ताकि हम महबूब तथा 'दख़ूल' और 'हवमल' के दरम्यान 'सिक़्तिल्लवा' में स्थित उसकी

क़यामगाह (रुकने की जगह) की याद में रो लें।''

यहाँ दख़ूल, हवमल और सिज्तिल्लवा अरब इलाक़े के स्थानवाची शज़्द हैं।

यह तो हुआ मतला। अब उसकी ग़ज़ल का एक शे'र द्रष्टव्य है, जिसका भाव है—

''उसके काले-काले बाल, जो उसकी पीठ को सजा रहे हैं, इतने घने हैं, जैसे खजूर के पेड़ की अनन्त शाखाएँ।''

अब इमरउल क़ैस के अलावा अरबी भाषा के दूसरे ग़ज़लगो- शाइरों का परिचय भी जान लेना चाहिए।

अन्तरह् बिन शद्दाह-अल-अबसी (525-615 ई.) अपनी 'ग़ज़ल-उल-अज़री' अर्थात पवित्र प्रेम पर आधारित ग़ज़लों के लिए प्रसिद्ध है। दरअसल ग़ज़ल के क्षेत्र में क़बील-ए-बनू अज़रा ने अपनी बड़ी भूमिका अदा की है। इस क़बीले के शाइरों ने पवित्र प्रेम को लेकर ऐसे-ऐसे शे'र कहे कि अरबी ग़ज़ल के इतिहास में 'ग़ज़ले-अज़री' की अपनी अलग ही पहचान बन गयी।

अरब में ग़ज़ल का विकास सही अर्थों में अहदे-उमवी (661-749 ई.) अर्थात् उमवी युग में हुआ। यह वह समय था, जबकि अरब का समाज सांस्कृतिक दृष्टि से काफ़ी समृद्ध हो रहा था। सज्यता और संस्कृति की समृद्धि के मूल में वह सामन्ती व्यवस्था थी, जिसमें आनन्द भी था और सन्तोष भी। यही कारण है कि उस दौर में ग़ज़ल को विकसित होने का भरपूर अवसर प्राप्त हुआ।

उन दिनों अरब के मज्का और मदीना शहर ग़ज़लगो- शाइरों के केन्द्र थे। दरअसल इन दोनों ही शहरों में कुछ जगहें ऐसी थीं, जहाँ लोग गाने-बजाने के लिए एकत्र हुआ करते थे। उनमें पुरुष भी होते थे और स्त्रियाँ भी। उन जगहों पर साहित्यिक अभिरुचि के लोग भी पहुँचते थे। लेकिन वहाँ जो गाना-बजाना होता था, उसमें अश्लीलता नहीं होती थी, बल्कि एक प्रकार की ऐन्द्रिकता होती थी। यही कारण है कि उस युग में उसी 'ग़ज़ले-अज़री' का विकास हुआ, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

अरब में जितने क़बीले थे, उनमें 'क़ुरैश' का स्थान सर्वोच्च था। इसी क़बीले में हज़रत मुहज़्मद (स.अ.) का जन्म हुआ था। जब उमर बिन अबी रबीय: (643-711 ई.) नाम का ग़ज़लगो शाइर प्रकट हुआ तो ग़ज़ल के क्षेत्र में भी क़ुरैश क़बीले की श्रेष्ठता सिद्ध हो गयी।

जमील बुसीन: (701ई.) विशुद्ध ग़ज़लगो शाइर था। हिन्दी में जैसे राजकमल चौधरी ने 'राजकमल' नाम की अपनी एक प्रिया का नाम स्वयं धारण कर लिया था, वैसा ही कुछ हाल जमील बुसीन: का था। बुसीन: उसकी प्रेमिका थी। जमील बुसीन: की शाइरी वस्तुत: बुसीन: के ग़म में तड़पने की शाइरी है।

लेकिन उस युग तक ग़ज़ल में चित्रित प्रेम मात्र शारीरिक नहीं रह गया था, बल्कि वह शुद्ध रूप से भावनात्मक हो गया था। अरबी भाषा में उमरू बिन कुलसूम अतग़लबी एक ऐसा ग़ज़लगो शाइर हुआ है, जो अपनी ग़ज़ल का आरज़्भ प्रिया के स्मरण से नहीं, बल्कि जामो-मीना से करता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

*अला हुज़्बी बे-सेहने की .फ़ सबहीना*

*वला तज़्क़ी ख़ुमूरल अन्दरीना*

अर्थात ऐ साक़ी! सुनो। प्याला उठाओ और हमारे सामने जामे-सुबूही (बीती रात के बाद, होती हुई सुबह के वक़्त बची हुई शराब का प्याला) पेश करो। इस तरह, कि अन्दरीना (सीरिया का एक स्थान) की शराब की एक बूँद भी न बाक़ी रहे।

**इस्लाम** के उदय के बाद अरबी शाइरी के विषय बदल गये और इस्लाम जब ईरान पहुँचा तो वहाँ की शाइरी में भी बदलाव आया, मगर फ़ारसी भाषा में कही गयी ग़ज़लें अरबी ग़ज़ल परज़्परा की तुलना में अधिक समृद्ध हैं। इसका कारण शायद यह है कि सज्यता और संसकृति के क्षेत्र में ईरान अरब से कहीं अधिक विकसित भूभाग रहा है। फ़ारसी में ग़ज़लगोई का आरज़्भ नवीं सदी के अन्त में हुआ जब ईरान में 'रूदकी समरक़न्दी' की प्रेमविषयक रचनाएँ प्रकाश में आयीं। रूदकी एक ऐसा शाइर था जिसने क़सीदा, ग़ज़ल, मसनवी, रुबाई आदि सभी काव्य विधाओं में अपनी रचनाएँ समाज को दीं।

वैसे ख़ुरासानी युग तक फ़ारसी भाषा में ग़ज़लें कम ही दिखाई देती हैं। आमतौर पर शाइर क़सीदे के माध्यम से ही 'तग़ज़्ज़ुल' (प्रेमविषयक अभिव्यज़्ति) का काम लेते थे। बाद में उनकी इसी वृज़्ति ने क़सीदा से अलग होकर ग़ज़ल का रूप धारण कर लिया, जैसा कि अरब में हुआ। वस्तुत: ईरान में मुज़्य रूप से तीन काव्य रूप प्रचलित थे— क़सीदा, दास्तानसराई (मसनवी) और रुबाई। फ़िरदौसी का 'शाहनामा', निज़ामी की मसनवियाँ और उमर ख़य्याम की रुबाइयों की ज़्याति सर्वत्र थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि फ़ारसी की मसनवियों पर तसव्वुफ़ का प्रभाव गहरा था। कालान्तर में ग़ज़लें ज़ी इस प्रभाव से अछूती नहीं रहीं।

**फ़ारसी** के लगभग सभी महज़्वपूर्ण शाइरों ने ग़ज़लें कहीं। उदाहरणार्थ शेख़ सादी अपनी 'गुलसिताँ' और 'बूसिताँ' (गुलिस्ताँ और बोस्ताँ सही उच्चारण नहीं हैं) के लिए जाने जाते हैं, मगर उन्होंने ग़ज़लें भी कहीं। रूमी मूलत: मसनवी के शाइर थे, लेकिन 'दीवान-ए-शज़्स-ए-तब्रेज़ी' (अथवा तब्रीज़ी) उनकी ग़ज़लों की किताब है। ज़्वाजू किरमानी (14वीं सदी) की मशहूर मसनवी है 'गुलो-नवरोज़'; पर उनकी ग़ज़लगोई की तारीफ़ ज़्वाजा हाफ़िज़ शीराज़ी तक ने की।

हाफ़िज़ फ़ारसी ग़ज़ल के बहुत बड़े शाइर हैं। प्रिया के तिल पर कहा गया उनका यह शे'र बहुत मशहूर है—

*अगर आँ तुर्के-शीराज़ी बदस्त आरद दिले-मारा*

*ब-ख़ाले-हिन्दुवश बज़्शम समरक़न्दो बुख़ारा रा*

अर्थात अगर वो शीराज़ी महबूब मेरे दिल को अपने हाथों में ले तो उसके एक काले तिल के बदले मैं समरक़न्द और बुख़ारा न्यौछवर कर दूँ।

फ़ारसी ग़ज़ल पर चर्चा करते हुए कमाल ख़जन्दी नामक शाइर को नहीं भुलाया जा सकता। इनके बारे में विद्वानों का मत है कि यह शाइर ग़ज़लगोई में 'मुसल्लिमुल सबूत' (पूर्णता प्राप्त अथवा पूर्णसिद्ध) उस्ताद था। कमाल ख़जन्दी की विशेषता यह थी कि अलौकिक सौन्दर्यबोध ने उसकी ग़ज़लों में एक प्रकार की पवित्रता भर दी थी।

उपर्युक्त शाइरों के अलावा उर्फ़ी, नज़ीरी, तालिब, कलीम और सायब जैसे सफ़वी युग के शाइरों ने भी ग़ज़ल के विकास में अपनी सार्थक भूमिका निभाई। उर्फ़ी (जमालुद्दीन मुहज़्मद उर्फ़ी) क़सीदे के मशहूर शाइर थे, मगर अपने आपको ग़ज़लगो मानते थे। कलीम हमदान में जन्मे, लेकिन रहे काशान में, इसलिए उन्हें 'कलीम काशानी' कहा जाता है। कलीम के बारे में मान्यता यह है कि वह क़सीदा और मसनवी भी ख़ूब कहता है, लेकिन उसका उस्तादाना जौहर ग़ज़ल में दिखता है। कलीम का ग़ज़ल संग्रह 'दीवाने-कलीम' ईरान के अलावा हिन्दोस्तान में भी बहुत लोकप्रिय हुआ।

फ़ारसी ग़ज़ल में सायब को तमसील (अन्योक्ति अथवा दृष्टान्त) का बादशाह माना जाता है, मगर यह जानना बहुत दिलचस्प है कि अपनी इस कला में वे अगर किसी और को माहिर समझते थे तो वे थे 'ग़नी कश्मीरी; जिनसे मिलने वे कश्मीर भी आये थे। दरअस्ल ग़नी का निज़्न शे'र सायब को बहुत पसन्द आया था—

*हुस्ने-सज़्ज़ा बज़्ते-सज़्ज़ मरा कर्द असीर*

*दाम हमरंग ज़मीन बूद गिरज़्तार शुदम*

यह एक जटिल शे'र है। इसका अर्थ तत्कालीन अरब और ईरान के समाज को समझे बग़ैर नहीं जाना जा सकता। आज, जबकि लोग ग़ज़ल की परज़्परा से ही पल्ला झाड़ रहे हैं, इस तरह के किसी शे'र का उनके लिए ज़्या मतलब हो सकता है? मगर सज़्भव है, कुछ लोग जानना चाहें। इसलिए प्रयत्न प्रस्तुत है—

इस शे'र का आरज़्भ होता है 'हुस्ने-सज़्ज़ा' से। फ़ारसी भाषा में 'सज़्ज़' शज़्द का अर्थ है हरा रंग। मगर हुस्ने-सज़्ज़ा का हरे रंग से कोई सज़्बन्ध नहीं है। हुस्ने-सज़्ज़ा का अर्थ है— 'ऐसे लड़के का सौन्दर्य, जिसकी मसें भींग रही हैं।' ठीक इसी प्रकार 'बज़्ते-सज़्ज़' के अर्थ में भी 'हरे रंग' का कोई काम नहीं है। इसका अर्थ है— बदक़िस्मती। अब शे'र का अर्थ देखिए, जो कुछ-कुछ इस प्रकार है—

उस लड़के के सौन्दर्य ने, जिसकी मसें भींग रही हैं, मुझ बदक़िस्मत को फँसा लिया है। जाल और ज़मीन का रंग चूँकि एक जैसा था, इसीलिए मैं उस जाल में फँस गया। (गिरज़्तार शुदम)।

पहले कहा जा चुका है कि यह शे'र जटिल है। अत: इसकी व्याज़्या भी आसान नहीं है। इसमें कई प्रतीकार्थ हैं, जो विस्तृत विश्लेषण के बग़ैर संभव नहीं। अत: संक्षेप में सिर्फ़ यही बता देना अभीष्ट है कि तत्कालीन अरब और ईरान के समाज में सुन्दर लड़के, सुन्दर लड़कियों के स्थानापन्न थे। अत: वे लड़के, जिनकी मसें भींग रही होती थीं, यदि अधिक सुन्दर दिखते रहे हों तो ज़्या आश्चर्य! 'मुग्धा कलहान्तरिता'। आयेहु अबहिं गवनवा, जुरुते माना अबरस लागिहि गोरि अहि, मन पछताना।

फ़ारसी ग़ज़ल के बारे में दो बातें और जानने योग्य हैं। एक तो यह कि अमीर ख़ुसरो 'अमीर ख़ुसरो देहलवी' नाम से भारत से ज़्यादा ईरान में मशहूर थे। सैयद मुहज़्मद गेसूदराज़ और शैख़ बुर्हानुद्दीन ने उनका ज़िक्र किया है। और दूसरी यह कि सफ़वी युग में ईरानी सरपरस्ती की अकृपा के कारण वहाँ के अनेक शाइर हिन्दोस्तान चले आए। इसके एक ज्वलन्त उदाहरण हैं शैख़ अली हज़्ीं इस्फ़हानी, जो यहाँ आकर बनारस में बस गये। सन् 1765 ई. में उनकी मृत्यु हुई।

यही वह समय है जब कि ईरान और इराक़ से बाहर निकल कर ग़ज़ल का जादू हिन्दोस्तान की ज़मीन पर छा गया और जिसने कालान्तर में 'मीर' और 'ग़ालिब' जैसे शाइरों को जन्म दिया। यहाँ एक विराम की आवश्यकता है। ज़्योंकि जो ग़ज़ल हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में शुरू हुई उसका इस परज़्परा से कोई लेना-देना नहीं रहा। प्रगतिशील आन्दोलन ने ग़ज़ल के प्रतीक बदले। प्रिया का प्रेम देशप्रेम हो गया। और इस तरह यह साबित हुआ कि 'ग़ज़ल' ही दुनिया की एकमात्र ऐसी विधा है, जिसमें सही अर्थों में लोकतन्त्र है। सही अर्थों में आज़ादी है। सही अर्थों में 'खेल' करने की गुंजाइश है। तभी तो मीर ने यह 'खेल' किया—

*मीर के दीनो-मज़हब को पूछते ज़्या हो उनने तो*

*कश्क: खैंचा दैर में बैठा कब का तर्क इस्लाम किया*

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ग़ज़ल में हर तरह का खेल किया जा सकता है। उर्दू ग़ज़ल में कुछ लोगों ने 'नयी ग़ज़ल' और 'आज़ाद ग़ज़ल' के नाम पर खेल करने की कोशिशें कीं, मगर हुआ यह कि नयी ग़ज़ल का खेल तो कुछ हद तक कामयाब रहा, मगर आज़ाद ग़ज़ल एकदम ज़्लॉप हो गयी। मुज़्बई से प्रकाशित 'शाइर' नामक पत्रिका के

'आज़ाद ग़ज़ल विशेषांक' का अब कोई नामलेवा भी नहीं है। कारण स्पष्ट है। नयी ग़ज़ल वालों ने ग़ज़ल के स्वरूप में छेड़छाड़ नहीं की, उन्होंने सिर्फ़ विषयवस्तु के नयेपन पर ज़ोर दिया, जबकि आज़ाद ग़ज़ल का नारा मुक्त छन्द (Blank Verse) की तर्ज पर दिया गया। दरअसल ग़ज़ल एक छन्दोबद्ध रचना है और उसे किसी भी स्थिति में छन्दमुक्त नहीं किया जा सकता। जैसा कि रूसी कविता को। रूसी भाषा में आज भी जो कविताएँ लिखी जा रही हैं, वे छन्दोबद्ध हैं।

अरबी और रूसी शायद ऐसी भाषाएँ हैं जिनमें सार्थक काव्याभिव्यक्ति पद्य में ही हो सकती है, मुक्त छन्द में नहीं। यही कारण है कि ग़ज़ल के लिए जो छन्द अरबी भाषा में निर्धारित हुए, वे न तो ईरान में बदले और न ही हिन्दोस्तान में।

लेकिन ग़ज़ल के छन्द विधान की चर्चा करने से पूर्व यह जान लेना भी ज़रूरी है कि ग़ज़ल की परज़्परा में प्रयुक्त होने वाले 'साक़ी', 'माशूक़', 'महबूब', 'सनम' शज़्द पुल्लिंग हैं। माशूक़ को माशूक़ा या महबूब को महबूबा बनाकर उन्हें स्त्रीलिंग का रूप प्रदान करना परज़्परा से छेड़छाड़ करना है। फिर 'साक़ी' का ज़्या होगा ? हरिवंशराय बच्चन ने उसे 'साक़ी बाला' कह कर स्त्रीलिंग बनाया। मगर हिन्दी में ग़ज़ल लिखने का यह अर्थ नहीं है कि ग़ज़ल के स्वभाव को ही बदल दिया जाए। ग़ज़ल में साक़ी (शराब प्रस्तुत करने वाला) और माशूक़ पुल्लिंग हैं तो इसके अपने सांस्कृतिक कारण हैं। अरब और ईरान के शराबघरों में शराब प्रस्तुत करने वाले सुन्दर लड़के होते थे, लड़कियाँ नहीं। यही नहीं, यूसुफ़-ज़ुलेख़ा की प्रेमकथा (जिसको आधार बनाकर निज़ामी ने अपनी महज़्वपूर्ण मसनवी रची) में ज़ुलेख़ा आशिक़ है और यूसुफ़ माशूक़। इसीलिए निज़ामी ने अपनी मसनवी में यूसुफ़ के सौन्दर्य का चित्रण किया है। इसके अतिरिज़्त ग़ज़ल पर तसव्वुफ़ का प्रभाव पड़ा तो ख़ुदा माशूक़ हो गया और बन्दा आशिक़। निस्सन्देह प्रियतम को पुल्लिंग के रूप में सज़्बोधित करने की उसी परज़्परा का प्रभाव था कि हिन्दी में जयशंकर प्रसाद ने भी उसका अनुकरण किया। 'आँसू' का एक छन्द द्रष्टव्य है—

*शशिमुख पर घूँघट डाले, अँचल में दीप छिपाए*
*जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आए।*

मगर अफ़सोस इस बात का है कि हिन्दी में ग़ज़ल लिखने वाले (ग़ज़ल कहने की परज़्परा तो हिन्दी में अभी तक विकसित नहीं हुई) ग़ज़ल के मूल स्रोत से परिचित नहीं हैं। उनके समक्ष जो भी सामग्री है, वह इधर-उधर से आयातित एवं संक्रमित है। अत: वे जो ग़लतियाँ कर रहे हैं, उनमें उनका दोष नहीं है। हालाँकि ग़ज़ल चूँकि एक प्रगतिशील विधा है, इसलिए उसके साथ किसी भी तरह की छेड़छाड़ की जा सकती है; मगर ग़ज़ल एक छन्दोबद्ध काव्य विधा है, इसलिए 'छेड़छाड़' करने वाले को ग़ज़ल के छन्दोविधान से परिचित होना भी ज़रूरी है। पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सिर्फ़ इसीलिए मुक्तछन्द में रचनाकर्म कर सके कि वे संस्कृत काव्यशास्त्र से भलीभाँति परिचित थे।

संस्कृत काव्यशास्त्र की तरह अरबी काव्यशास्त्र भी बहुत व्यापक है। जहाँ तक ग़ज़ल का सवाल है, इस काव्य विधा से सज़्बद्ध शे'र, मिसरा, मिसरा-ए-सानी, रदीफ़, क़ाफ़िया, मतला, मक़्ता आदि शज़्दावली से अधिकांश लोग परिचित हैं। कहाँ तक, यह तो वही लोग जानें, जो इसका दावा करते हैं। हाँ, हिन्दी में कहीं-कहीं ग़ज़ल की बह्रों (छन्दों) का विवेचन भी मिलता है। फिर भी यहाँ बह्रों के सज़्बन्ध में संक्षिप्त-सी जानकारी प्रस्तुत है।

जिस प्रकार छन्द का आधार लय है, उसी प्रकार बह्र का आधार है अरूज़। अरबी भाषा में इसका सही उच्चारण है अरूद। अत: सर्वप्रथम 'अरूज़' शज़्द का तात्पर्य जान लेना आवश्यक है। अरूज़ (या अरूद) का शाज़्दिक अर्थ है— ख़ेमे का खज़्भा (Tent-Pole), मगर साहित्य के सन्दर्भ में इसका अर्थ है कविता और पारिभाषिक तात्पर्य है शे'र में निहित 'वज़न'।

अरूज़ अथवा अरूद का आविष्कार दूसरी सदी हिजरी में ख़लीले-इज़्ने अहमद बसरी ने किया था। शाइरी में वज़न का विचार उसके मस्तिष्क में मज़्का शहर में ठठेरों के बाज़ार से गुज़रते हुए बर्तनों के बनने की आवाज़ें सुनकर आया। किसी ज़माने में मज़्का को अरूज़ (अरूद) कहा जाता था और ख़लील ने चूँकि यह आविष्कार वहीं किया था, इसीलिए शाइरी का वज़न 'अरूज़' (अरूद) कहलाया।

जिस वज़न (अरूज़/अरूद) पर शे'र कहा जाता है, उसे ही पारिभाषिक अर्थ में बह्र कहते हैं और अरबी काव्यशास्त्र में ग़ज़ल के लिए कोई ख़ास बह्र निश्चित नहीं की गयी है। वहाँ शाइरी मात्र के लिए जिन बह्रों की व्यवस्था मिलती है, उनकी संज़्या सोलह है। (कुछ विद्वानों के अनुसार यह संज़्या भिन्न है।) तीन बह्रें ऐसी हैं जिनका प्रयोग बाद में हुआ और वह भी ईरान में।

अरबी काव्यशास्त्र की वे बह्रें, जिनमें ग़ज़लें कही गयी हैं, मुज़्यतया तीन प्रकार की हैं। उनमें से एक-एक बह्र का उदाहरण देते हुए अन्य बह्रों का परिचय दिया जा रहा है:

**बह्रे-हज़ज** : इसकी मूल ध्वनि है—

मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन

यही ध्वनि दो पंज़्तियों में चार-चार बार करके कुल आठ बार आती है।

ऐसी अन्य बह्रें निज़्नवत हैं—

बह्रे-रजज़-(मुतफ़अलुन...), बह्रे-रमल (फ़ाइलातुन...), बह्रे-कामिल (मुतफ़ाइलुन...), बह्रे-वाफ़िर (मफ़ाइलातुन...), बह्रे-मुतक़ारिबा (फ़ऊलुन...) और बह्रे-मुतदारिक (फाइलुन...)।

**बह्रे-तवील** : इसकी मूल ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं—

फ़ऊलुन-मफ़ाईलुन फ़ऊलुन-मफ़ाईलुन

ये ध्वनियाँ एक ही पंज़्ति में आठ बार आती हैं।

ऐसी अन्य बह्रें हैं—

बह्रे-मदीद (फ़ाइलातुन-फ़ाइलुन), बह्रे-बसीत (मुतफ़अलुन-फ़ाइलुन), बह्रे-मुजस्सम (मुस्तअलुन-फ़ाइलातुन), बह्रे-मुन्सरह (मुस्तअलुन-मफ़ऊलात), बह्रे-मुज़ारअ (मुफ़ाईलुन-फ़ाइलातुन) और बह्रे-मुक्तज़ब (मफ़ऊलात-मुतफ़अलुन)।

**बह्रे-ख़फ़ीफ़** : इसकी मूल ध्वनियाँ तो दो ही होती हैं, मगर दो पंज़्तियों में तीन-तीन करके छ: बार आती हैं—

फ़ाइलातुन-मतुफ़अलुन-फ़ाइलातुन

इस तरह की दूसरी बह्रे ये है—

बह्रे-जदीद (फ़ाइलातुन-फ़ाइलातुन-मुतफ़अलुन), बह्रे-क़रीब (मुफ़ाईलुन-फ़ाइलातुन-फ़ाइलातुन), बह्रे-मुशाकिल (फ़ाइलातुन-मुफ़ाईलुन-मुफ़ाईलुन)।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आख़िरी तीन बह्रों (बह्रे-जदीद, बह्रे-क़रीब और बह्रे-मुशाकिल) का आविष्कार मौलाना यूसुफ़ अरूज़ी (अरूदी) नेशापूरी ने किया था। ये वही शख़्स हैं, जिन्होंने ख़लील के दो सौ बरस बाद उनकी रचना 'इल्मे-अरूज़ (अरूद)' यानी लय का सिद्धान्त— का फ़ारसी में अनुवाद किया था। इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय है कि ख़ासकर 'अजम' (ग़ैर-अरब) यानी ईरान के शाइरों ने उक्त तीनों बह्रों में भी शे'र कहे हैं। इनके अतिरिक्त शाइरों ने अन्य बह्रों भी बनायी हैं।

यह बात शायद पूरी तरह सच न हो, मगर अरबी की उपर्युक्त बह्रें संस्कृत-हिन्दी के मात्रिक छन्दों की तरह (लगभग) हैं। चूँकि अरबी भाषा में लघु 'ए' अथवा लघु 'ओ' की ध्वनियाँ भी हैं, इसलिए मात्राओं की गणना भिन्न हो सकती है, मगर इन्हें वर्णवृत्त के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

अब सवाल यह उठता है कि ग़ज़ल की बह्र की पहचान कैसे हो? अथवा यह कि ग़ज़ल के अशआ'र को बह्र के व्याकरण से किस प्रकार मिला कर देखें? तो, अरबी भाषा में इसकी एक पद्धति है, जिसे 'तक़्तीअ' कहा जाता है। 'तक़्तीअ' का शाब्दिक अर्थ है— टुकड़े-टुकड़े करना। जैसे 'मक़्ता' का अर्थ है कटा हुआ और 'मतला' का अर्थ है उदय स्थल। चूँकि मदरसे में बच्चा अक्षरों के टुकड़े-टुकड़े कर के शब्दों को और शब्दों के टुकड़े-टुकड़े करके वाक्यों को समझता था, सम्भवत: इसीलिए प्रारम्भिक शिक्षा के उपादान 'तक़्तीअ' को उसके अपभ्रंश 'तख़्ती' के रूप में जाना गया। जबकि 'तख़्ती' किसी बड़े तख़्त का टुकड़ा नहीं होता।

अरबी भाषा का तक़्तीअ संस्कृत व्याकरण के 'अन्वय' से काफ़ी कुछ साम्य रखता है। अन्तर केवल इतना है कि अन्वय के अन्तर्गत श्लोक में प्रयुक्त शब्दों को कर्ता, कर्म, क्रिया आदि के अनुसार क्रमबद्ध करके रखा जाता है, जबकि तक़्तीअ के अन्तर्गत शब्दों में प्रयुक्त अक्षरों अथवा ध्वनियों को छन्द योजना के अनुसार रखकर देखा जाता है। उदाहरणार्थ 'बह्रे-हज़ज' में कही गयी मिर्ज़ा ग़ालिब की ग़ज़ल का एक शे'र देखिए—

*हुआ जब ग़म से यूँ बेहिस तो ग़म क्या सर के कटने का*
*न होता गर जुदा तन से तो ज़ानूँ पर धरा होता*

इसका तक़्तीअ इस प्रकार होगा—

| मफ़ाईलुन | मफ़ाईलुन | मफ़ाईलुन | मफ़ाईलुन |
|---|---|---|---|
| *हुआ जब ग़म* | *से' यूँ बेहिस* | *तो' ग़म क्या सर* | *के' कटने का* |
| *न होता गर* | *जुदा तन से* | *तो ज़ानूँ पर* | *धरा होता* |
| 7 | + 7 | + 7 | + 7 = 28 |

ये बातें हुईं शास्त्र की, मगर ग़ज़ल सिर्फ़ शास्त्र की चीज़ नहीं है। उसकी अपनी अलग साहित्यिक विशिष्टताएँ हैं। यदि हिन्दी में ग़ज़ल लिखने वाले उन विशिष्टताओं की रक्षा कर सकें तो भी वे न सही, ग़ज़ल का, बल्कि 'अपनी ग़ज़ल' का तो कल्याण कर ही सकेंगे। वे विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं—

क) ग़ज़ल में और कुछ हो या न हो, मगर 'इब्हाम' का होना ज़रूरी है। इब्हाम का अर्थ है अस्पष्टता, अर्थात् बात कुछ ऐसी हो जो श्रोता अथवा पाठक को सोचने के लिए विवश करे। सपाटबयानी न हो। जैसे मिर्ज़ा ग़ालिब की ग़ज़ल का यह शे'र—

*दे के ख़त, मुँह देखता है नाम: बर*
*कुछ तो पैग़ामे-ज़बानी और है*

इस शे'र को ग़ज़ल का शे'र बनाया है 'कुछ तो पैग़ामे-ज़बानी' ने। अर्थात ख़त में जो लिखा है, उसके अलावा कुछ मौखिक सन्देश भी है, मगर वह क्या है, यह स्पष्ट नहीं है।

ख) ग़ज़ल में 'तग़ज़्ज़ुल' का होना ज़रूरी है, जिसे हिन्दी में ग़ज़ल लिखने वालों के पैरोकार नहीं मानते। बात चाहे सामाजिक हो, राजनैतिक हो, अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित हो अथवा क्यों न भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के प्रभाव पर हो, बात होनी चाहिए 'प्रेम' के माध्यम से ही। जैसे फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के अशआ'र—

*बुझा जो रौज़ने-ज़िन्दाँ तो हमने समझा है*
*के: माँग तेरी सितारों से भर गयी होगी*
*चमक उठे जो सलासिल तो हमने जाना है*
*के: अब सह्र तेरे रुख़ पर बिखर गयी होगी*

यहाँ 'सितारों से भरी माँग' और 'रुख़ पर बिखरी हुई सुबह' यह भ्रम पैदा करते हैं कि शाइरों की विषयवस्तु 'प्रेम' है, किन्तु वस्तुत: यह देशप्रेम है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना ज़रूरी है कि ग़ज़ल के इस मापदंड को सर्वप्रथम फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ने ही सार्थकता प्रदान की। हालाँकि उनके उपर्युक्त अशआ'र किसी ग़ज़ल के नहीं, बल्कि एक क़तअ के हैं, मगर 'क़तअ' भी एक ज़माने में ग़ज़ल का अंग होता था। इसके अलावा उनकी ग़ज़लों से भी ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं।

ग) आख़िरी बात वह है जिसका संकेत पहले ही किया जा चुका है। अर्थात ग़ज़ल एक प्रगतिशील काव्य विधा है। अत: ग़ज़ल में हर तरह की आलोचना के लिए शाइर स्वतन्त्र है। मगर उस स्वतन्त्रता की अपनी सीमाएँ भी हैं।

एक और बात यह कि ग़ज़ल में सिर्फ़ ग़ज़ल ही हो सकती है, बकवास नहीं। इस सन्दर्भ में यह जान लेना ज़रूरी है कि ग़ज़ल की ज़मीन पर धान और गेहूँ तो बोया जा सकता है, मगर 'चरी' (जानवरों का चारा) नहीं। जबकि क्षमा याचना के साथ कहना पड़ रहा है कि दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल की जो ज़मीन तैयार की थी (हालाँकि वह भी समतल नहीं थी) अधिकांश लोग उस पर 'चरी' ही बो रहे हैं। इसके बावजूद हिन्दी के कई कवियों की सार्थक ग़ज़लें प्रकाश में आ रही हैं, यह सुखद है।

**29, मुजीब बाग़, जामिया मिल्लिया कैम्पस**
**नयी दिल्ली-110 025**
**मो.: 09811306331**

## शाइरी के नये दौर : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

उर्दू, शाइरी के इतिहास में जिस दौर को स्वर्णयुग कहा-माना जाता है, 'शाइरी के नये दौर' के पाँच भागों में उसी दौर के प्रज़्यात आधुनिक उर्दू शाइरों की श्रेष्ठतम शाइरी का संचयन है—

**पहला दौर :** शाइरे-इन्क़िलाब 'जोश' मलीहाबादी का 3500 पृष्ठों से चुना गया श्रेष्ठ कलाम एवं जीवन-परिचय।

**दूसरा दौर :** 1920 ई. के बाद के ज़्यातिप्राप्त वर्तमानयुगीन शाइरों—आनन्दनारायण मुल्ला, फ़िराक़ गोरखपुरी, मुनव्वर लखनवी, हरीचन्द अज़्तर, हफ़ीज़ जालन्धरी के बेहतरीन  कलाम और जीवन-परिचय।

**तीसरा दौर :** उर्दू के प्रतिष्ठित राष्ट्रकवि (क़ौमी शाइर) हज़रते साग़र निज़ामी का सर्वश्रेष्ठ कलाम और परिचय।

**चौथा दौर :** तीन प्रतिष्ठित आधुनिक शाइरों—अज़्तर शीरानी, अज़्दुल हमीद अदम, एहसान दानिश के श्रेष्ठ कलाम और जीवन परिचय।

**पाँचवाँ दौर :** चार लज़्धप्रतिष्ठित शाइरों—जमील मज़हरी, रविश सिद्दक़ी, अफ़सर मेरठी, निहाल सेवहारवी के चुने हुए श्रेष्ठ कलाम और जीवन-परिचय।

उर्दू साहित्य के मनस्वी विद्वान् और प्रखर विचारक अयोध्याप्रसाद गोयलीय द्वारा तैयार की गयी ये बेजोड़ पुस्तकें, विश्वास है काव्य-प्रेमी पाठकों की एक बड़ी ज़रूरत को पूरा करेगी।

## शाइरी के नये मोड़ : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

1953 से 1958 तक उर्दू, शाइरी ने कई मोड़ लिये हैं। शाइरी के नये मोड़ के पाँच भागों में इसी दौर के प्रतिष्ठित प्रगतिशील और प्रयोगवादी शाइरों के श्रेष्ठ कलाम और परिचय प्रस्तुत हैं :

**पहला दौर :** इस भाग में 1946 से मार्च 1958 तक की उर्दू शाइरी की एक झलक, और मशहूर शाइरों की प्रतिनिधि रचनाओं का चयन है।

**दूसरा दौर :** 1935 से अज़्तूबर 1958 तक की उर्दू शाइरी पर नज़र और छह चुनिन्दा शाइरों के कलाम और जीवन-परिचय।

**तीसरा दौर :** उर्दू के दो महान् उर्दू शाइरों : इसरारुलहक़ मजाज़ और फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के श्रेष्ठतम कलाम और परिचय।

**चौथा दौर :** प्रमुख तरक़्क़ीपसन्द शाइरों : अली सरदार जाफ़री, जाँ-निसार अज़्तर और साहिर लुधियानवी के परिचय और श्रेष्ठ कलाम।

**पाँचवाँ दौर :** प्रज़्यात आधुनिक उर्दू शायरों : नरेश कुमार 'शाद', वामिक़ जौनपुरी, क़तील शिफ़ाई और मज़रूह सुलतानपुरी के परिचय और कलाम।

उर्दू-साहित्य के प्रखर अध्येता और मनस्वी विचारक अयोध्याप्रसाद गोयलीय की इस ऐतिहासिक महज़्व की पुस्तक का प्रस्तुत है नया संस्करण।

## शेर-ओ-सुख़न : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

'शेर-ओ-सुख़न' के  पाँच भागों में प्रारज़्भ से १९५४ तक की गज़ल का इतिहास, प्रतिष्ठित ग़ज़ल-गो शायरों के परिचय और उनकी श्रेष्ठतम ग़ज़लें संकलित हैं :

**पहला दौर :** सन् 1900 तक की उर्दू शाइरी का प्रामाणिक इतिहास, विवेचन और इस अवधि के प्राय: सभी ग़ज़ल-गो शायरों की श्रेष्ठ ग़ज़लों का संकलन और परिचय।

**दूसरा दौर :** उस्ताद-शायरों के मशहूर उज़राधिकारी—आधुनिक लखनवी शायरों का जीवन-परिचय, साहित्यिक विवेचन और उनकी बेहतरीन ग़ज़लों का संकलन।

**तीसरा दौर :** देहलवी रंग के प्रतिष्ठित शायरों का परिचय और उनकी श्रेष्ठतम ग़ज़लों का संकलन।

**चौथा दौर :** मिर्ज़ा 'दाग़' के मुज़्य-मुज़्य शिष्यों तथा ज़्यातिप्राप्त बुज़ुर्ग शायरों का जीवन-परिचय और उनकी सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें।

**पाँचवाँ दौर :** प्राचीन और वर्तमान ग़ज़लगोई पर तुलनात्मक अध्ययन के साथ ही गुलो-बुलबुल, साक़ी-ओ-मैखाना, हुस्न और इश्क तथा अन्य कई विषयों पर चुनिन्दा ग़ज़लों का संग्रह।

उर्दू-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय द्वारा तैयार किये गये इस अनूठे संग्रह को पढ़ना काव्यप्रेमी पाठकों के लिए निस्सन्देह एक बड़ी उपलज़्धि होगी।

# माँ की आमद

## ज़ेब ग़ौरी

ख़ंजर चमका रात का सीना चाक हुआ
जंगल-जंगल सन्नाटा सफ़्फ़ाक[1] हुआ

ज़ख़्म लगा कर उसका भी कुछ हाथ खुला
मैं भी धोका खा कर कुछ चालाक हुआ

मेरी ही परछाईं दरो दीवार पे है
सुबह हुई नैरंग[2] तमाशा ख़ाक हुआ

कैसा दिल का चराग़ कहाँ का दिल चराग़
तेज़ हवाओं में शोला ख़ाशाक[3] हुआ

फूल की पत्ती पत्ती ख़ाक पे बिखरी है
रंग उड़ उड़ते-उड़ते अफ़लाक[4] हुआ

हर दम दिल की शाख़ लरज़ती रहती थी
ज़र्द हवा लहराई क़िस्सा पाक हुआ

अब उसकी तलवार मेरी गर्दन होगी
कब का ख़ाली जेब भर इख़्तराक हुआ

[1]बेरहम [2]कई रंग का [3]तिनका (राख) [4]आसमान

**2**

खिचाँ हिसारे[1] हवा आतिशे[2] हवा के लिए
फिर आसमान बनाया गया दुआ के लिए

चराग़े हर्फ़ गराँ[3] गोश तीरगी[4] को दिये
सराब[5] उतारे कहीं दश्ते बे सदा[6] के लिए

कहीं नशेबे[7] सियह आब को किया रोशन
ज़मीं को दाग़ दिया अज़्से[8] नारसा के लिए

कहीं ख़ामोश चट्टानों को सिलसिला बख़्शा
निशाते[9] हमरही व गर्मिये वफ़ा के लिए

कहीं ज़मीं के बराबर किये गये कोहसार
शिकस्ते ख़ातिरो पिस्पाइये अना के लिए

कहीं जंज़ीरे तहे आब से उभारे गये
हिसाबे कुदरते अन्दाज़ा क़ज़ा[10] के लिए

कहीं किसी को चढ़ाया फिसलती चोटी पर
कहीं गिराया हम आहंगिये[11] फ़ज़ा के लिए

सदाएँ, कमतरो कममाया[12] तशनगी[13] की सदायें
फ़रोग़ हिज्र[14] में गुम हो गयीं सदा के लिए

था ख़ैरोशर[15] का तमाशा सवादे ज़ुलमत[16] में
अख़ीर तक न रुके हम सज़ा जज़ा के लिए

खुला ख़ज़ानये मआनी को मुँह हमारे बाद
बचा था एक यही क़त्ल ख़ूँ बहा[17] के लिए

कभी-कभी तो मुकम्मल बना कोई तस्वीर
कि ज़ेब कुछ तो रहे ज़हने नारसा के लिए

[1] हवा का घेरा [2] आग [3] कान को बुरा लगने वाला [4] अँधेरा [5] मरीचिका [6] बे आवाज़ जंगल [7] नीचा [8] पहुँच न होना [9] साथ चलने की ख़ुशी [10] मौत [11] एक आवाज़ [12] कम अहमियत की [13] प्यास [14] वियोग [15]अच्छाई-बुराई [16] अँधेरा [17] ख़ून का बदला

## शीन काफ़ निज़ाम

दरवाज़ा कोई घर से निकलने के लिए दे
बेख़ौफ़ कोई रास्ता चलने के लिए दे

आँखों को अता ख़्वाब किये शुक्रिया, लेकिन
पैकर भी कोई ख़्वाबों में ढलने के लिए दे

पानी का ही पैकर किसी परबत को अता कर
इक बूँद ही नद्दी को उछलने के लिए दे

सहमी हुई शाख़ों को ज़रा-सी, कोई मुहलत
सूरज की सवारी को निगलने के लिए दे

सब वक़्त की दीवार से सर फोड़ रहे हैं
रोज़न ही कोई भाग निकलने के लिए दे

सैलाब में साअत के मुझे फेंकने वाले
टूटा हुआ इक पल ही सँभलने के लिए दे

महफ़ूज़ जो तर्तीबे-अनासिर से हैं, असरार
तो ख़ोल को इक आँच पिघलने के लिए दे

तख़ईल को तख़लीक़ की तौफ़ीक़ अता कर
फिर पहलू से इक चीज़ निकलने के लिए दे

**2**

उम्र लम्बी तो है मगर बाबा
सारे मंज़र हैं आँख भर बाबा

ज़िन्दगी जान का ज़रर बाबा
कैसे होगी गुज़र-बसर बाबा

और आहिस्ता से गुज़र बाबा
सामने है अभी सफ़र बाबा

तुम भी कब का फ़साना ले बैठे
अब वो दीवार है न दर बाबा

भूले बिसरे ज़माने याद आये
जाने ज्यूँ तुमको देख कर बाबा

हाँ, हवेली थी इक, सुना है यहाँ
अब तो बाक़ी है बस खंडर बाबा

रात की आँख डबडबा आयी
दास्ताँ कर न मुख़्तसर बाबा

हर तरफ़ सख़्त ही का सहरा है
भाग कर जाएँगे किधर बाबा

उस को सालों से नापना कैसा
वो तो है सिर्फ़ साँस भर बाबा

हो गयी रात अपने घर जाओ
ज्यूँ भटकते हो दर-ब-दर बाबा

रास्ता ये कहीं नहीं जाता
आ गये तुम इधर किधर बाबा

**3**

फिर आश्ना-अजनबी-सा कोई उदास लज़्हा ठहर गया ज़्या
गिरा जो हाथें से उस के तिनका, वो पानी सर से गुज़र गया ज़्या

अगर हवा का उदास झोंका, गली में बैठा हो तो ये पूछो
बहुत दिनों से नज़र न आया, वो किस तरह है, उधर गया ज़्या

हमें जो पीता था जुरआ-जुरआ, कि जिस को साँसों से हमने सींचा
घना-घना-सा था जिसका साया, वो पेड़ अब के बिखर गया ज़्या

न कोई शब को सँवारता है, न कोई दिन को उजालता है
वो आख़िरी शहरे-आरज़ू भी समुन्दों में उतर गया ज़्या

बुझे दियों को जलाने वाला, मरे हुओं को जिलाने वाला
कहीं से कोई सदा नहीं है, वो अपने साये से डर गया ज़्या

सियाही ओढ़े खड़ी है कब से, कगार पर ज़्यूँ फ़सीले-शब के
उदास आँखों से देखती है, वो ज़ज़्म यादों का भर गया ज़्या

## सैयद मेहदी

ज़ुबाँ पे, नाम जो आये ज़ुबान ख़ुशबू दे
मैं उसको सोचूँ तो सारा मकान ख़ुशबू दे

न मेरे ज़ज़्म ही देखो, न हाले-दिल पूछो
ये तीर उसके हैं जिसकी कमान ख़ुशबू दे

ये कौन गुज़रा है रास्ते से फूल जैसा अभी
क़दम-क़दम पे क़दम का निशान ख़ुशबू दे

ये तेरे होंठ, ये आँखें ये आरिज़ो-गेसू
अभी मैं छेड़ूँ तो मेरा बयान ख़ुशबू दे

वो इश्क़ ज़्या, कि जो आशिक़ की आबरू रख ले
वो मुश्क ज़्या कि, न सारी दुकान ख़ुशबू दे

मैं तेरे लज़्स की रंगत तलाश करता हूँ
बग़ैर फूलों के जब फूलदान ख़ुशबू दे

मेरे बुज़ुर्गों की तहज़ीब भी निराली थी
जो अब भी याद करूँ पानदान ख़ुशबू दे

समझ लो ख़त का कबूतर जवाब लाया है
कभी जो छत का पुराना मचान ख़ुशबू दे

खनकते हाथों से वो आरती उतारे जब
महकते होठों से मुरली की तान ख़ुशबू दे

तुज़्हारे शहर में मासूम क़त्ल होते हैं
तो कैसे महके भजन, ज़्या अज़ान ख़ुशबू दे

अभी तो मुल्क में फ़िरका-परस्त बाक़ी हैं
मरें ये लोग तो हिन्दोस्तान ख़ुशबू दे

## अहमद कमाल परवाज़ी

ज़ुबाँ रसीद-सी चेहरा लगान जैसा है
वो सर से पाँव तक हिन्दोस्तान जैसा है

ख़ुदा के फ़ज़्ल[1] से सोना उगा रही है ज़मीन
मगर किसान तो अब भी किसान जैसा है

कोई जलाए तो इक पल में ख़ाक हो जाए
तेरा मकान भी मेरे मकान जैसा है

जो मुझको याद हो वो एक भी सवाल नहीं
ये वक़्त मुझपे किसी इम्तिहान जैसा है

जो इम्तिहान भी बाज़ाब्ता[2] नहीं देता
ये ज़हन आज भी उस नौजवान जैसा है

[1]कृपा [2]आत्म-नियन्त्रण

**2**

शाम से हँसने-हँसाने में उलझ जाता हूँ
ग़म को तफ़रीह[1] कराने में उलझ जाता हूँ

कह तो देता हूँ, यहाँ लोग मेरे अपने हैं
बाद में नाम बताने में उलझ जाता हूँ

देर हो जाती है, हर कूचे में रखने से चिराग़
इज़्ज़ते-शहर बचाने में उलझ जाता हूँ

अब करम हो तो मेरे क़द के बराबर या रब;
आदमी हूँ, मैं छुपाने में उलझ जाता हूँ

तेरी तारीफ़ इसी बात में गुम है शायद
तेरी तफ़सील[2] बताने में उलझ जाता हूँ

[1]आनन्द [2]विस्तार

## नसीम अजमल

कोई आहट न कोई डगर सामने
एक अक़्स-ए-सफ़र[1] सरबसर[2] सामने

आसमाँ पर लहू[3] गुल[4] बिखरता हुआ
और उभरता हुआ मेरा सर सामने

वो अकेला हज़ारों से लड़ता रहा
जंग होती रही रात भर सामने

नन्ही मुन्नी दुआओं का हासिल है क्या
लुट गया सारा रख़्त-ए-सफ़र[5] सामने

टूट कर सारे मंज़र बिखरने लगे
बेतहाशा उड़े बाम-ओ-दर[6] सामने

यक-ब-यक[7] सारा जंगल सिमटने लगा
हुए ज़ेर-ए-ज़मीं[8] सब शजर सामने

कश्तियाँ टूट कर सब किनारे लगीं
कैसे आसेब[9] का है सफ़र सामने

कोई अवतार तो इस ज़मीं पर मिले
आये कोई तो पैग़मबर सामने

फ़ासला मेरे पैरों में मंज़िल का है
वर्ना रहता कहाँ ये सफ़र समाने

उससे बिछड़े हुए एक मुद्दत हुई
फिर भी रहता है वो सरबसर सामने

टुकड़े-टुकड़े बदन, रक़्स करता हुआ
इक ज़रा-सा उधर, बाम पर, सामने

इक झलक सब्ज़ मिट्टी की आँखों में बस
शोला-शोला शफ़क़, लम्हा भर सामने

सर पे बूढ़ा गगन कब से रखा हुआ
रक़्स-ए-शम्स-ओ-क़मर[10] आँख भर सामने

कोई मुझमें मुझे क़ैद करता हुआ
फेंक कर ये लाल-ओ-गोहर[11] सामने

क्या करूँ मेरा मन था ख़लाओं[12] में गुम
वो दिखाता रहा सब हुनर सामने

सीना-सीना सफ़र, ये तिलिस्म-ए-हुनर[13]
देख 'अजमल' है रफ़्तार भर सामने

[1]सफ़र का प्रतिबिम्ब [2]नितान्त [3]रक्त [4]फूल [5]सफ़र का साज़-ओ-सामान [6]छत और दीवार [7]अचानक [8]ज़मीन के नीचे [9]प्रेत [10]चाँद-सूरज का नृत्य [11]हीरे मोती [12]शून्य [13]हुनर का जादू

**2**

इक समन्दर सा गिरा था मुझमें
फिर बहोत शोर हुआ था मुझमें

रास्ते सारे ही मानूस से थे
इक फ़क़त मैं ही नया था मुझमें

ख़ाक और ख़ून में नहलाया हुआ
कब से इक शख़्स पड़ा था मुझमें

बर्फ़ की तह में लरज़ती हुई लाश
ऐसा मंज़र भी छुपा था मुझमें

था कोई मुझमें जो था मुझसे हक़ीर[1]
और कोई मुझसे बड़ा था मुझमें

उसने क्यों छोड़ दिया ख़ाना-ए-दिल[2]
नक़्श-ए-हर-लम्स[3] हरा था मुझमें

मैं समझता था जिसे जान-ए-नफ़स
वो बहुत दूर खड़ा था मुझमें

मैं भी तस्वीर सा चस्पाँ था कहीं
सानेहा ये भी हुआ था मुझमें

रक़्स करते हुए तारों का हुजूम
ये ख़ज़ाना भी गड़ा था मुझमें

आसमाँ ख़ौफ़ से तकता था मुझे
क्या कोई उससे बड़ा था मुझमें

[1] तुच्छ [2] दिल का घर [3] हर स्पर्श का चिह्न

**3**

जुदा ख़ुद से होता हुआ सामने
ऐसा मंज़र के जैसे ख़ुदा सामने

फूल महका हुआ दिल में इम्कान[1] का
और समन्दर लहकता हुआ सामने

तन-बदन में सितारे उतरते हुए
रास्ता इक दहकता हुआ सामने

सानेहा इक नज़र से गुज़रता हुआ
एक मंज़र बिछड़ता हुआ सामने

फिर अँधेरा नज़र में चमकता हुआ
फिर उभरता हुआ सर मेरा सामने

हाँ, निकालो मेरी जान सूरज कोई
वो देखो है काली घटा सामने

मैं तो अपना ही क़द पार कर न सका
आ गया कोई मुझसे बड़ा सामने

सामने टूटी-फूटी सदा का खंडर
दूर गहराई में इक ख़ला सामने

आसमाँ सर में फैलाव लेता हुआ
इक सिमटती हुई सी दुआ सामने

सब्ज़ जितने शजर थे वो कटते रहे
क्या बताएँ कि क्या-क्या हुआ सामने

ज़िन्दगी एक मौज-ए-फ़ना का सुरूर
सर-बसर एक मौज-ए-हवा सामने

ये वही शख़्स है ! क्या वही शख़्स है ?
वो जो आया था हँसता हुआ सामने

हादिसा जाने क्या उसके अन्दर हुआ
आज 'अजमल' है चुप-चुप खड़ा सामने

[1] सम्भावना

## कृष्ण कुमार तूर

इश्क़ का ख़ाली बर्तन भर जाता है साईं
जिसको हो मरना आख़िर मर जाता है साईं

उसके हिज्र में जीना कुछ मुश्किल बात नहीं
लेकिन इस सौदे में सर जाता है साईं

जिसको न हो अहसास यहाँ ख़ुद के होने का
वो बन्दा जीते जी मर जाता है साईं

उसको ज़्या ताक़ीद करें लौट के आने की
उसको ज़्या रोकें वो घर जाता है साईं

दुनिया की चाहत पर कैसा इतराना भला
यहाँ जो मिलता है अज़्सर जाता है साईं

उसके सामने रखें ज़्या औरों का चेहरा
अज़्स से वो अपने ही डर जाता है साईं

तूर ये सारा जीवन इक खेल तमाशा है
ज़ाज़्म यहाँ जैसा हो भर जाता है साईं

**2**

ज़्या बोलूँ ज़्या वज़्अत[1] रखता है अपना लाहौर
तपती रेत का सहरा[2] हम हैं और दरिया लाहौर

दोनों के हैं वस्ल[3] का नुक़्ता मेरी ख़ाक ख़मीर
इक रस्ता जाता है दिल को इक रस्ता लाहौर

इक है निज़ाम पिया का मरक़द[4] इक दाता दरबार
समर[5] सुबूत हैं यज़्साँ अब ज़्या दिल्ली ज़्या लाहौर

चारों तरफ़ से ख़ुशबू ख़ज़ाना यादों ने खोल दिया
जब चूमीं उस नक़्श की मिट्टी जब देखा लाहौर

है तो कहावत ये लेकिन कितनी सच्ची सच्ची
तूर वो पैदा नहीं हुआ जिसने न देखा लाहौर

[1]सज़्मान, साख [2] मरूस्थल [3] मिलाप, मिलन [4]मज़ार, क़ब्र [5]फल, हासिल

## अहमद कमाल हाश्मी

मुहज़्बत में कोई ख़त मुज़्तसर[1] अच्छा नहीं लगता
लिफ़ाफ़े में फ़क़त तितली का पर अच्छा नहीं लगता

तुम अपने दिल के कमरे में मुझे ज़्यूँ क़ैद करते हो
मुसाफ़िर हूँ, मुसाफ़िर को तो घर अच्छा नहीं लगता

महक जिसमें न हो बाक़ी वो गुल, गुलदान में ज़्यूँ हो
न उट्ठे टीस तो ज़ाज़्मे-जिगर अच्छा नहीं लगता

मैं चढ़ कर ख़ुद दरज़्तों पर फलों को तोड़ लेता हूँ
परिन्दे जो गिरायें वो समर[2] अच्छा नहीं लगता

तुज़्हारे हिज्र[3] में मेरा अजब सा हाल होता है
इधर अच्छा नहीं लगता, उधर अच्छा नहीं लगता

दिवानों को दरे-मकतल[4] कहीं आवाज़ देता है
मुझे अब अपने शानों[5] पर ये सर अच्छा नहीं लगता

न जिसके फल मयस्सर हों न जिससे छाँव मिलती हो
मुझे ऐसा बहुत ऊँचा शजर[6] अच्छा नहीं लगता

तक़ाज़ा मसलहत का है ख़ुदा कह नाख़ुदा[7] को भी
अना ये कहती है ऐसा न कर, अच्छा नहीं लगता

[1]संक्षिप्त [2]फल [3]वियोग [4]वधस्थल का द्वार [5]काँधों [6]पेड़, दरज़्त [7]मल्लाह [8]स्वाभिमान

## ख़ुशबीर सिंह 'शाद'

समन्दर तेरी ये ख़ामोशियाँ कुछ और कहती हैं
मगर साहिल पे टूटी कश्तियाँ कुछ और कहती हैं

हमारे शहर की आँखों ने मंज़र और देख था
मगर अख़बार की ये सुर्ख़ियाँ कुछ और कहती हैं

हम अहले-शहर की ख़्वाहिश कि मिल-जुल कर रहें लेकिन
अमीरे-शहर की दिलचस्पियाँ कुछ और कहती हैं

ज़बाँ कुछ भी कहे तेरी मगर ये तेरे दामन पर,
लहू के रंग की गुलकारियाँ कुछ और कहती हैं

बहुत मसरूर हैं जश्ने-बहाराँ पर नयी कलियाँ
मगर शाख़ों से गिरती पत्तियाँ कुछ और कहती हैं

ये दिल कहता है हर इक क़ैद से आज़ाद हो जाएँ
मगर ऐ 'शाद' ज़िम्मेदारियाँ कुछ और कहती हैं

## ज़िया ज़मीर

देखी नहीं सुनी नहीं ऐसी वफ़ा कि यार बस
वादे पे मेरे शख़्स वो ऐसे जिया कि यार बस

चाहीं मोहब्बतें अगर उससे तमाम उम्र की
सन्दली हाथ, हाथ पर ऐसे रखा कि यार बस

ज़हन में यूँ ही आ गया तेरा ख़्याल एक शब
तारों से सारा आसमाँ ऐसा सजा कि यार बस

मैंने ज़रा-सी देर ही देखा था यार को अभी
जाने वो क्यों सिमट गया कहने लगा कि यार बस

बस इक नज़र की बात थी जिसने तबाह कर दिया
दिल इक था जिस पे नाज़ था ऐसा लुटा कि यार बस

होने को और भी बहुत हमसे हुए जुदा मगर
तू जो ज़रा जुदा हुआ दिल वो दुखा कि यार बस

उसने कहा सुनो 'ज़िया' सज-धज के कुछ रहा करो
मुझको न जाने क्या हुआ ऐसा सजा कि यार बस

## डॉ. नरेश

ख़िलाफ़ उसके ज़बाँ खोलो न खोलो
मगर ये ज़्या कि तुम सच भी न बोलो

बहुत बोझल हैं ये सिज़्के तुज़्हारे
मेरे शेरों को तुम फूलों में तोलो

अभी बारूद-आलूदा .फ़ज़ा है
अभी उड़ने को अपने पर न तोलो

बहुत मासूम हैं आँखें तुज़्हारी
ख़ुदारा[1] तुम मेरी आँखों से रो लो

बहुत ही ज़हर फैला है हवा में
दरीचे बन्द रहने दो न खोलो

नुक़ूश[2] अज़दाद[3] के धुँधला रहे हैं
'नरेश' अश्क़ों से आईने को धो लो

[1]ईश्वर के लिए [2]चिह्न, आकृति [3]पूर्वजों

**2**

कहकहों को गूँजते रहने का फ़न आ जाएगा
जब हमारी गुफ़्तगू[1] में अपनापन आ जाएगा

हिज्र[2] की तारीक[3] शब में उजलापन आ जाएगा
जब तसव्वुर[4] में तिरा गोरा बदन आ जाएगा

बस मिलाकर हाथ अपनी उँगलियाँ गिन लीजिए
आपको भी शहर में रहने का फ़न आ जाएगा

बर्क़ से रिश्ता बढ़ाने में हो कुछ भी मस्लहत[6]
इसकी ज़द[7] में एक दिन सारा चमन आ जाएगा

दूरि-ए-मंज़िल[8] 'नरेश' अपना मुक़द्दर तो न थी
ज़्या ख़बर थी रहबरी[9] को राहज़न[10] आ जाएगा

[1]बातचीत [2]वियोग [3]अँधेरी रात [4]कल्पना [5]बिजली [6]लाभ-हानि का विचार [7]मार का क्षेत्र [8]गन्तव्य से दूरी [9]मार्गदर्शन [10]डाकू

## गुलरेज़ अली ख़ान

हुए जाते हो ज्यूँ हैरान बाँधा जा नहीं सकता
मैं इक तूफ़ान हूँ तूफ़ान बाँधा जा नहीं सकता

मैं अपने साथ अपने देश को परदेस ले जाता
मगर गठरी में हिन्दुस्तान बाँधा जा नहीं सकता

चिराग़ों का धुआँ जालों की कितनी रस्सियाँ बुन ले
कभी पुरनूर रौशनदान बाँधा जा नहीं सकता

जो अहले मुल्क के दिल में बसा है ख़ौफ़ की सूरत
तआज्जुब है के वो हैवान बाँधा जा नहीं सकता

मैं आवारा हवा का एक झोंका हूँ न ठहरूँगा
मुझे ज़ुल्फ़ों से मेरी जान बाँधा जा नहीं सकता

बहुत हस्सास[1] है 'गुलरेज़' फ़िक्रो फ़न की ये मंज़िल
ग़ज़ल में फूल को गुलदान बाँधा जा नहीं सकता

[1]महसूस करनेवाला

**2**

भले ही टाट का हो एक पर्दा डाल देती है
बुरी नज़रों पे ग़ुर्बत जैसे ताला डाल देती है

चलन नथिया पहनने का किसी बाज़ार में होगा
शराफ़त नाक छिदवाती है धागा डाल देती है

हज़ारों उँगलियाँ कट जाती हैं राहे मोहज़्बत में
कभी जब आज़माइश में ज़ुलैखा डाल देती है

ज़ुबाने खुल नहीं पातीं अदालत में गवाहों की
अमीरे-शहर की बेटी जो टुकड़ा डाल देती है

हवस की राह में ऐसी कबूतरबाज़ है दुनिया
परिन्दा अड्डे पे आया तो फंदा डाल देती है

जो अपनी माँ से कहती है मुझे इक भाई ले आ दो
वो लड़की ताक़ पे अपना खिलौना डाल देती है

जिसे बच्चों का अपने पेट भरना है मियाँ 'गुलरेज़'
वो औरत दाल में पानी ज़्यादा डाल देती है

## शज़्मी शज़्स वारसी

अन्देशे आँधियों के इन्हीं मंज़रों में देख
तिनके छुपा रहे हैं ये पंछी परों में देख

यों तैश में हवाओं के आँचल से मत उलझ
किसने लगाई आग यहाँ इन घरों में देख

ऐनक उठा के रख दे तू इतिहास की कहीं
क़िस्से जो अनकहे हैं वही मक़बरों में देख

किसको मिली सज़ा यहाँ सच बोलने की फिर
किसके लहू के दाग़ हैं ये पत्थरों में देख

वो बेलिबास जिस्म तू देखे हैं जिनके ज़्वाब
लिपटे हुए उन्हें कभी इन चादरों में देख

मज़लूम की ज़ुबान को अल्फ़ाज दे कभी
फिर उसके बाद ख़ुद को भी तू कठघरों में देख

ऐ 'शज़्स' इन रगों में भला ढूँढ़ता है ज़्या
क़तरे मेरे लहू के ये इन तज़्सरों में देख

## सदा अज़्बालवी

कुछ भी तो नहीं साथ उठाने के लिए है
हर चीज़ यहीं छोड़ के जाने के लिए है

लब पे जो तबस्सुम है दिखाने के लिए है
ग़म दिल को ज़माने से छुपाने के लिए है

गिन गिन के सितारे ही कहीं बीत न जाए
ये शब जो सनम साथ बिताने के लिए है

पीने का किसे शौक़ है ऐ जाने-तमन्ना
ये शुग़ल तो बस तुझको भुलाने के लिए है

छलके तिरी आँखों के प्यालों में जो पैहम
वो मय मिरी जाँ किसको पिलाने के लिए है

मंसूब उसी से है, मुख़ातिब भी उसी से
हर शे'र मिरा चाहे ज़माने के लिए है

है कौन बता कौन 'सदा' जिसके लिए तू
तैय्यार दिलो-जान लुटाने के लिए है

## आसिफ़ रोहतासवी

नहीं रहा अब प्यार तुज़्हारे गोकुल में
जिनगी जार-बेजार तुज़्हारे गोकुल में

कैसे जमुना जाय नहाने को राधा
क़दम-क़दम बटमार तुज़्हारे गोकुल में

अब बसुदेव-नन्द में स्वारथ-लिप्सा है
रिश्ते हैं व्यापार तुज़्हारे गोकुल में

जो अँगना में तुलसी, घर में लछिमी थी
बेटी है वो भार तुज़्हारे गोकुल में

जातिवाद-अलगाववाद हैं हरे-भरे
सूख गया कचनार तुज़्हारे गोकुल में

कहाँ बाँसुरी लोग लिये घूमा करते
सरेआम हथियार तुज़्हारे गोकुल में

भींगी पलकें लिये अगोरे है राधा
वही कदम की डार तुज़्हारे गोकुल में

## ज़मीर दरवेश

दवा न काम करे तो नज़र उतारती है
वो माँ है माँ, वो कहाँ इतनी जल्द हारती है

मज़ा तो जब है कि किरदार हो बुलन्द इतना
कि देखते ही कहें सब यह कोई भारती है

है तेगे दुश्मने जाँ[1] को भी आबरू का ज़्याल
उतारती नहीं दस्तार सर उतारती है

ग़ज़ल ख़ुलूसो मुहज़्बत से हो अगर लबरेज़
इबादतों की तरह आख़िरत सँवारती है

कोई हवेली करे अनसुनी तो याद आये
वो ड्योढ़ी जो मेरी आरती उतारती है

हो नाव में तो यह वसवसा[2] फ़ज़ूल कि नाव
उतारती है भँवर में कि पार उतारती है

किसी पे बाप की मानिन्द करती है सज़्ती
किसी को ज़िन्दगी माँ की तरह दुलारती है

अब इतने हो गये हस्सास[3] हम कि ए 'दरवेश'
ज़रा-सी ठेस हर एक दर्द को उभारती है

[1]जान के दुश्मन की तलवार [2]दुविधा [3]संवेदनशील

## शाहिद कबीर

ज़मीं पे चल न सका आसमान से भी गया
कि पर कटा के परिन्दा उड़ान से भी गया

किसी के हाथ से निकला हुआ वो तीर हूँ जो
हदफ़[1] को छू न सका और कमान से भी गया

भुला दिया तो भुलाने की इन्तहा कर दी
वो शख़्स अब मेरे वहमो-गुमान से भी गया

तबाह कर गयी पक्के मकान की ख़्वाहिश
मैं अपने गाँव के कच्चे मकान से भी गया

पराई आग में कूदा तो क्या मिला 'शाहिद'
उसे बचा न सका, अपनी जान से भी गया

[1] लक्ष्य

## ताजदार ताज

कमरे में रात मेरे सिवा, कोई भी न था
रोने की आ रही थी सदा, कोई भी न था

लड़ता रहा मैं सारे ज़माने से उम्र भर
दुश्मन थी सिर्फ़ मेरी अना, कोई भी न था

ऐसे भी मोड़ आये हैं जब मेरा हमसफ़र
ख़ुशबू, ग़ुबार, आग, हवा कोई भी न था

वो मेह्रबाँ हुआ तो सभी मेह्रबाँ हुए
जब तक वो मेरे साथ न था, कोई भी न था

किस-किस के घर गया हूँ मैं अपनी तलाश में
देता मुझे जो मेरा पता, कोई भी न था

कैसे अजीब लोग मेरे क़ाफ़िले में थे
तन्हा सभी थे और जुदा कोई भी न था

सारी बुराई सिर्फ़ हमारी नज़र में थी
वरना ऐ 'ताजदार' बुरा कोई भी न था

## सागर आज़मी

इख़लाक़[1] न तहज़ीब, न किरदार[2] लिये जा
मैदान में जाना है तो तलवार लिये जा

घबराएगा तनहाई के लम्हों में तेरा दिल
टूटी हुई पाजेब की झंकार लिये जा

क़ातिल को न मिल पाएगा फिर कोई बहाना
जब सर ही कटाना है तो तलवार लिये जा

अब मिस्र के बाज़ार में गाहक न मिलेंगे
यूसुफ़ के लिए कोई भी ख़रीदार लिये जा

जो कहते हैं इस शहर में क़ातिल नहीं कोई
तू उनके लिए सुब्ह का अख़बार लिये जा

अब मुझसे अमानत ये सँभाली नहीं जाती
ऐ वक़्त बुज़ुर्गों की ये दस्तार[3] लिये जा

उसको अगर अपना ही बनाना है तो 'सागर'
मुझसे मेरा लहजा, मेरी गुफ़्तार[4] लिये जा

[1]संस्कार [2]चरित्र [3]पगड़ी [4]बोली

## इन्द्रमोहन 'कैफ़'

मैंने अपनी ही नज़रों से अपने आपको देखा है
बस इतनी-सी बात पे मेरा सबसे झगड़ा रहता है

मैं उथले जल की मछली हूँ, तन भीगा तो डूब गयी
और अना[1] इक ऐसा दरिया, बिन पानी के गहरा है

मैं शहरों-शहरों फिरता हूँ एक अनोखा दर्द लिये
मेरे रिज़्क़[2] का दाना-दाना धरती-धरती बिखरा है

ग़म के रूप अनेक हैं, उनको समझो ज़्या, समझाओ ज़्या
रुक जाये तो सन्नाटा है, बह जाये तो दरिया है

'कैफ़' ये दिल इक ऐसा घर है जिसके दो दरवाज़े हैं
इक दरवाज़ा शहरे-हवस[3] का, इक जंगल में खुलता है

[1]अहम, ईगो [2]रोजी-रोटी [3]वासनाएँ

## विजय कलीम

ये फ़न अता किया है तो इतना कमाल दे
वो शेर कह सकूँ कि ज़माना मिसाल दे

किस इज़्तहाँ में दोस्तो, कैसा सवाल दे
ये ज़िन्दगी है कब किसे उलझन में डाल दे

इस मोड़ से जुदा है तेरे-मेरे रास्ते
तू अब मेरा ख़याल भी दिल से निकाल दे

मैंने सुकूने-दिल ही तो माँगा था ज़िन्दगी
ये तो नहीं कहा मुझे जाहो-जलाल[1] दे

तेरी गली में हमसे भी साइल[2] न आएँगे
तू इक निगाहे-नाज़ ही कासे में[3] डाल दे

बाक़ी ही ज़्या रहेगा मेरी दास्तान में
कोई अगर ये हिस्स-ए-माज़ी[4] निकाल दे

दुनिया का है मुआमला, दुनिया की बात कर
मेरी मिसाल दे न तू अपनी मिसाल दे

आँसू भी अब तो आँख में आते नहीं 'कलीम'
इतना हँसा कि आँख से आँसू निकाल दे

[1]शानौ-शौक़त [2]भिखारी [3]भिक्षापात्र [4]अतीत का हिस्सा

## मदन मोहन दानिश

वो इक एहसान करना चाहता है
मेरा नुक़सान करना चाहता है

हवेली बेख़बर है इससे शायद
जो अब दरवान करना चाहता है

वो सारे काम जैसे उम्र ज़र के
इसी दौरान करना चाहता है

नतीजों से अभी वाक़िफ़ नहीं है
बुलन्द ईमान करना चाहता है

यक़ीनन दूर तक सोचा है उसने
वो मुझको दान करना चाहता है

कभी करता है आँगन लबकुशाई[1]
कभी दालान करना चाहता है

नहीं खोलेगा अपनी बन्द मुट्ठी
मुझे हैरान करना चाहता है

ख़ुदा का काम भी, हैरत है 'दानिश'
कि अब इंसान करना चाहता है

[1]बातचीत

## अंजुम बाराबँकवी

मक़तले-रिज़्क[1] में इस तरह दीवाने आये
जैसे सहरा[2] में कोई ख़ाक उड़ाने आये

जबकि मालूम है दरबान है सूरज फिर भी
मोम के लोग मेरे घर को जलाने आये

जब हवाएँ हों मुख़ालिफ़[3] तो कहाँ मुमकिन है
कोई जंगल में लगी आग बुझाने आये

आप से माँ ने कभी दूध की क़ीमत माँगी
आप किस ज़ोम[4] में ये क़र्ज़ चुकाने आये

मैं तो मंसूर[5] का हामी भी नहीं हूँ 'अंजुम'
लोग फिर क्यों मुझे सूली पे चढ़ाने आये

[1]आजीविका का वधस्थल [2]मरुस्थल [3]विरोधी [4]घमंड [5]एक वली जिन्होंने 'मैं ख़ुदा हूँ' (अनलहक) कहा था जिस पर उनकी गर्दन उड़ा दी गयी।

## रहबर जौनपुरी

सूरज जैसे जिस्म चमकते, किरनों जैसे, बाल लिये
जाने कितनी अबलाओं ने पाँव में घुँघरू डाल लिये

दुनिया के जितने भी ग़म हैं सब मुझसे यूँ उलझे हैं
जैसे बच्चे खेल रहे हों सड़कों पर फुटबाल लिये

कल तक ठंडी छाँव लुटाई जिस पीपल ने लोगों पर
आज खड़ा है रस्ते में वो अपनी सूखी डाल लिये

शायद इक दिन ढह जाएँगी दीवारें तहज़ीबों[1] की
वक़्त का पहिया घूम रहा है वहशत का भूचाल लिये

हिर्सो-हवस[2] की इस, दुनिया में हमदर्दो-हमराज़ कहाँ
'रहबर' दर-दर क्यूँ फिरते हो अपना ख़स्ता हाल लिये

[1]सभ्यताओं [2]लोभ-लालच

## क़दीर क़ुरैशी 'दर्द'

ख़ुद-फ़रेबी का हुनर दिल को सिखाते ज्यूँ हो,
रेत पर चाँद की तस्वीर बनाते ज्यूँ हो

तुम तो कहते हो तुझें प्यार नहीं फूलों से
मेज़ पर अपनी ये गुलदान सजाते ज्यूँ हो

कम नहीं आज के इस दौर में जीने के अज़ाब[1]
हमको दोज़ख़ के अज़ाबों से डराते ज्यूँ हो

ख़ुशलिबासी भी बुरी चीज़ नहीं है, लेकिन
ख़ुशमिजाज़ी को लिबासों में छुपाते ज्यूँ हो

दिल की टहनी पे ये गाता है तो ज्या लेता है
'दर्द' ख़ुशरंग परिन्दा है, उड़ाते ज्यूँ हो

[1]यातनाएँ

## मोईनुद्दीन 'शाहीन'

कोठी बना ली आपने किरदार बेचकर
कैसे मैं घर बनाऊँगा अख़बार बेचकर

इससे बड़ा सुबूत नहीं है ज़वाल का
घी पी रहा हूँ दोस्तो, दस्तार बेचकर

मज़बूरियाँ तो देखिए, मज़दूर बाप की
लाया है वो खिलौना भी औज़ार बेचकर

अल्लाह, मेरी लाज फ़क़त तेरे हाथ है
तालीम दी है बच्चों को घर-बार बेचकर

ख़ामोशियाँ ख़रीद के लाये हैं आज हम
'शाहीन' अपनी क़ुव्वते-इज़्हार बेचकर

## मूनिस बरेलवी

पथराई हुई आँखें नाख़ून भी हैं नीले-से
ये शख़्स भी लगता है अपने ही क़बीले से

भीगा हुआ इक आँचल लहराया था आँखों से
जब गाँव को देखा था, उस आख़िरी टीले से

अन्धों ने बहारों को रंगों से नहीं जाना,
पहचाना है फूलों को ख़ुशबू के वसीले से

है याद मुझे अब तक मंज़र वो बिछड़ने का
उन काँपते होठों पर कुछ हर्फ़ थे गीले-से

मत याद करो 'मूनिस' वो अहदे-शबाब अपना
भरपूर जवाँ ग़ज़लें, वो गीत नशीले-से

## सबा बिलगिरामी

मैं रहा हूँ फिक्र में मुब्तिला भला कब मिटी मेरी बेकली
कभी इस नगर, कभी उस नगर कभी इस गली कभी उस गली

तू रहा सजूद में बेख़बर, मैं फिरा तलाश में दर बदर
रहेइश्क़ में तो है बेबसी न तेरी चली न मेरी चली

वो जो आग मेरे जिगर में है वही आग शम्म की लौ में है
मगर उसमें मुझमें है फ़र्क़ ये मैं सदा जला वो ज़रा जली

मुझे भूल जा मिरे हमनशीं जो गुज़र गयी सो गुज़र गयी
है अज़ल से रंग-ए-जहाँ यही वही दिन ढला वही शब ढली

मैं 'सबा' किसी से कहूँ तो क्या है अजीब दिल का मुआमला
है उसूल-ए-सहन-ए-चमन यहाँ न गुल हँसे न खिले कली

**भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन**
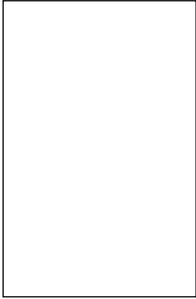
समकालीन उर्दू शायरी के शीर्षस्थ शायर
**शहरयार**
के विपुल रचना-संसार से चुनिन्दा ग़ज़लों व नज़्मों का अनूठा संग्रह

# शहरयार सुनो...

चयनकर्ता : **गुलज़ार**

हिन्दुस्तानी अदब में शहरयार वो नाम है जिसने छठे दशक की शुरुआत में शायरी के साथ उर्दू अदब की दुनिया में अपना सफ़र शुरू किया। शहरयार मानवीय मूल्यों को सबसे ऊपर मानते हैं। वे दो टूक लहज़े में कहते हैं कि हिन्दी और उर्दू अदब के मक़सद अलग नहीं हो सकते।
शहरयार को अपनी सज़्यता, इतिहास, भाषा और धर्म से बेहद लगाव है, लेकिन इनका धर्म संस्कृति को जानने का एक रास्ता है और संस्कृति व समाज की आत्मा को पहचाने बिना शायरी नहीं की जा सकती।
शहरयार की शायरी में एक अन्दरूनी सन्नाटा है। फ़ैज़ की साफ़बयानी और फ़िराक़ की गहरी तनक़ीदी और तहज़ीबी कोशिश को उनसे कतरा करके भी शहरयार ने उन्हीं की तरह, लेकिन उनसे अलग वो इशारे पैदा किये हैं जो कविता के इशारे होते हुए भी इनसान के बेचैन इशारे बन जाते हैं— 'ग़मे जाना' के साथ-साथ 'ग़मे दौराँ' के इशारे। शहरयार की ख़ूबी यही है कि उनकी रचना का चेहरा निहायत व्यज़्तिगत है, लेकिन उसमें झाँकिए तो अपना और फिर धीरे-धीरे वक़्त का चेहरा झाँकने लगता है। शहरयार ने काल्पनिक सृजन संसार की बजाय दुनिया की असलियत को ग़ज़लों के लिए चुना है। उनकी शायरी में आज के शहरी जीवन और औद्योगिक विकास के बीच गिरते इनसानी मूल्यों को लेकर बेहद चिन्ता है।
शहरयार ग़ज़ल और नज़्म के आज बेहद लोकप्रिय और बुलन्दपाया शायर हैं। उन्होंने तरह-तरह और नये से नये अन्दाज़ में अपनी बात कही है। शायर की इसी छटपटाहट के तहत उनकी शायरी ने जो करवटें बदली हैं, उसमें पुरानी सलवटें नहीं हैं।

मूल्य : 220 रुपये

## सरशार सिद्दीक़ी

मुझे गर इश्क़ का अरमान होता,
तो घर में मीर का दीवान होता

न होते फ़ासलों के शहर में हम,
तो फिर मिलना बहुत आसान होता

अगर सब लोग होते मुझसे छोटे
तो मैं सबसे बड़ा इंसान होता

हुए लौहो-क़लम[1] ईजाद[2], वर्ना
अभी तक आदमी हैवान होता

जिसे दिल में छुपाये फिर रहे हैं
अगर लब पर वही तूफ़ान होता!

न अपनी ज़ात से बाहर निकलते
न अपनी ज़ात का इरफ़ान[3] होता

तेरी महफ़िल में आकर सोचता हूँ
न आता तो बहुत नुकसान होता

ख़ुदा पर, आदमी पर या सनम पर
किसी पर तो तेरा ईमान होता

अगर मैं भाग जाता ज़िन्दगी से
तो गौतम की तरह निर्वान होता

मैं अपने सामने आईना रखता
फिर अपने अज़्स पर क़ुर्बान होता

जो मैं सच्ची ग़ज़ल लिखता तो 'सरशार'
वही हर शेर का उन्वान[4] होता

[1]काग़ज़-क़लम [2] आविष्कृत [3]ज्ञान [4]शीर्षक

# अँधेरे ख़्वाब

## शकील ग्वालियरी

बरसते पानियों में धुल गया था
फिर उसके बाद मंज़र खुल गया था

हवा के साथ कश्ती उड़ रही थी,
न जाने बादबाँ कब खुल गया था

फ़ना के घाट तक पहुँचा नहीं मैं,
वहाँ तक रास्ता बिल्कुल गया था

बदन में अब हुआ है हश्र बरपा,
लहू में ज़हर कब का घुल गया था

कहाँ से आ गया था वज्न उसमें
वो मेरी दुश्मनी पर तुल गया था

वहाँ के लोग ख़ुद आये थे मुझ तक
न मैं कन्धार, ना काबुल गया था

मुसाफ़िर सब खड़े थे इस किनारे
मगर उस पार फिर भी पुल गया था

**2**

न बाजुओं पे न कश्ती पे ऐतबार करो,
ख़फ़ा है दरिया तो कच्चे घड़े से पार करो

हुआ है बन्द भलाई का एक दरवाज़ा
खुलेंगे दूसरे दरवाज़े इन्तज़ार करो,

जो देखता है रक़ाबत[1] से देखता है मुझे
तुम अपने चाहने वालों में मत शुमार करो

अजीब बात है, उनसे जो मेरे अपने हैं
मुझे ये कहना पड़ा मेरा ऐतबार करो

तुम्हारे साये में उतरेगा काफ़िला भी कोई,
'शकील' ख़ुद को अज़ी और सायादार करो

[1] दुश्मनी

## इब्राहीम अश्क

फिर मुझे दिल की सदा लिखना है
इक नया हर्फ़े-वफ़ा लिखना है

आज तो मेरी ख़ुदा सुन लेगा
अपने दुश्मन को दुआ लिखना है

दोस्ती उससे हुई है ऐसी
ज़हर वो दे तो दवा लिखना है

कोई लम्हा तो मिले फ़ुर्सत का
सारे आलम का मज़ा लिखना है

मुद्दतों बाद ख़ुदा याद आया
हाले-दिल उसको मेरा लिखना है

दिल का पंछी कहीं रुकता ही नहीं
चर्ख़ पर रंगे-हिना लिखना है

ख़र्च करना है लहू काग़ज़ पर
हासिले-ज़ीस्त सिवा लिखना है

बस ये तहरीर ही रौशन होगी
अश्क अब ख़ुद को बुरा लिखना है

2

दुनिया के हादिसात में सौ रंग भर गये
अपनी हदों से जब भी कभी हम गुज़र गये

बेसाख़्ता हमें जो कभी आ गयी हँसी
महफ़िल में कितने लोगों के चेहरे उतर गये

तुम ज़्या चले कि मौज में चलता रहा जहाँ
तुम ज़्या ठहर गये कि ज़माने ठहर गये

आँखों में उसकी देख ली सारी ही कायनात
दफ़्तर से शाम होते ही जब अपने घर गये

उसने किया जो सच का सरे-आम सामना
सिमटी हुई हयात के पन्ने बिखर गये

हमने क़लम उठा के लिखी जब कोई किताब
जितने भी जंगबाज़ थे जीते-जी मर गये

उनका ही नाम रहता है इतिहास में अमर
राहे-वफ़ा में ले के जो सूली पे सर गये

दीवाने ऐसे आये हैं हर एक दौर में
अपनी अदा से कोई नया काम कर गये

ये 'अश्क' दिल की आग ने कुन्दन बना दिया
यूँ इश्क़ ने जलाया कि हम तो सँवर गये

## कृष्ण कुमार 'नाज़'

शाम का वक़्त है शाख़ों को हिलाता ज्यों है
तू थके-माँदे परिन्दों को उड़ाता ज्यों है

वक़्त को कौन भला रोक सका है पगले
सूइयाँ घड़ियों की तू पीछे घुमाता ज्यों है

स्वाद कैसा है पसीने का, ये मज़दूर से पूछ
छाँव में बैठ के अन्दाज़ा लगाता ज्यों है

मुझको सीने से लगाने में है तौहीन अगर
दोस्ती के लिए फिर हाथ बढ़ाता ज्यों है

प्यार के रूप हैं सब, त्याग-तपस्या-पूजा
इनमें अन्तर का कोई प्रश्न उठाता ज्यों है

मुस्कराना है मेरे होठों की आदत में शुमार
इसका मतलब मेरे सुख-दुख से लगाता ज्यों है

भूल मत तेरी भी औलाद बड़ी होगी कभी
तू बुज़ुर्गों को खरी-खोटी सुनाता ज्यों है

देखना चैन से सोना न कभी होगा नसीब
ख़्वाब की तू कोई तस्वीर बनाता ज्यों है

जिसने तुझको कभी अपना नहीं समझा ऐ 'नाज़'
हर घड़ी उसके लिए अश्क बहाता ज्यों है

**2**

मैंने कब तुझसे ये चाहा है कि शोहरत दे दे
हो मुनासिब तो मुझे अपनों में इज़्ज़त दे दे

मेरे दिल में भी तमन्ना है उसूलों पे चलूँ
गर मेरी भूख मुझे उसकी इजाज़त दे दे

हक़ पसीने का अगर सबको दिलाना चाहे
सिर्फ़ इक दिन के लिए मुझको हुक़ूमत दे दे

वो मुहब्बत जो कभी दिल को न दे पाए सुकून
उस मुहब्बत से तो बेहतर है कि नफ़रत दे दे

या तो मुश्किल मेरी आसान बना दे या फिर
मुश्किलों से मुझे टकराने की हिम्मत दे दे

## अनवर जलालपुरी

न बामो-दर न कोई सायबान छोड़ गये
मेरे बुज़ुर्ग खुला आसमान छोड़ गये

तमाम शहर के बच्चे यतीम भी तो नहीं
खिलौने वाले जो अपनी दुकान छोड़ गये

वो जिसको पढ़ता नहीं कोई, बोलते सब हैं
जनाबे-मीर भी कैसी ज़बान छोड़ गये

सजा के फ़ुर्सतें अपनी पुराने काग़ज़ पर
अजीब लोग थे, इक दास्तान छोड़ गये

हमें गिला भी है 'अनवर' तो सिर्फ़ उनसे है
जो लोग ख़ौफ़ से हिन्दोस्तान छोड़ गये

## अहमद वसी

दिन, बुझी रात जैसा लगता है
अपनी, अवक़ात जैसा लगता है

करता रहता है यूँ तबाह मुझे
ग़म, फ़सादात जैसा लगता है

हर लुटा दिल कभी था दिल्ली सा
अब तो गुजरात जैसा लगता है

मौत सड़कों पे रक़्स करती है
ज़ुल्म बारात जैसा लगता है

सिसकियाँ भर रहा है सन्नाटा
माँ के जज़बात जैसा लगता है

ऐसे हालात हैं कि सबका हाल
मेरे हालाता जैसा लगता है

अपने बिछड़ों की याद का चेहरा
इक मुलाक़ात जैसा लगता है

मेरे हाथों में हाथ ख़ुशबू का
आप के हाथ जैसा लगता है

**2**

न हो शोहरत तो गुमनामी का भी ख़तरा नहीं होता
बहुत मशहूर होना भी बहुत अच्छा नहीं होता

फ़सादों, हादसों, जंगों में ही हम एक होते हैं
कोई आफ़त न आये, तो कोई अपना नहीं होता

समझने लगता है दुनिया को बच्चा, पैदा होते ही
अब इस दुनिया में बच्चा बन के वो पैदा नहीं होता

बरसता टूट कर दीवानावार इस प्यासी बस्ती पर
किसी जंगल पे ये बादल अगर बरसा नहीं होता

अँधेरा घर में, बाहर रोशनी ऐसा भी होता है
किसी का दिल तो होता है बुरा, चेहरा नहीं होता

मिला लेता है मैला हाथ मिलकर कोई भी लेकिन
मिलाता है नज़र वो, जिसका दिल मैला नहीं होता

कभी 'अहमद वसी' शेरों में रंगे-मीर आ जाए
हम ऐसा चाहते तो हैं मगर ऐसा नहीं होता

## फ़ारूक़ शफ़क़

गुज़र रही है दिलो जाँ पे वारदात ऐसी
कि ज़िन्दगी हुई काग़ज़ क़लम दवात ऐसी

हर एक लम्हा सरों पर है सानहा[1] ऐसा
हर एक साँस गुज़रती है हादसात ऐसी

नफ़स[2] नफ़स में निदाये नियाज़ आये हैं
करे है दिल पे असर उसकी बात ऐसी

वह दिन जो था तेरे महताब से बदन ऐसा
वह रात जो थी तेरे गेसुओं की रात ऐसी

क़रीब आये तो अपना ही सामना था हमें
हमारे बीच में हायल हुई थी ज़ात ऐसी

है कोई अक़्स मेरे ज़हन में ख़ुदा ऐसा
है कोई शै मेरे सीने में कायनात[3] ऐसी

तेरे बग़ैर गुज़ारी है जिस तरह हम ने
ख़ुदा न दे किसी दुश्मन को भी हयात ऐसी।

## शकूर अनवर

बहुत गहरे हैं उन आँखों के मंज़र
कहीं देखे नहीं ऐसे समन्दर

चराग़ों से चराग़ों को जलाकर
बना लो रोशनी का एक लश्कर

कहाँ जाएँगे हम अपनों से कटकर
रहेंगी मछलियाँ दरिया के अन्दर

ज़रा-सी ज़िन्दगी में सुख समेटो
मिला है ओस को फूलों का बिस्तर

बहा ले जाएगा सैलाब 'अनवर'
न रख़्खो आप इतना घर सजाकर

2

गाती हुई कोयल न कोई मोर मिलेगा
शहरों में मशीनों का फ़क़त शोर मिलेगा

आसान नहीं है तेरा उस पार पहुँचना
मझधार में तूफ़ाँ का बड़ा ज़ोर मिलेगा

ऐसे ही निगाहों को झुकाया नहीं करते
जब दिल को टटोलोगे तो इक चोर मिलेगा

'ग़ालिब' हो कि 'तुलसी' हो सभी हुस्न के आगे
जिसको भी यहाँ देखिये कमज़ोर मिलेगा

बैठे से तो दुख-दर्द कभी ख़त्म न होंगे
हिज़्मत जो रखोगे तो कहीं छोर मिलेगा

तपते हुए सहराओं में ज़्या पाओगे 'अनवर'
पानी तो मेरे यार कहीं और मिलेगा

## रहमान मुसव्विर

चमक रही हैं आँखें जैसे जुगनू बैठा है
प्यार की धूनी दिल में रमाये साधू बैठा है

उसके हुस्न की ताबानी में डूब गयी हर आँख
हर दिल में उसके लहजे का जादू बैठा है

जिस्मो-जाँ की जुम्बिश जाने कब की ख़त्म हुई
मेरी हथेली पर बरसों से बिच्छू बैठा है

मेरी अर्ज़ी बाबू की टेबल तक कैसे जाए
पेपरवेट नहीं, फ़ाइल पर बाबू बैठा है

फ़र्क़ नहीं कुछ किसी हाथ में हो सत्ता का डमरू
देश तो है इक भालू बाँध के घुँघरू बैठा है

बूढ़े बाबा का चेहरा है क़िस्सा और कहानी
एक पोटली में वो बाँधे ख़ुशबू बैठा है

सोच समझकर बरत रहा हूँ मैं अलफ़ाज़ 'मुसव्विर'
जब से मेरा बेटा मेरे बाज़ू बैठा है

2

धान छत पर हों खुले, रात में पानी पड़ जाए
यानी चक्कर में फ़क़ीरी के जवानी पड़ जाए

ज़्या ज़माना हमें ईसा की तरह मानेगा
अपनी ही लाश अगर हम को उठानी पड़ जाए

चुप जो रहते हैं तो इज़्ज़त पे ज़रर लगता है
बोल कर भी कहीं जिल्लत न उठानी पड़ जाए

एक मुद्दत हुई हम भूल गये थे जिसको
शहर में उसके अगर रात बितानी पड़ जाए

है ये मुर्दों का शहर, जेब में माचिस रखिए
ज़्या ख़बर है कि कहाँ आग लगानी पड़ जाए

चाह दौलत की न ले जाए कहीं दूर उसे
और खटाई में मुहब्बत की कहानी पड़ जाए

## सरदार आसिफ़

चिराग़, धूप का लश्कर बुझाने लगता है
बहुत उजाला, उजाले को खाने लगता है

मैं कोई झील नहीं हूँ बता दो सूरज को
बहुत दिनों में समन्दर ठिकाने लगता है

ये कौन है मुझे कम करके तोलने वाला
मैं आदमी हूँ फ़रिश्ता बताने लगता है

उसी गली में हवा का दबाव बढ़ता है
जहाँ वो नाम की तख़्ती लगाने लगता है

उजाला माँग के लाता है पहले दिन ही चाँद
कि पैदा होते ही बच्चा कमाने लगता है

है उसकी शर्त कि उँगली पकड़ के चलना है
फिर उसके बाद वो रस्ता बताने लगता है

मेरे उसूलों को उलझन में डाल देता है
मेरा ही बेटा मेरा दिल दुखाने लगता है

**2**

कैसे डरती थी चिराग़ों से हवा, भूल गये
आँधियाँ कटती थीं जिससे वो दुआ भूल गये

उसकी फ़रमाइशें, बच्चों की ज़िदें, अपनी शराब
ये तो सब याद रहा, माँ की दवा भूल गये

उनसे कह दो कि मेरी झील में फिर पानी है
वो परिन्दे जो मेरी आब-ओ-हवा भूल गये

कैसे पागल हो उसी जुर्म को दोहराते हो
ऐसा लगता है कि तुम पिछली सज़ा भूल गये

सच था वो सब जो नजूमी ने बताया था हमें
हम ही पागल थे कि क़िस्मत का लिखा भूल गये

सीख लो हम से परेशानी मुहैय्या करना
कश्तियाँ साथ में रख लीं तो हवा भूल गये

**2**

दरख़्तों को गिराने में, शरारत साफ़ थी उसकी
सड़क से अब नज़र आती इमारत, साफ़ थी, उसकी

बड़े आसान लफ़्ज़ों में वो अपनी बात कहता था
ज़रा गहराई में जाते, इबारत साफ़ थी उसकी

उसे ज़्या इल्म[1] था, इक रेत के टीले पे बैठा है
हवा ने रुख़ ज़रा बदला तो शुहरत साफ़ थी उसकी

ख़राशें उसके लहजे में, तकब्बुर[2] उसके चेहरे पर
न सूरत साफ़ थी उसकी, न सीरत साफ़ थी उसकी,

नयी पोशाक में कुछ दाग़ भी दिखलाई देते हैं
फटे कपड़ों में जब रहता था, ग़ैरत साफ़ थी उसकी

[1]ज्ञान [2]अभिमान

## अता उर्रहमान 'तारिक़'

हीर सियालाँ में रहती थी, राँझा पिंड हज़ारे में
यह दुनिया ज़्या जाने गोरी, तेरे मेरे बारे में

सूँघ लिया पेट्रोल तो अपने गाँव की बातें भूल गया
ज़्या अब भी फैली रहती है उपलों की बू, सारे में

वह कुछ देर को हाँफते मंज़र का लैमूनी हो जाना
वह तेरा छम से मिल जाना रोज़ किसी गलियारे में

ख़्वाब कहीं बाँधे जाते हैं सूत के कच्चे धागों से
कौन आयेगा सोच रहा है नीम, खड़ा अँगनारे में

महुवा के मोती गिरते हैं छत पर आधी रात गये
कब आती है नींद भला जब आस लगी हो तारे में

तुम 'तारिक़' से मिल कर देखो शह्र में यूँ तो रहता है
जंगल, जंगल गीत हुमकते रहते हैं बनजारे में

**2**

लगते-लगते कोई अच्छा, लगने लगता है
धीरे धीरे फिर वह अपना लगने लगता है

होते-होते पागल हो जाता है दिल इतना
उसको ग़म भी मीठा मीठा लगने लगता है

उसकी यादें जाने किन गलियों से आती है
सारा आलम महका महका लगने लगता है

जादू सा होता है कुछ पूनम की रातों में
बैठे बैठे कैसा कैसा लगने लगता है

आँखों आगे ऐसे, ऐसे मंजर आते हैं
जीवन भी पल भर को सपना लगने लगता है

## संजय मिश्रा 'शौक़'

वो लफ़्जे-ज़िन्दगानी[1] के अमानी[2] काट देता है
अकेला रह के जो अपनी जवानी काट देता है

बिछड़ते वक़्त उसका दर्द में डूबा हुआ लहजा
मिरे अहसास को बरसों पुरानी काट देता है

हवा के दोश[3] पर जलता चमकता एक ही जुगनू
अँधेरी रात की सारी कहानी काट देता है

समन्दर हो गयी होतीं किसी की याद में आँखें
तेरा रूमाल अश्कों की रवानी[4] काट देता है

अजब इन्साँ है सारी ज़िन्दगी ग़म से अलग रहकर
तअज़्ज़ुब[5] में ख़ुशी के ज़िन्दगानी काट देता है

उसी के सामने सर को झुका देती है ये दुनिया
जो लौंगें फूँककर चाक़ू से पानी काट देता है

शराफ़त की रगों का ख़ून इससे क़ब्ल[6] अरज़ाँ[7] हो
मेरा लहजा दिमाग़ों की गरानी[8] काट देता है

ख़बर शायद नहीं है संगदिल इंसान को ऐ 'शौक़'
ज़रा सी देर में पत्थर को पानी काट देता है

[1]परी-चेहरा, प्रेयसी [2]राज़ जानने वाला [3]क्रम [4]उल्टा पल्टा [5]पेड़ [6]पहले [7]खौलना [8]नसें

**2**

सदियों से धोका देती है सहरा[1] की उजियाली रेत
सागर सागर छान चुका हूँ हाथ आयी मटियाली रेत

मैंने पूछा इस दुनिया का हासिल मुझे बताओ भी
उसने मुट्ठी भरकर मेरे चारों ओर उछाली रेत

मेरी आँखों को सपनों की कोई भी उम्मीद नहीं
दरिया सूख चुके हैं इनमें बची हुई है ख़ाली रेत

सागर तट पर धूप सेंकने आई थी जो चंचल नार
जाने किसकी याद में उसने सीने से लिपटा ली रेत

रंग बिरंगे फूल कहीं से उगते उसके गुलशन में
माली ने जब खाद के बदले हर क्यारी में डाली रेत

कुछ दिन पहले इस सहरा[1] से जैसे सावन गुज़रा हो
सर से लेकर पाँव तलक अब ओढ़े है हरियाली रेत

जैसे मुद्दत बाद किसी का खोया बेटा मिल जाये
दीवाने को चूम रही है यूँ उड़कर मतवाली रेत

'शौक़' हमें क्या लेना-देना दुनिया चाहे जो समझे
जैसे गंगा जी का पानी वैसी है टकसाली रेत

[1] रेगिस्तान

**3**

न जाने क्यों वो दिल से जौहरे-ग़म खींच लेता है
जो कीड़े पालता है और रेशम खींच लेता है

ख़ुदा जाने कशिश कैसी है उसके रू-ए-ताबाँ में
बवक़्ते-सुब्ह वो पत्तों से शबनम खींच लेता है

फ़सादों को हवा देता है रातों को वही चेहरा
सहर के वक़्त दुनिया भर का मातम खींच लेता है

झुलसती धूप, पथरीली सड़क और पाँव में छाले
मुसाफ़िर हौसले की फ़िक्र में दम खींच लेता है

मिरी मयनोशि-ए-पैहम को तुम इल्ज़ाम मत देना
क़दम जब भी उठाता हूँ तो मौसम खींच लेता है

कोई नक़्क़ाद हम पर तब्सरा करता नहीं लेकिन
हमारे नाम पर बस एक कालम खींच लेता है

कभी मुझको मिरे किरदार से गिरने नहीं देता
मुझे गिरने से कुछ पहले ही हमदम खींच लेता है

मुझे कुछ भूलने देता नहीं अक्सर तिरा चेहरा
मिरी आँखों की अलमारी से अलबम खींच लेता है

जहाने-शौक़ में इक 'शौक़' अक्सर ये भी होता है
तबस्सुम की रिदाएँ दीद-ए-नम खींच लेता है

## आलम ख़ुर्शीद

रंग-बिरंगे ख़्वाबों के असबाब[1] कहाँ रखते हैं हम
अपनी आँखों में कोई महताब[2] कहाँ रखते हैं हम

यह इसकी ज़रख़ेज़ी[3] है जो खिल जाते हैं फूल नये
वर्ना अपनी मिट्टी को शादाब[4] कहाँ रखते हैं हम

हम जैसों की नाकामी पर क्यों हैरत है दुनिया को
हर मौसम में जीने के आदाब[5] कहाँ रखते हैं हम

महरूमी ने ख़्वाबों में भी हिज्र के काँटे बोये हैं
उसका पैकर[6] मरमर-सा, किमख़ाब कहाँ रखते हैं हम

सुबह-सबेरे आँगन अपना गूँज उठे चहकारों से
तोता, मैना, बुलबुल या सुर्ख़ाब कहाँ रखते हैं हम

[1]सामान [2]चाँद [3]उर्वरा शक्ति [4]हरा-भरा [5]शिष्टाचार [6]शरीर

2

किस लम्हे हम उसका ध्यान नहीं करते
हाँ! कोई अहदो-पैमान[1] नहीं करते

उसकी यादें दिल में छुपा कर रखते हैं
हम बाहर घर का सामान नहीं करते

इक कमरे को बन्द रखा है बरसों से
वहाँ किसी को हम मेहमान नहीं करते

शहर में तन्हा जीना भी तो मुश्किल है
अच्छे बुरे की अब पहचान नहीं करते

पास आकर इक जुगनू अक्सर कहता है
तारे देख के जी हल्कान[2] नहीं करते

इक जैसा दुख मिलकर बाँटा करते हैं
इक दूजे पर हम अहसान नहीं करते

भालू बन्दर क्या क्या इनके नाम रखें
कौन-सा पागलपन इंसान नहीं करते

'आलम' उसका मान बढ़ाना था वर्ना
कौन सी मुश्किल हम आसान नहीं करते

[1]वादे-क़रार [2]दुखी

3

काश किसी दिन तेरा मेरा यूँ संगम हो जाये
मैं रोऊँ तो तेरे दिल का मौसम नम हो जाये

नदियाँ, झीलें, झरने सबकी अलग अलग पहचानें
और समुन्दर चाहे उसमें सबकुछ ज़म हो जाये

मेरे ज़ख़्म हैं वीणा, उसके नाख़ुन है मिज़राब[1]
मुमकिन है अब चीख भी मेरी इक सरगम हो जाये

मेरी मिट्‌टी में कैसी तासीर[2] मिली है यारब
मैं शोला भी हाथ में लूँ तो वो शबनम हो जाये

मुझको छोड़ो सुज्ह के रुख़ पर फैली धुन्ध हटाओ
तुम घर से बाहर आना जब कुहरा कम हो जाये

इतना भोलापन भी 'आलम' अच्छी बात नहीं है
जो भी हँसकर हाथ मिला ले वो हमदम हो जाये

[1]वीणा बजाने का तार का छल्ला [2]प्रभाव

**4**

ऐसा नहीं कि रुकना गवारा कभी न था
हमको फ़क़त किसी ने पुकारा कभी न था

हालाँकि याद आता है अब भी बहुत हमें
वो शह्‌र जिसमें कोई हमारा कभी न था

हम जिसके साथ साथ थे उसके कभी न थे
जो साथ था हमारे, हमारा कभी न था

कुछ फ़र्ज़ मेरा रास्ता रोके खड़े रहे
वर्ना ज़मीं पे रहना गवारा कभी न था

अब ज़्यों है इन्तज़ार हमें वक़्ते-साद[1] का
हमराह तो हमारा सितारा कभी न था

मैं बर्फ़ बर्फ़ था सो फ़रेबों में आ गया
उन मुट्‌ठियों में कोई शरारा[2] कभी न था

[1] शुभ घड़ी [2] अंगारा

## तुफ़ैल चतुर्वेदी

जिस जगह पत्थर लगे थे रंग नीला कर दिया
अबकी रुत ने मेरा बासी जिस्म ताज़ा कर दिया

आईने में अपनी सूरत भी न पहचानी गयी
आँसुओं ने आँख का हर अज़्स धुँधला कर दिया

उसकी ज़्वाहिश में तुज़्हारा सर है, तुमको थी ख़बर
अपनी मंज़ूरी भी दे दी, तुमने ये ज़्या कर दिया

उसके वादे के एवज़[2] दे डाली अपनी ज़िन्दगी
एक सस्ती शय का ऊँचे भाव सौदा कर दिया

कल वो हँसता था मेरी हालत पे अब हँसता[3] हूँ मैं
वक़्त ने उस शज़्स का चेहरा भी सहरा कर दिया

था तो नामुमकिन तेरे बिन मेरी साँसों का सफ़र
फिर भी मैं ज़िन्दा हूँ मैंने तेरा कहना कर दिया

हम तो समझे थे अब अश्कों की किस्तें चुक गयीं
रात इक तस्वीर ने फिर से तक़ाजा कर दिया

[1]ज्ञान [2]बदले में [3]रेगिस्तान

**2**

अदालतें हैं मुख़ालिफ़[1] तो फिर गवाही ज़्या
सज़ा मिलेगी मुझे मेरी बेगुनाही ज़्या

मेरे मिज़ाज में शक़ बस गया मेरे दुश्मन
अब इसके बाद मेरे घर की है तबाही ज़्या

हरेक बौना मेरे क़द को नापता है यहाँ
मैं सारे शहर में उलझूँ मेरे इलाही ज़्या

समय के एक तमाचे की देर है प्यारे
मेरी फ़क़ीरी भी ज़्या, तेरी बादशाही ज़्या

तमाम शहर के ज़्वाबों में ज़्यों अँधेरा है
बरस रही है घटाओ! कहीं सियाही ज़्या

मेरे ख़िलाफ़ मेरे सारे काम जाते हैं
तू मेरे साथ नहीं है मेरे इलाही ज़्या

बस अपने ज़ख़्म से खिलवाड़ थे हमारे शेर
हमारे जैसे क़लमकार[2] ने लिखा ही ज़्या।

[1]विरोधी [2]रचनाकार-लेखक

## भारतीय ज्ञानपीठ के दो नये गौरवशाली ग्रन्थ
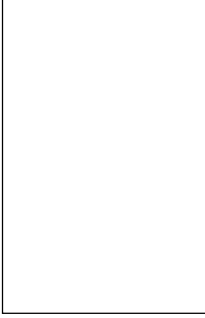
**अमरकान्त संचयन**
(रचना संचयन)
**सम्पा. : रवीन्द्र कालिया**
सहायक सम्पा. : कुणाल सिंह
मूल्य : 480 रुपये

अमरकान्त बीसवीं शताब्दी के स्वर्णिम और इक्कीसवीं शताब्दी के रजत समय के अप्रतिम रचनाकार हैं। अमरकान्त के लिए लेखन एक सामाजिक दायित्व है। वे मानते हैं कि लेखन समय और धैर्य की माँग करता है। सहज सरल कलेवर में लिपटी अमरकान्त की रचनाएँ जीवन की घनघोर जटिलताएँ व्यक्त कर डालती हैं। अपने समग्र प्रभाव व प्रेषण में ये रचनाएँ हमें देर तक सोचने के लिए विवश कर देती हैं। इनमें समय का कोई चालू फैशन या फतवेबाज़ी नहीं है। जीवन के सामान्य पहलू उठाकर, सपाट संवाद अथवा वर्णन की अन्विति जहाँ उनकी कहानी को बोधगम्य बनाती है, वहीं मन्तव्य की जटिलता, अन्त तक आते-आते अर्थगम्य बन जाती है। यद्यपि अमरकान्त का रचनाकाल नयी कहानी के दिनों से आरम्भ होता है, उनकी अभिव्यक्ति में नयी कहानी के फिसलन वाले बिन्दु सिरे से ग़ायब हैं। वे अभिव्यक्ति में धुँधलेपन, धुन्ध और धाँधली के ख़िलाफ़ जैसे मोर्चा खोलकर खड़े हैं। वे न अपने आपको महिमामंडित करते हैं, न अपने पात्रों को। जीवन के मारक प्रसंगों को वे तटस्थ भाव से लिख जाते हैं, उनमें टप-टप भावुकता नहीं डालते। अमरकान्त जीवन के संघर्ष को सर्वोपरि समझते हैं। उनकी रचनाओं में विप्लवकारी परिवर्तन का जयघोष नहीं, वरन् जीवन की दैनन्दिन चुनौतियों के बीच ज़िन्दा और साबुत बच जाने का सन्तोष व्यक्त होता है।

प्रस्तुत संचयन रचनाकार अमरकान्त के कृतित्व का एक छोटा-सा गवाक्ष है जिसे उनके बृहद् साहित्य-कोष की ओर खोलने का हमने प्रयास किया है।

**अज्ञेय रचना संचयन**
(रचना संचयन)
**सम्पा. : डॉ. कन्हैयालाल नन्दन**
मूल्य : 700 रुपये
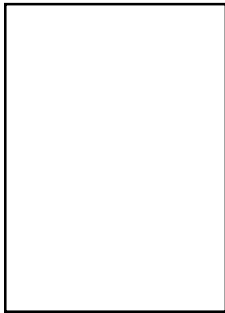
# अज्ञेय रचना संचयन

भारतीय साहित्य के कालजयी रचनाकारों में अग्रगण्य सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय का रचना-संसार हिन्दी का ऐश्वर्य है। अज्ञेय ने कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना, यात्रावृत्तान्त, डायरी, रिपोर्ताज, संस्मरण, नाटक आदि विभिन्न विधाओं में विपुल लेखन किया है। वस्तुतः वे एक युग निर्माता नेतृत्व-शक्ति-सम्पन्न रचनाकार रहे हैं। व्यक्तित्व और कृतित्व की दृष्टि से अद्वितीय अज्ञेय के रचना-संसार को भारतीय ज्ञानपीठ ने 'अज्ञेय रचना संचयन' के रूप में प्रकाशित किया है। 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित रचनाकार का कालजयी शब्द-संवाद —'अज्ञेय रचना संचयन'।

## तबाह फ़स्ल हुई किसान बाक़ी है

### शाहिद अंजुम

जब तक हम मिट्टी के घर में रहते थे
गाँव के सारे लोग असर में रहते थे

अब इस्लामाबाद में भी महफ़ूज़ नहीं
अच्छे ख़ासे रामनगर में रहते थे

घर का बँटवारा पहले भी होता था
रोज़न भी दीवारो दर में रहते थे

सब मयख़ाने में गिरवी रख आया हूँ
कैसे कैसे ख़्वाब नज़र में रहते थे

तेरी ख़्वाहिश पंख लगाये फिरती थी
पहले हम दिन रात सफ़र में रहते थे

2

फिर किसी ने गीत मीरा की तरह गाये कहाँ
बाँसुरी के ज़ख़्म दुनिया को नज़र आये कहाँ

अश्क़ मेरे ख़ून में तब्दील हो पाये कहाँ
ग़म के पेड़ों पर तेरी यादों के फल आये कहाँ

जो तुम्हारे साथ रहते थे उजाले की तरह
तुम ने अपने वो मुक़द्दस ख़्वाब दफ़नाये कहाँ

राम के भक्तों में कोई राम के जैसा नहीं
अब वो अपनी चाहतों के बेर ले जाये कहाँ

जिस से शरमाई हुई रहती है शामे-सुरमई
मेरी क़िस्मत में वो तेरे लम्स की चाय कहाँ

3

फ़रेब दे गया सूरज का ऐतबार मुझे
मेरा सुराग़ मिला रोशनी के पार मुझे

तमाम उम्र कोई चीख़ता रहा मुझमें
कभी सुनाई न दी अपनी ही पुकार मुझे

हर एक आदमी क़ीमत मेरी लगाने लगा
किसी ने ग़ौर से देखा था एक बार मुझे

मैं एक भीगे वरक़ पर लिखी इबारत हूँ
हवा का झोंका भी कर देगा तार-तार मुझे

सवाल उठने लगे हैं मेरी विरासत पर
समझ रहा है ज़माना किरायेदार मुझे

वफ़ा के दश्त[1] में सोने के इक हिरण की तरह
ये कौन देने लगा दावते-शिकार मुझे

लगा के पेड़ मोहब्बत का घर के आँगन में
बना दिया है बुज़ुर्गों ने पहरेदार मुझे

[1]जंगल

4

एक तेरा ही आसरा है माँ
मेरी दुनिया में और क्या है माँ

मैं तुझे देख कर सँवरता हूँ
मेरा तू ही तो आईना है माँ

तूने देखा है रास्ता मेरा
तेरी आँखों में रतजगा है माँ

ख़ूबियाँ सारी तेरी ज़ात में है
तेरा बेटा बहुत बुरा है माँ

मैं जहाँ भी हूँ तेरे साये में हूँ
मेरे सिर पर तेरी दुआ है माँ

## शनावर किरतपुरी

चमकती धूप को दुश्मन नहीं बनाता मैं
चराग़ शाम से पहले नहीं जलाता मैं

किसी तनाबे[1]-तअल्लुक़ का ज़्या भरोसा है
हवा के शहर में ख़ेमे नहीं लगाता मैं

ये रोज़ो-शब[2] के मसारिफ़[3] तो ख़ैर अपनी जगह
ज़रूरतों से ज़ियादा नहीं कमाता मैं

हँसी न आये तो शर्मिन्दगी सी होती है
कभी पुराने लतीफ़े नहीं सुनाता मैं

ये क़र्ज़ख़्वाह सी रातें, ये ख़ैरख़्वाह से दिन
किसी को अपनी ज़रूरत नहीं बताता मैं

दुआ सलाम की हद तक ख़ुलूस[4] काफ़ी है
किसी की राह में पलकें नहीं बिछाता मैं

[1]डोरी, ख़ेमे की रस्सी [2]रात दिन [3]व्यस्तता [4]निश्छलता

2

अदा करेगा ये दिल जो लगान बाक़ी है
तबाह फ़स्ल हुई है किसान बाक़ी है

कहाँ है आख़री सफ़हा किताब का जाने
उसी वरक़ में कहानी की जान बाक़ी है

ज़मीने-दिल है के सरसब्ज़ ही नहीं होती
अभी तो फ़सल से ज़्यादा लगान बाक़ी है

गुनाह चीख रहा है भरी अदालत में
शराफ़तों के लिए इक बयान बाक़ी है

बने हुए हैं तनाबें[1] बुज़ुर्ग लोग अभी
यही सबब है के ये आसमान बाक़ी है

[1]ख़ेमा या तम्बू तानने की रस्सियाँ

## ख़लील धनतेजवी

हज़ार बार बिखर कर सिमटने वाला हूँ
मैं और तेज़ हवा से लिपटने वाला हूँ

ख़ुदा ने इसलिए जन्नत सँभाल कर रख्खी,
वो जानता है मैं वापस पलटने वाला हूँ

तुम अपनी छत पे दुपट्टों के जाल फैला दो
मैं इक पतंग की मानिन्द कटने वाला हूँ

तू मेरे क़ुर्ब[1] की ख़ुशबू समेट कर रख ले
वगरना कल मैं हज़ारों में बँटने वाला हूँ

'ख़लील' अच्छा-बुरा आप ख़ुद समझ लीजे,
मैं उनके चेहरे से पर्दा उलटने वाला हूँ

[1]निकटता

2

दरवाज़ा चाहता है कि दस्तक मिले कोई
तनहाइयों का रोना है कब तक मिले कोई

उनकी ये ज़िद कि आप कोई वक़्त दीजिए
और मैं ये चाहता हूँ अचानक मिले कोई

या रब बहुत सताती है परियों की आरज़ू
आँखों को मेरी ख़्वाब भयानक मिले कोई

तुमको तो अब 'ख़लील' है आवारगी का शौक़
तुम जैसे आदमी से कहाँ तक मिले कोई

3

कहीं खो गयीं सभी ख़ुश्बूएँ मेरे दिल का फूल बिखर गया
ऐ हवा महकती हवा बता वो ग़ज़ल सा चेहरा किधर गया

अभी घास ओस के मोतियों से गले मिली थी तपाक से
के चमकती धूप का क़ाफ़िला कई वादियों से गुज़र गया

कभी ज़ख़्म कोई भरा नहीं कज़ी दिल किसी से जुड़ा नहीं
ये वो आईना है के टूटकर जो बिखर गया सो बिखर गया

अभी आसमानों के और भी कई ज़ीने उसकी नज़र में थे
मेरी चाहतों के लिहाज में वो बलन्दियों से उतर गया

मैं उदास रात का चाँद हूँ तू सुलगते दश्त[1] की दोपहर
मेरी मंज़िलें कहीं और हैं तेरे पास यूँ ही ठहर गया

मेरी अज़मतें[2] तेरे ग़म से हैं मेरी शोहरतें तेरे दम से हैं
मेरी शायरी के लिबास में तेरा हुस्न और निखर गया

[1]जंगल [2]ऊँचाई, श्रेष्ठता

## इन्द्रपाल सिंह 'तन्हा'

सबको केवल अपनी चिन्ता, सबको केवल अपना ध्यान
इक तू ही ज्यूँ दुनिया भर की सोचे मेरे दिल नादान

दीवाने, वो सपनों वाली रैन तो कब की बीत गयी
तू इस तपती दोपहरी में किसके पीछे है हलकान

कैसे-कैसे लोग तिलिस्मों में तबदील हुए, भाई
होवे हर चेहरे से मुझको आज पहेली का-सा भान

कल तक तो वो टेढ़े मुँह भी बात न करता था मुझसे
अब जाने किस कारण करता घूमे है मेरा गुणगान

जाने ज्यूँ हर सीधा रस्ता मुश्किल लगता है उनको
जाने ज्यूँ उनको हर टेढ़ी-मेढ़ी राह लगे आसान

सबसे पहली ख़्वाहिश उसकी तो तख़्ते-सुल्तानी है
फिर कुछ भूखे-नंगों में भी कर देगा थोड़ा-सा दान

इस रोबो-कल्चर में अपना चुप रहना ही बेहतर है
कौन हँसी उड़वाये वरना बतलाकर अपनी पहचान

यार, कभी तो आख़िर दीगर भी कुछ सोच लिया कर तू
यह ज़्या जब भी सोचे है तू, सोचे सिर्फ़ नफ़ा-नुकसान

अब जब पैसा और सफलता ही जीवन के लक्ष्य हुए
कौन भला अब देखे, तुझपे ज़्या बीते है रे ईमान

लगता है बस नाख़ूनों का करतब की दुनिया सारी
अपने तो नाख़ून ही न थे, सो किस तौर बचाते जान

## मासूम ग़ाज़ियाबादी

ग़ज़ल में बेकसों का दर्द अज़्सर बाँध लेता हूँ
ख़ुशी ग़म जो भी हो जाए मयस्सर बाँध लेता हूँ

मैं अपनी आदतों के बाज़ को क़ाबू में रखता हूँ
वो उड़ना चाहता भी है तो मैं पर बाँध लेता हूँ

ग़ज़ल भी काँप जाती है क़लम आँसू बहाता है
मैं जब बरबादी-ए-गुलशन के मंज़र बाँध लेता हूँ

शराफ़त भूख के बदले में जब घुँघरू पहनती है
छलकता तो है आँखों का समन्दर बाँध लेता हूँ

ख़बर पढ़ता हूँ जब फ़ाक़ाकशी से मरनेवालों की
तो पट्टी पेट से सीने से पत्थर बाँध लेता हूँ

बिछा लेता हूँ बिस्तर देखकर तहज़ीब गुलशन की
मगर जब हाल देखूँ हूँ तो बिस्तर बाँध लेता हूँ

ज़रूरत, सब्र, ख़्वाहिश, फ़िक्र तक मासूम बच्चों के
ख़्यालों में सभी लश्कर के लश्कर बाँध लेता हूँ

## सर्वेश चन्दौसवी

आई हुई है ग़म की नदी फिर उफ़ान पर
दिल बच सकेगा ज़ज़्त की ऊँची चट्टान पर

सहने-चमन में रोक लगे इज़्तिहान पर
ख़ारों को ऐतराज़ गुलों के बयान पर

छाने को बेक़रार है सारे जहान पर
इस मुश्ते-ख़ाक का है दिमाग़ आसमान पर

गिरना ही लाज़िमी था किसी मोड़ पर हमें
हम दौड़ने लगे थे हवस की ढलान पर

कैसा निफ़ाक़, किसकी अदावत, कहाँ का बुग्ज़
तुम आरती पे नाज़ करो, हम अज़ान पर

झेलम के आईने में उदासी के साये हैं
कोहसार रो रहे हैं ग़मे-ज़ाफ़रान पर

तू आज़मा के देख ले तेरे ही इश्क़ में
'सर्वेश' खेल जाएँगे हम अपनी जान पर

## ‘नाज़’ प्रतापगढ़ी

ख़ुशबू से फूलों का रिश्ता टूट गया
बेवा से बेटों का रिश्ता टूट गया

रूहों को भी मिलने में दुश्वारी थी
अच्छा है जिस्मों का रिश्ता टूट गया

दौलत भी आड़े आती है रिश्तों में
अपनों से अपनों का रिश्ता टूट गया

कब तक चलते शाखों की उँगली पकड़े
पेड़ों से पत्तों का रिश्ता टूट गया

ख़्वाहिश पूरी होने से नुकसान हुआ
आँखों से ख़्वाबों का रिश्ता टूट गया

जबसे रुख़सत दुनिया से माँ-बाप हुए
भाई से बहनों का रिश्ता टूट गया

तुझको ऐसा ग़ज़लों ने अपनाया है
तुझसे सब सिन्फ़ों का रिश्ता टूट गया

मेरी दुनिया को बर्बाद किया शक़ ने
पल-भर में बरसों का रिश्ता टूट गया

दौर तरक़्क़ी का आया है ‘नाज़’ मगर
पुरखों से बच्चों का रिश्ता टूट गया

## अली अब्बास ‘उम्मीद’

वो मेरे साथ चला था, मगर थकान में था
यही तो फ़र्क़ मेरे उसके दरम्यान में था

उदास नस्लें इसी सोच में बिखरती रहीं
नसीब उनका कहीं दूर आसमान में था

तमाम रिश्ते वही हैं, तमाम रस्में भी
बस इक ख़ुलूस नहीं है जो पानदान में था

उसी के नाम से जीते हैं आज तक सब लोग
वो एक फ़र्द यगाना जो ख़ानदान में था

तमाम शह्र था ख़्वाबों की तेज़ बारिश में
मैं अपनी ज़ात के जलते हुए मकान में था

हक़ीक़तों को पलट कर वो देखता कैसे
बिखरते रहना सदा जिसकी आन-बान में था

बताता रहता था मौसम का कारोबार हमें
छुपा हुआ वो परिन्दा जो सायबान में था

वो मेरी साँस में बस कर भी दूर-दूर रहा
मुझे यक़ीन था, लेकिन वही गुमान में था

हमारी नींदों में ‘उम्मीद’ चुभ रहा है अभी
तेरे ख़्यालों का वो तीर जो कमान में था

## अब्दुस्सलाम कौसर

न रिश्तों में है अपनापन, न कोई प्यार है जानम
गले मिलना भी एक फ़ैशन है कारोबार है जानम

मोहब्बत से जो मिलता है वो शक़ के दायरे में है
सियासत का नज़रिया इसलिए बेकार है जानम

यही अच्छा है घर में रह के बच्चों से हँसो बोलो
निकलना घर से बाहर आजकल बेकार है जानम

मोहब्बत में जो अपने हुस्न का मोती लुटा बैठी
न जाने क्यों वो लड़की आजकल बीमार है जानम

तअस्सुब[1] है कि बस दो वक़्त की रोटी के चक्कर में
कोई भगवान बन बैठा, कोई अवतार है जानम

ये मत सोचो तुम्हारे वक़्त पर कुछ काम आएगी
तुम्हारे वोट की जो पार्टी हक़दार है जानम

तअस्सुब ख़ुदफ़रेबी बेईमानी और मक्कारी
हमारे दौर का शायद यही किरदार है जानम

ये अच्छा है तुम्हारे हक़ में 'कौसर' का कहा मानो
मुसीबत में वही रहता है जो ख़ुद्दार है जानम

[1] धार्मिक पक्षपात

## नरेश 'निसार'

वो ये ज़मीं समेट ले वो आस्माँ समेट ले
है उस ख़ुदा का क्या पता कि कब दुकाँ समेट ले

सुख़नवरी[1] का ये हुनर किसी किसी को है नसीब
जो एक शेर में किसी की दास्ताँ समेट ले

ख़ुदा भी मिह्रबाँ है अब तक़ाज़ा वक़्त का भी है
कि माले-मुफ़्त जिस क़दर मिले मियाँ समेट ले

समेटने की धुन में ऐसा मो'जिज़ा[2] भी कर कभी
ये सिसकियाँ समेट ले उदासियाँ समेट ले

ग़रीब की न आह ले सितम न कर ख़ुदा से डर
कहीं तुझे ग़रीब की न इक फ़ुग़ाँ[3] समेट ले

ये कालचक्र वक़्त का ख़बर नहीं कि किस घड़ी
ये शोर-ओ-शर समेट ले ख़ामोशियाँ समेट ले

मिलेगी कब तलक पनाह बादलों से धूप में
हवा न जाने कब सरों से सायबाँ समेट ले

## हसीब सोज़

तेरी तरफ़ से हमला होगा ऐसा हमने कब सोचा था
शर्बत इतना कड़वा होगा ऐसा हमने कब सोचा था

आप तो पिछले कई बरस से मिनरल वाटर पीते हैं
आपका दिल भी गन्दा होगा ऐसा हमने कब सोचा था

छोटी-सी इक बात पे उसने सात समन्दर पार किये
उसकी गोद में बच्चा होगा ऐसा हमने कब सोचा था

हम जैसे बज़ाज़ की क़ीमत इस बस्ती में कोई नहीं
सोना इतना सस्ता होगा ऐसा हमने कब सोचा था

जिसकी ख़ातिर सारी दुनिया यारो छोड़ के आये हैं
वह भी इन्साँ गूँगा होगा ऐसा हमने कब सोचा था

2

यह ज़्या रज़्खेंगे सलामत किसी के दामन को
शरीफ़ज़ादों ने बज़्शा नहीं भिकारन को

सियासी लोग हैं जुगनूँ पकड़ के दे देंगे
कोई चराग़ न देगा तुज़्हारे आँगन को

तमाम शहर के दरवाज़े छोटे-छोटे थे
बड़ा सकून मिला है झुका के गर्दन को

हर एक महीने हमीं गिनती भूल जाते थे
पहाड़ा याद था अच्छी तरह महाजन को

तू बेशुमार भी दौलत अगर अता कर दे
मगर मैं भूल न पाऊँगा अपने बचपन को

3

ज़रा सी बूँदों में हुलिए बदल गये होंगे
हमारे यार थे काग़ज़ के गल गये होंगे

ख़ुदा का शुक्र, कि टाँगें मेरी सलामत हैं
तुज़्हारे पैंतरे लँगड़ों पे चल गये होंगे

ये भीख माँगने वाले भी भीख देने लगे
ज़रूर रात में बर्तन बदल गये होंगे

मुझे मलाल ये होगा कि मैं न जल पाया
मुझे यह ग़म है तेरे हाथ जल गये होंगे

जिन्हें ज़रूरतें मेरी तलाश करती हैं
वह लोग पिछली गली से निकल गये होंगे

4

तुज़्हारे कहने से झूठी क़सम जो खा ली है
भरे हैं मुँह में फ़लक और ज़बान काली है

हमारे काग़ज़ी कपड़ों पे तज़्सरा न करो
हमें पता है कि बरसात होने वाली है

ख़ुदा पनाह में रज़्खे शरीफ़ लोगों को
सुना है चोरों ने इक पार्टी बना ली है

तू जितनी बार भी आया है ख़ाली लौटा है
मैं ज़्या करूँ कि मेरी जेब अब भी ख़ाली है

बुर्जुग हाथों में घर की ज़रूरतों के निशान
हमारे अहद की तस्वीर कितनी काली है

5

यहाँ मज़बूत से मज़बूत लोहा टूट जाता है
कई झूठे इकट्ठे हों तो सच्चा टूट जाता है

न इतना शोर कर ज़ालिम हमारे टूट जाने पर
कि गर्दिश में फ़लक से भी सितारा टूट जाता है

हम अपनी ख़ैरियत के ख़त हमेशा झूठ लिखते हैं
कि आँखें जब भी खुलती हैं, तो सपना टूट जाता है

ग़नीमत है ग़रीबी में अगर ईमान रह जाए
ज़रा-सी ठेस में वरना ये शीशा टूट जाता है

कोई इक फाँस लगने पर, कई पहलू बदलता है
किसी के जिस्म से टकरा के नेज़ा[1] टूट जाता है

[1]भाला

## सत्यप्रकाश शर्मा

फिरता है लिये हाथ में दस्तार हमेशा
सर होता है जिसके लिए बेकार हमेशा

लफ़्ज़ों का किया करता है क्यों क़त्ल मुसलसल
क्यों वक़्त लिये फिरता है तलवार हमेशा

ग़ैरत कभी, इज़्ज़त कभी, जज़्बात कभी दिल
रहते है मेरे क़त्ल के आसार हमेशा

ये लफ़्ज़ तो गुमराह भी कर देते हैं अक्सर
आँखों से हुआ करता है इक़रार हमेशा

रक्खी ही नहीं फ़िक्र कभी सूद-ओ-ज़ियाँ की
गो इश्क़ का करते रहे व्योपार हमेशा

क्या उसकी ख़ता है जो न समझे ये ज़माना
जज़्बों की ज़ुबाँ बोलेगा फ़नकार हमेशा

**2**

न रोशनी, न इशारा, न राहबर कोई
किस ऐतबार पे करता रहे सफ़र कोई

शबे-फ़िराक़ के नश्तर भी साथ आएँगे
ख़्याल रख के इसे लाये अपने घर कोई

जो ख़ुद को ढूँढ़ने उतरे तो ख़ुद ही ग़ायब थे
मज़े की बात हमें भी न थी ख़बर कोई

जब उसके सामने पहुँचे तो इतने नादिम थे
छुपा न ऐब, न ज़ाहिर हुआ हुनर कोई

गिले ही याद नहीं, ज़ख़्म भी हरे कम हैं
मिलेगा क्या उसे आया भी गर इधर कोई

## पारसनाथ बुलचन्दानी

जिधर देखें उधर वीरानियाँ हैं
ये मेरे दौर की लाचारियाँ हैं

हमारे साथ तुम क्या चल सकोगे
हमारे पास तो बैसाखियाँ हैं

दुआएँ माँगती हैं गिड़गिड़ाकर
भँवर में आ गयी चालाकियाँ हैं

तुम्हें भी आग पर चलना पड़ेगा
अभी तो खेल में आसानियाँ हैं

मैं जिन पर हँस रहा हूँ इस अहद में
मेरे बच्चों की वो शैतानियाँ हैं

अदब से पेश आते हैं वहाँ सब
जहाँ ज़िन्दा अभी ख़ुद्दरियाँ हैं

है उनके पास कितना इल्म 'पारस'
हमारे पास तो नादानियाँ हैं

## लक्ष्मण कुमार 'आज़ाद गुलाटी'

मुझे मेरी असीरी[1] से रिहा होने नहीं देता
है मुझमें कौन जो मेरा कहा होने नहीं देता

न जाने किस गुनाह का बोझ जेह्नो-दिल पे रख्खा है
जो इक लम्हे को भी वक़्फ़े-दुआ[2] होने नहीं देता

मिरे इदराक[3] का सूरज यूँ मेरे सर पे ठहरा है
कि मेरे साये को मुझसे बड़ा होने नहीं देता

मैं चारों सम्त फैले शोर-ओ-गुल के जंगलों में भी
कभी अपनी सदा[4] को लापता होने नहीं देता

मिरे अहसास में 'आज़ाद' पतझड़ का जो आलम है
मिरे माहौल में कुछ भी हरा होने नहीं देता

[1]दासता [2]प्रार्थनारत [3]बुद्धि, ज्ञान [4]आवाज़

लम्हा-लम्हा अपनी आग में जलते रहना
यह भी हुनर है, मोम न हो के पिघलते रहना

सूरज जैसा होता है हस्ती का सफ़र भी
शाम को ढल कर सुब्ह को फिर से निकलते रहना

रिज़्क़े-हवा[1] होना है इसको हो जाएगा
लेकिन तब तक तो है दिये को जलते रहना

अपनी इकाई ज़िन्दा रख पाओ तो बेशक़
भीड़ का हिस्सा बन कर भीड़ में चलते रहना

इसके बाद ख़ुद अपनी राहें मिल जाएँगी
पहले औरों की राहों के पर चलते रहना

अपने अन्दर का दोज़ख़[2] जब तब ज़िन्दा है
अपना मुक़द्दर है जन्नत से निकलते रहना

[1] हवा का भोजन [2] नरक

**2**

शह्रे-उम्मीद की गलियों में भटकते रहिए
अपने हाथों की लकीरों से उलझते रहिए

कोई झोंका कभी उस सम्त भी ले जाएगा
बू-ए-गुल की तरह अपने से निकलते रहिए

टूट भी जाएँ तो अक्स अपने मिलेंगे उनमें
चल ही निकले हैं तो अब शीशों पे चलिए रहिए

बर्फ़ की काश लबों पर हो तो बेहतर है यही
अपने अनफ़ास की भट्टी में पिघलते रहिए

अब्र के साये तो मिटते हैं हवा के हाथों
धूप ही अपना मुक़द्दर है, सो जलते रहिए

किसको फ़ुर्सत है कि 'आज़ाद' सुने बात कोई
ख़ुदकलामी ही के जौहर से निखरते रहिए

## इम्तियाज़ अहमद आज़ाद

मुहब्बतों की हसीं दास्तान रखते हैं
हम साफ़ दिल और मीठी ज़बान रखते हैं

जो अपने आपसे आँखें मिला नहीं सकते
हमारे बारे में क्या-क्या गुमान रखते हैं

वतनपरस्त भी हैं और वफ़ादार भी हैं
अपने दिल में हम हिन्दोस्तान रखते हैं

तुम्हारी अम्न की दुनिया से दूर सहरा में
अलग ज़मीन से हम आसमान रखते हैं

कोई तो नेक अमल कर सके न हम लेकिन
किसी का दिल न दुखे इतना ध्यान रखते हैं

ये मुल्क, मुल्क नहीं जश्नगाह है शायद
ये सोच मुल्क के आलाकमान रखते हैं

वो जिनका मिटना यक़ीनी है चन्द सालों में
सुना है हमने, परिन्दों में जान रखते हैं

इतने बदनाम हुए हैं 'आज़ाद' दुनिया में
निगाह दर पे, सदाओं पे कान रखते हैं

**2**

रास्ते बदले नहीं और रहनुमा बदला किये
इसलिए हम मंज़िले-मक़सूद से भटका किये

मसलहत कुछ है जो अब आँखें हमारी ख़ुश्क हैं
वरना हम ही हैं जो हर एक बात पे रोया किये

यूँ तो मरने को हज़ारों बार मरते आये हैं
ग़म है बस इतना कि सच्ची मौत को तरसा किये

दिल कभी हँसना जो चाहा, आप ही पर हँस लिये
जब कभी रोने को जी चाहा सबब ढूँढ़ा किये

अक़्ल हैरत में है, क़ातिल की सफ़ाई देखकर
दिल गया, जाँ भी गयी, हम वार ही देखा किये

क्या पता पाएँगे वो, तह में हैं कितनी मोतियाँ
जो कि साहिल से समन्दर की लहर देखा किये

हल निकलते ही गये, जब फ़िक्र हम करते रहे
मुश्किलें बढ़ती गयीं जब देर तक सोचा किये

चाँद व सूरज की तरह हम न मिल पाये कभी
हम इधर ढलते रहे और वो उधर निकला किये

## प्रवीण कुमार 'अश्क'

कुछ दुआ का ख़्याल रक्खा करो
दिल की मस्जिद उजाल रक्खा करो

कितने भारी हैं बस्ते बच्चों के
इनमें कुछ फूल डाल रक्खा करो

सैर बाज़ार में करो लेकिन,
घर का भी कुछ ख़्याल रक्खा करो

या ग़ज़ल मत उतारो काग़ज़ पर
या कलेजा निकाल रक्खा करो

पूजते जाओ चढ़ता सूरज भी
और जुगनू भी पाल रक्खा करो

ख़ुशलिबासों की सोहबतों में मियाँ
अपनी चादर उजाल रक्खा करो

गर्म रुत में तो कम से कम यारो
ख़ून में कुछ उबाल रक्खा करो

## पाकिस्तान का मतलब ज़्या
**असग़र वजाहत**

**पाकिस्तान का मतलब ज़्या**
असग़र वजाहत
मूल्य : 120 रुपये

आज पाकिस्तान के बारे में जानने और समझने का मतलब अपनी पड़ताल करने जैसा है। आधे से अधिक समय बीत गया, जब इस्लाम धर्म और उर्दू के नाम पर पाकिस्तान बनाया गया था। आज वहाँ इस्लाम का ज़्या स्वरूप है और उर्दू की ज़्या हालत है यह देख कर पता चलता है कि लोकप्रिय भावनात्मक राजनीति हमें कहाँ ले जाती है।

पाकिस्तान के सभी पहलुओं पर रोशनी डालती यह किताब कहीं निर्मम दिखती है तो कहीं आत्मीयता से भरपूर। पाकिस्तान की सज़ा, सेना, प्रशासन और सामाजिक परिदृश्य के माध्यम से एक देश के दर्द को भी बयां किया गया है जहाँ धर्म, भाषा और प्रान्तीयता के आधार पर हर साल न जाने कितना नर-संहार होता रहा है। सिविल सोसाइटी बुरी तरह विभाजित है। पर ऐसे हालात में भी बुद्धिजीवी, लेखक, संस्कृतिकर्मी, पत्रकार बड़ी हिज़्मत से जनहित में खड़े हुए हैं।

इस यात्रा-संस्मरण में पाकिस्तान में अल्पसंज़्यक समुदाय की तलाश करने की भी कोशिश है। पाकिस्तान के हिन्दू, ईसाई, अहमदिया समुदायों की स्थिति पर लेखक ने ध्यान दिया है।

विभाजन की त्रासदी को लेखक ने फिर से समझने का प्रयास किया है। लाहौर, मुल्तान, कराची में लेखक ने विभाजन के पुराने दर्द को नये अन्दाज़ में पेश किया है।

'पाकिस्तान का मतलब ज़्या' पुस्तक पाठक को यह सोचने की दिशा देती है कि पाकिस्तान की तरफ देखने का नजरिया बदलना चाहिए। पाकिस्तान न केवल महज़्वपूर्ण पड़ोसी है, बहुत बड़ा बाज़ार है बल्कि एक मजबूत सांस्कृतिक कड़ी भी है जो हमारे वर्तमान और भविष्य को समझने के लिए अनिवार्य है।

## यह जो है पाकिस्तान
**शिवेन्द्र कुमार सिंह**

**यह जो है पाकिस्तान**
शिवेन्द्र कुमार सिंह
मूल्य : 140 रुपये

शिवेन्द्र की पुस्तक 'यह जो है पाकिस्तान' उनकी पाकिस्तान यात्राओं का संस्मरण है। मैं तो ज़्या, 2004 का पाकिस्तान दौरा कोई नहीं भूल सकता। चाहे खिलाड़ी हो, दर्शक हो या फिर दोनों देशों के क्रिकेट फैंस। पाकिस्तान रवाना होने से पहले हम लोग तत्कालीन प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी से मिले थे, मुझे याद है उन्होंने शुभकामना के तौर पर हमें एक बैट दिया था और कहा था—खेल ही नहीं, दिल भी जीतिए।

पहला वन डे मुकाबला कराची में था। पाकिस्तान ने पहले गेंदबाजी की थी। शिवेन्द्र ने उस वन डे को शानदार तरीके से याद किया है, इसलिए उसके बारे में ज्यादा कुछ लिखने की जरूरत है नहीं। हाँ, इतना बता दूँ कि आखिरी ओवर में आशीष नेहरा को गेंदबाजी सौंपने का फैसला थोड़ा पेचीदा था। इस बीच तमाम तरह की खबरें सामने आयीं, जिनमें सबसे बड़ी खबर थी मैच फिज़िंसग की। लेकिन मैंने और हमारी पूरी टीम ने इस तरह की खबरों को पूरी तरह नजरअन्दाज किया।

शिवेन्द्र से पहली मुलाकात भी इस दौरे के पहले ही हुई थी। पाकिस्तान की उड़ान भरते वज़्त भी हम लोग साथ में ही थे, थोड़ी बहुत बातचीत भी हुई थी। इस किताब में उन्होंने पाकिस्तान की कई ऐसी तस्वीरें सामने रखी हैं जो खिलाड़ी के तौर पर हम नहीं देख पाये। करीब 7-8 साल बाद किताब आपके सामने है।

इस किताब में उन्होंने पाकिस्तान के दूसरे दौरों का भी जिक्र किया है। इस किताब के लिए मैं उन्हें शुभकामनाएँ देता हूँ।

**—सौरभ गांगुली**

## हमन है इश्क़ मस्ताना

### कबीर

हमन है इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी ज़्या?
रहें आज़ाद या जग से हमन दुनिया से यारी ज़्या?

जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर-ब-दर फिरते,
हमारा यार है हम में हमन को इन्तज़ारी ज़्या?

ख़लक़ सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है,
हमन गुरनाम साँचा है हमन दुनिया से यारी ज़्या?

न पल बिछुड़े पिया हमसे न हम बिछड़े पियारे से,
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेक़रारी ज़्या?

कबीरा इश्क़ का माता, दुई को दूर कर दिल से,
जो चलना राह नाज़ुक है हमन सिर बोझ भारी ज़्या?

### प्यारेलाल शोकी

जिन प्रेम रस चाखा नहीं अमृत पिया तो ज़्या हुआ
जिन इश्क़ में सर ना दिया सो जग जिया तो ज़्या हुआ

ताबीज़ और तूमार में सारी उमर ज़ाया किसी
सीखे मगर हीले घने मुल्ला हुआ तो ज़्या हुआ

जोगी न जंगम से बड़ा रंग लाल कपड़े पहन के
वाक़िफ़ नहीं इस हाल से कपड़ा रँगा तो ज़्या हुआ

जिउ में नहीं पी का दरद बैठा मशायख होय कर
मन का रहत फिरता नहीं सुमिरन किया तो ज़्या हुआ

जब इश्क़ के दरियाव में होता नहीं ग़रकाब ते
गंगा, बनारस, द्वारका पनघट फिरा तो ज़्या हुआ

मारम जगत को छोड़कर दिल तन से ते खिलवत पकड़
शोकी पियारेलाल बिन सबसे मिला तो ज़्या हुआ

## गिरिधर दास

हम भी उस बेपीर के आशिक़ है कहलाने लगे
आह हम मजनूँ-शुमारी में गिने जाने लगे

हो गया मुझसे ख़फ़ा वह याद अब आता नहीं
जब से सब बेपीर आकर उसको बहकाने लगे

'दास गिरिधर' तुम फ़क़त हिन्दी पढ़े थे ख़ूब-सी
किस तरह उर्दू के शायर में गिने जाने लगे

## भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

गले मुझको लगा लो ऐ दिलदार होली में
बुझे दिल की लगी भी तो ऐ यार होली में

नहीं यह है गुलाले-सुर्ख़ उड़ता हर जगह-प्यारे
ये आशिक़ की हैं उमड़ी आहें आतिशबार होली में

गुलाबी गाल पर कुछ रंग मुझको भी जमाने दो
मनाने दो मुझे भी जाने-मन त्योहार होली में

है रंगत जाफ़रानी रुख़अबीरी कुमकुम कुच है
बने हो ख़ुद ही होली तुम ऐ दिलदार होली में

'रसा' गर जामे-मय ग़ैरों को देते हो तो मुझको भी
नशीली आँख दिखलाकर करो सरशार होली में

## बद्रीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन'

तेरे इश्क़ में हमने दिल को जलाया
क़सम सर की तेरे, मज़ा कुछ न आया

नज़र ख़ार की शक़्ल आते हैं सब गुल
इन आँखों में जब से तू आकर समाया

असर हो न ज़्यों दिल में दिल से जो चाहे
मसल सच है, जो उसको ढूँढ़ा वो पाया

चमन में है बरसात की आमद-आमद
अहा आसमाँ पर सियह अब्र छाया

मचाया है मोरों ने ज़्या शोरे-मैहशर
पपीहों ने ज़्या पुर-गजब रट लगाया

तुझे शैख़ जिसने बनाया है मोमिन
हमें ज़ी है हिन्दू उसी ने बनाया

परीशाँ हो ज़्यों अब्रे-बेख़ुद भला तुम
कहो किस सितमगर से है दिल लगाया

## प्रताप नारायण मिश्र

बसो मूखते देवि! आयों के जी में
तुज़्हारे लिए हैं मकाँ कैसे-कैसे

अनुदयोग, आलस्य, सन्तोष सेवा
हमारे हैं अब मेहरबाँ कैसे-कैसे

अभी देखिए ज़्या दशा देश की हो
बदलता है रंग आसमाँ कैसे-कैसे

प्रताप अब तो होटल में निर्लज्जता के
मज़े लूटती है ज़िनाँ कैसे-कैसे

## स्वामी रामतीर्थ

जिन प्रेम रस चाख्या नहीं, अमृत पिया तो ज़्या हुआ
जिन इश्क़ में रस न दिया, जुग जुग जिया तो ज़्या हुआ

मशहूर हुआ जो पन्थ में, साबित न की आपको
आलिम व फ़ाज़िल होय के दाना हुआ तो ज़्या हुआ

जब प्रेम को दरयाब में गरकाब यह होता नहीं
गंगा-जमुन गोदावरी न्हाला फिरा तो ज़्या हुआ

प्रीतम से किंचित् प्रेम नहिं, प्रियतम पुकारत दिन गया
मतलब हासिल न हुआ रो-रो मुवा तो ज़्या हुआ

## लाला भगवानदीन

तुमने पैरों में लगाई मेंहदी
मेरी आँखों में समाई मेंहदी

है हरी ऊपर मगर अन्तस है लाल
है ये जादू की जगाई मेंहदी

कल से छूटी कूट कर पीसी गयी
तब मेरे पद छूने पाई मेंहदी

पैर पड़-पड़ कर पकड़ लेती है कर
छल में बावन से सवाई मेंहदी

चुनरी से है सवाई मेंहदी
दीन को इस हेतु भाई मेंहदी

## मैथिलीशरण गुप्त

इस देश को हे दीन बन्धो। आप फिर अपनाइये
भगवान भारतवर्ष को फिर पुण्यभूमि बनाइये

जड़ तुल्य जीवन आज इसका विघ्न–बाधा पूर्ण है
हे रज़्ब! अब अवलज़्ब देकर विघ्नहर कहलाइये

यह सृष्टि गौरव–गज ग्रसित है ग्रहदशा के ग्राह से
हे भज़्त वत्सल। शुभ सुदर्शन चक्र आप चलाइये

सज़्पूर्ण गुण–गौरव रहित हम पतित अवनत हो चुके
अब छोड़ निर्गुणता विभो, सत्वर सगुण बन जाइये

गोपाल अब वह चैन की बंशी बजेगी कब यहाँ
आलस्य से अविभूत हमको कर्मयोग सिखाइये

वह पूर्व की सज़्पन्नता यह वर्तमान विपन्नता
अब तो प्रसन्न भविष्य की आशा यहाँ उपजाइये

यह आर्य भूमि सचेत हो फिर कार्यभूमि बने अहा
वह प्रीति–नीति बढ़े परसपर नीति भाव भगाइये

जिसके शरण होकर रहे ? अब तुम बिना गति कौन है
हे देव! वह अपनी दया फिर एक बार दिखाइये

## जयशंकर प्रसाद

सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं

उन्हें अवकाश ही इतना कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं

जो ऊँचे चढ़ के चलते हैं वो नीचे देखते हरदम
प्रफुल्लित वृक्ष की यह भूमि कुसुमागार करते हैं

न इतना फूलिए तरुवर सुफल कोरी कली लेकर
बिना मकरन्द के मधुकर नहीं गुंजार करते हैं

'प्रसाद' उनको न भूलो तुम तुज़्हारा जो कि प्रेमी हो
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं

## सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाए जो पूँजी तुम्हारी मिल में है

हार होंगे हृदय के खुलकर तभी गाने नये
हाथ में आ जाएगा, वह राज सो महफ़िल में है

तर्स है ये देर से आँखें गड़ी शृंगार में
और दिखलाई पड़ेगी जो गुराई तिल में है

पेड़ टूटेंगे, हिलेंगे, ज़ोर की आँधी चली
हाथ मत डालो, हटाओ पैर, बिच्छू बिल में है

ताक पर है नमक मिर्चा लोग बिगड़ें या बनें
सीख क्या होगी पराई जब पसाई सिल में है

2

किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं
दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं

जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने
वही सूत तोड़ लिये जा रहे हैं

छिपी चोट की बात पूछी तो बोले
निराशा के डोरे सिये जा रहे हैं

ज़माने की रफ़्तार में कैसा तूफ़ाँ
मरे जा रहे हैं जिये जा रहे हैं

खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं

3

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन

निगाह रुकी कि केशरों की वेशिनी ने कहा
सुगन्ध भार के होते हैं ये बहार के दिन

कहीं की बैठी हुई तितली पर जो आँख गयी
कहा, सिंगार के होते हैं ये बहार के दिन

हवा चली, गले ख़ुशबू लगा कि वे बोले
समीर-सार के होते हैं ये बहार के दिन

नवीनता की आँखें चार जो हुई उनसे
कहा, कि प्यार के होते हैं ये बहार के दिन

4

अगर तूर डर के पीछे हट गया तो काम रहने दे
अगर बढ़ना है आगे की ओर तो आराम रहने दे

बिगड़ कर बनते और बनकर बिगड़ते एक युग बीता
परो और शान रहने दे, शराब और जाम रहने दे

अगर ज़र्रे को ज़र कर तू, बड़मूजी को सर कर तू
ज़माने से बिगड़ कर चलता हो वह नाम रहने दे

न पड़ जाये तो क्या परदा, न गड़ जाये तो क्या आँखें
घनी से वाम होने को घना-सा घाम रहने दे

नज़ीरें क्या पुरानी दे रहा है, फ़ैसला किस का?
पुराने दाम रहने दे, पुराने याम रहने दे

## त्रिलोचन

अँधेरी रात है, मैं हूँ अकेला दीप जलता है
हवा जग-जग के सोती है, पथिक अब कौन चलता है!

धरा का कौन आकर्षण तिमिर में खींच लाया है
क्षितिज से व्योम में कोई तरल तारा निकलता है

तुज़्हारी बात सोची, और अपनी बात भी सोची
इन्हीं दो बिन्दुओं के बीच जीवन की विकलता है

न कुछ भी धूलि धज़्कड़ हो तो पथ कैसे चला जाए
कहा है— चिकने पत्थर पर क़दम जाकर फिसलता है

कहूँ ज़्या बात आँखों की इन्हें परदा नहीं आता
कहीं कुछ वेदना देखी कि आँसू बह निकलता है

'त्रिलोचन' भाव आते हैं तो फिर रोके नहीं रुकते
कभी झरने को देखा है जो अपनी ढाल ढलता है

2
यह दिल ज़्या है देखा दिखाया हुआ है
मगर दर्द कितना समाया हुआ है

मेरा दुख सुना चुप रहे फिर वो बोले
कि यह राग पहले का गाया हुआ है

झलक भर दिखा जाएँ बस उनसे कह दो
कोई एक दर्शन को आया हुआ है

न पूछो यहाँ ताप की ज़्या कमी है
सभी का हृदय उसमें ताया हुआ है

यही दर्द था जिसने तुमसे मिलाया
ये यों ही नहीं जी को भाया हुआ है

गढ़ा मौत का है नहीं भरने वाला
यहाँ अनगिनत का सफ़ाया हुआ है

'त्रिलोचन' सुनाओ हमें गान अपने
जहाँ दर्द जी का समाया हुआ है

3
भटकता हूँ दर-दर कहाँ अपना घर है
इधर भी, सुना है कि उनकी नज़र है

उन्होंने मुझे देख के सुख जो पूछा
तो मैंने कहा कौन जाने किधर है

तुज़्हारी कुशल कल जो पूछी उन्होंने
तो मैं रो दिया कह के 'आत्मा अमर है'

ज़्यों बेकार ही ख़ाक दुनिया की छानी
जहाँ शान्ति भी चाहिए तो समर है

जो दुनिया से ऊबा तो अपने से ऊबा
ये कैसी हवा है, ये कैसा असर है?

ये जीवन भी ज़्या है, कभी कुछ कभी कुछ
कहा मैंने कितना, नहीं है मगर है

बुरे दिन में भी जो बुराई न ताके
वही आदमी है वही एक नर है

'त्रिलोचन' यह माना बचाकर चलोगे
मगर दुनिया है यह हमें इसका डर है

4
सोच कर-कर के खाम होता है
धैर्य रखने से काम होता है

काम उसका नहीं अटकता है
जिसकी अंटी में दाम होता है

बारी-बारी से इस धरातल पर
अन्धकार और घाम होता है

अब बसाते नहीं, उजाड़ते हैं
कहते हैं इससे नाम होता है

दर्द ज़्या है जो पास पैसा है
ऐसे हाथों में जाम होता है

खोट है दीन में 'त्रिलोचन' ज़्या
दैव ज़्यों उससे वाम होता है?

## शमशेर बहादुर सिंह

चुपके से कोई कहता है शाइर नहीं हूँ मैं
ज़्यों अस्ल में हूँ जो वो बज़ाहिर नहीं हूँ मैं

भटका हुआ-सा फिरता है दिल किस ख़्याल में
ज़्या जादए-वफ़ा का मुसाफ़िर नहीं हूँ मैं?

ज़्या वसवसा है, पा के भी तुमको यक़ीं नहीं
मैं हूँ जहाँ वहीं भी तो आख़िर नहीं हूँ मैं

सौ बार उम्र पाऊँ तो सौ बार जान दूँ
सदक़े हूँ अपनी मौत पे काफ़िर नहीं हूँ मैं

**2**

अपने दिल का हाल यारो, हम किसी से ज़्या कहें
कोई भी ऐसा नहीं मिलता जिसे अपना कहें

हो चुकी जब ख़त्म अपनी ज़िन्दगी की दास्ताँ
उनकी फ़रमाइश हुई है, फिर इसको दोबारा कहें

आज इक् ख़ामोश मातम-सा हमारे दिल में है
ज़्वाब के-से दिन हैं, वर्ना हम इसे जीना कहें

यास! दिल को बाँध, सर पर जल्द साया कर, जुनूँ
दम नहीं इतना जो तुमसे साँस का धोका कहें

देखकर अख़ीर वक़्त उनकी मुहज़्बत की नज़र
हमको याद आया वो कुछ कहना जिसे शिकवा कहें

उसकी पुरहसरत निगाहें देख कर रह्म आ गया
वर्ना जी में था कि हम भी हँस के दीवाना कहें।

क़ाफ़िले वालो, कहाँ जाते हो सहरा की तरफ़,
आओ बैठो तुमसे हम मजनूँ का अफ़साना कहें

मुश्कबू-ए-जुल्फ़ उसकी, घेर ले जिस जा हमें
दिल ये कहता है, उसी को अपना काशाना कहें

**3**

फिर किसी को इक दिले-काफ़िर अदा देता हूँ मैं
ज़िन्दा हूँ और अपने ख़ालिक़ को दुआ देता हूँ मैं

बेख़ुदी में दर्द की दौलत लुटा देता हूँ मैं
'जब ज़ियादा होती है मय तो लुँढ़ा देता हूँ मैं'*

अपने ही क़द्रे-ख़ुदी की पुरतक़ल्लुफ़ लज़्ज़तें—
आप ज़्या लेते हैं मुझसे और ज़्या देता हूँ मैं

इश्क़ की मजबूरियाँ हैं, हुस्न की बेचारगी
रूए-आलम देखिएगा? आईना देता हूँ मैं

आरज़ूओं की बियाबानी है और ख़ामोशियाँ
ज़िन्दगी को ज़्यों सबाते-नक़्शे-पा देता हूँ मैं?

*स्व. लक्ष्मीचन्द जी से सुना हुआ मिसरा!

**4**

ईमान गड़बड़ी में है दिल के हिसाब में
लिज़्खा हुआ कुछ और मिला है किताब में

दिल जिनमें ढूँढ़ता था कभी अपनी दास्ताँ
वो सुर्ख़ियाँ कहाँ हैं मुहज़्बत के बाब में

ऐ दिलनेवाज़ पहलू ही जब दिल के और हों
ज़्या ख़िलवतों में लुत्फ़ धरा ज़्या हिजाब में

उस आस्ताँ तक हमको बहारों में ले चलो
जिस पर कोई शहीद हुआ हो शबाब में

**5**

यहाँ कुछ रहा हो तो हम मुँह दिखाएँ
उन्होंने बुलाया है ज़्या ले के जाएँ

कुछ आपस में जैसे बदल-सी गयी है
हमारी दुआएँ तुज़्हारी बलाएँ

तुम एक ज़्वाब थे जिसमें ख़ुद खो गये हम
तुज़्हें याद आएँ तो ज़्या याद आएँ

वो एक बात जो ज़िन्दगी बन गयी है
जो तुम भूल जाओ तो हम भूल जाएँ

वो ख़ामोशियाँ जिनमें तुम हो न हम हैं
मगर हैं हमारी तुज़्हारी सदाएँ

बहुत नाम हैं एक 'शमशेर' भी है
किसे पूछते हो किसे हम बताएँ

# हिन्दुस्तान की कायनात हैं दुष्यन्त की ग़ज़लें

## ज्ञानप्रकाश विवेक

**सारिका के 'दुष्यन्त कुमार स्मृति** अंक (मई 1976, अंक 181)' के सज़्पादकीय में कमलेश्वर लिखते हैं, ''हम सब जो जीवित हैं— आदमी के सपने को लेकर चले थे और अपने सपनों को लेकर जीने लगे। दुष्यन्त अपने सपने लेकर आया था और आदमी का सपना देकर चला गया। उस आदमी का सपना, तो अपने विराट समय को पहचानते हुए उसी में जीता और मरता है।''

दुष्यन्त की ग़ज़लों में निस्सन्देह उस आम आदमी की संघर्ष गाथा, सपनों का टूटना-जुड़ना, उज़्मीदें, निराशा, संशय, दुख की छायाएँ, अपने समय से टकराने की जुस्तजू और फिर किसी नये सपने के बनने-टूटने की अनुगूँज शामिल है। कुल मिलाकर देखें तो एक हिन्दुस्तान है अपनी पूरी कायनात के साथ, रागात्मकता के साथ, जीवन राग गाता हिन्दुस्तान— दुष्यन्त की ग़ज़लों में।

वो हिन्दुस्तान, दफ़अतन दुष्यन्त को मिलता है— किसी महल में नहीं... राजपथ पर भी नहीं... किसी दश्त में नहीं; वो मिलता है नुमाइश में और उसका पैरहन? चीथड़े! यहीं बिल्कुल यहीं दुष्यन्त, विडज़्बनाओं को वेदना में उतारने का कौशल या सामर्थ्य दिखाते हुए एक शे'र कहते हैं और वह शे'र भारतीय आत्मा के बीच से निकलकर, जीवन्त, न ख़त्म होने वाला शे'र हो जाता है। चाक्षुष इतना कि पूरा हिन्दुस्तान शे'र के भीतर खड़ा दिखाई देता है—

*कल नुमाइश में मिला था या चीथड़े कपड़ों में वो*
*मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है*

दुष्यन्त की यही विशेषता है। उनकी ग़ज़लों के अश्आर, एक पाठ में समाप्त नहीं होते। उनमें इतनी ताक़त है कि वे कभी समाप्त नहीं होते, पाठ के बाद, अश्आर के अन्य पाठ मन में और चेतना में उतर जाते हैं। सिर्फ़ उतरते नहीं द्वन्द्व पैदा करते हैं। अहसास कराते हैं— आम आदमी को, उसके आम होने का। उसकी नियति का। उसकी आवाज़ के कमज़ोर होते जाने का—

मसलेहत आमेज़ होते हैं सियासत के क़दम
तू नहीं समझेगा इनको तू अभी इंसान है

एक तंज़-सा करते हैं दुष्यन्त। सियासत के ख़िलाफ़। यह तंज़ 'फ़िकराकशी' में नही बदलता तो इसलिए कि विसंगत किसी घनीभूत छाया कि तरह इस शे'र में है। 'तू अभी इंसान है' में गहरी अर्थवज़ा है। इसी वाज़्यांश में दुख भी है। लेकिन तन्त्र और व्यवस्था में पैदा हुआ आम आमदी का दुख दुष्यन्त के भीतर बैठे कवि को बेचैन करता है। शे'र की यह तीव्र अनुभूति, मन को सामान्य नहीं रहने देती। व्याकुल अवस्था में छोड़ती है। शे'र की कलात्मकता का पक्ष इतना सशज़्त कि भाव, नाद, लय दुख के साथ-साथ मुहावरे में बदल जाता है। दुष्यन्त ज़्या कहना चाहते हैं इसे वे आख़िर तक छुपाये रखते हैं, बड़े शाइरों की शाइरी का यह विशिष्ट गुण होता है।

सबसे बड़ी बात यह है कि दुष्यन्त, शज़्दों को ज़िन्दा इंसानों जैसी शज़्सियत प्रदान करते हैं। मितव्यतता का उन्हें इल्म है और वे अपनी ग़ज़लों को शज़्दों की फ़ज़ूलख़र्ची से बचा ले जाते हैं। चूँकि शज़्दों का

प्रयोग व्यर्थ में नहीं किया जाता इसलिए, अश्आर के शज्द मिलकर अर्थ का संगीत पैदा करते हैं। उनका यह शे'र देखिए—

*जिएँ तो अपने बग़ीचे में गुलमोहर के तले*
*मरें तो ग़ैर की गलियों में गुलमोहर के लिए*

शे'र में विरोधाभास-सा पैदा किया गया है, जो शे'र को ऊर्जा देता है। 'गुलमोहर' शज्द में गहरी व्यंजना है। गुलमोहर पेड़ नहीं, गुलमोहर प्रतीक है। दुष्यन्त ने इस गुलमोहर शज्द को किसलिए इस्तेमाल किया, यह अबूझ है। यही अबूझपन, तशरीह की सूरत पैदा करता है। जैसे कि ग़ालिब की ग़ज़लें जो हर बार, नयी व्याज्या की माँग करती हैं।

ग़ज़ल-लेखन से पूर्व दुष्यन्त कुमार कवि के रूप में जाने जाते थे। नयी कविता के अतिरिज़्त उन्होंने दो उपन्यास और एक काव्य-नाटक लिखे थे। लेकिन वे किसी ऐसे माध्यम की तलाश में थे, जिससे वे समाज के साथ संवाद कर सकें। ग़ज़ल को उन्होंने भावाभिव्यज़्ति का माध्यम बनाया और वे इसमें इस क़दर सफल रहे कि हिन्दी ग़ज़ल की परज़्परा के रूप में स्थापित हुए। उन्होंने ग़ज़ल को अभिव्यज़्ति का माध्यम ज़रूर चुना लेकिन अपने समय के रूझान और तकाज़ों के मुताबिक़ उसमें अच्छी ख़ासी रद्दोबदल की, बल्कि ज़रूरी तोड़फोड़ की। प्रत्येक बड़ा कवि अपने समय को अपनी रचनाओं में न केवल जीता है, बल्कि उस समय को अपनी रचनाओं में इस क़दर व्यज़्त करता है कि रचना सर्वकालिक हो जाती है। दुष्यन्त की ग़ज़लें इस बात की ज़िन्दा मिसाल हैं। उनकी ग़ज़लों को पढ़ते हुए कभी-कभी ऐसा भी महसूस होता है, जैसे वे धूमिल और मुज़्तिबोध की रचनात्मकता के बीच एक नया रास्ता तलाश कर रहे हों। यथार्थ और कल्पनाशीलता के ज़रिये वे नये ज़माने की नयी रचनाशीता को प्रस्तुत करते हैं।

'कल्पना' पत्रिका में प्रकाशित 'दुष्यन्त कुमार का आत्मकथ्य' में दुष्यन्त लिखते हैं—'सिर्फ़ पोशाक या शैली बदलने के लिए मैंने ग़ज़लें नहीं लिखीं, उसके कई कारण हैं, जिनमें सबसे मुज़्य है कि मैंने अपनी तकलीफ़ को... जिससे सीना फटने लगता है, ज़्यादा से ज़्यादा सचाई और समग्रता के साथ, ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल कही है।'

दुष्यन्त अपने आत्मकथ्य में यह भी व्यज़्त करते हैं—'ग़ज़ल लिखने या कहने के पीछे एक जिज्ञासा अज़्सर मुझे तंग करती रही है और वह ये कि भारतीय कवियों में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपनी पीड़ा की अभिव्यज़्ति के लिए ग़ज़ल माध्यम ही ज़्यों चुना? और अगर ग़ज़ल के माध्यम से ग़ालिब अपनी पीड़ा को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं, तो मेरी दुहरी तक़लीफ़ (जो व्यज़्तिगत भी है, सामाजिक भी)। इस माध्यम के सहारे एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक वर्ग तक ज़्यों नहीं पहुँच सकती?'

ग़ौरतलब है कि दुष्यन्त को अपनी पीड़ा की अभिव्यज़्ति के लिए ग़ज़ल माध्यम सर्वथा उपयुज़्त लगा। कविता में उन्हें एकरसता दिखाई दी। वे अपनी ग़ज़लें 'व्यापक पाठकवर्ग' तक पहुँचाना चाहते थे। ग़ज़ल को वे मंचीय ग़ज़ल बनाने के पक्ष में नहीं थे। वे श्रोताओं की बात नहीं करते पाठक वर्ग की बात करते हैं। दुष्यन्त का आत्मकथ्य कई मायनों में महज़्व का विषय है। ख़ास तौर से हमारे समय के ग़ज़लकारों के लिए जो संशय, संकट और दिक़्क़तें आज हिन्दी ग़ज़लकारों में दिखाई दे रही हैं, वे दुष्यन्त के मन में भी थीं। संशय भाषा को लेकर भी था। वे अपने आत्मकथ्य में आगे लिखते हैं—

'मेरी दिक़्क़त यह थी कि उर्दू मैं जानता नहीं और हिन्दी में मुझे वह चुहल, वह मुहावरा और बोलचाल का वह बहाव नहीं मिला, जिसके सहारे ग़ज़लें कहीं जाती हैं। मगर यही अज्ञानता मेरे लिए शज़्ति बन गयी। ज़्योंकि मुझे लगा कि आम आदमी एक मिली-जुली ज़बान बोलता है। इसलिए मैंने उस भाषा की तलाश की जो हिन्दी को हिन्दी और उर्दू की उर्दू दिखाई दे।'

दुष्यन्त का आत्मकथ्य एकरसता के विपरीत समाज के साथ संवाद स्थापित करने वाली ग़ज़ल-विधा के विषय में है। वे भाषा, मुहावरा, मिज़ाज के अतिरिज़्त इस बात को भी सांकेतिक रूप से व्यज़्त करते हैं कि ग़ज़ल कहने के लिए शिद्दत की तड़प, बेचैनी और बेकली ज़रूरी है। उनका आत्मकथ्य, हमारे दौर के ग़ज़लकारों के लिए महज़्वपूर्ण 'नोट' की भाँति है कि ग़ज़ल की भाषा कैसी होनी चाहिए! ग़ज़ल के कथ्य के विषय में उन्होंने लिखा था—

'कथ्य के स्तर पर इनमें मौजूदा हालात की बात कही गयी है। जो दृश्य सामने है, वह जो सामने होना चाहिए। उसकी ज़रूरत समाज का जूझता और टूटता हुआ रूप, राजनीति और राजनीतिज्ञों को मुल्क और समाज के साथ सुलूक, अवाम की ज़िन्दगी, ज़रूरतें और उसके ख़तरे... इन सबको मैंने इन ग़ज़लों में बाँधा है।'

दुष्यन्त ने समाजी और सियासी विद्रूपता और विडज़्बनाओं को ग़ज़लों में करीने से, सलीके से प्रस्तुत किया। वे इस बात से सचेत ज़रूर थे कि ग़ज़लें सपाट न हो जाएँ; जबकि राजनीतिक रचनाएँ अज़्सर सपाटबयानी की ज़द में आ जाती हैं। दुष्यन्त अपनी ग़ज़लों को स्थूलता से बचाते हैं, ज़्योंकि ग़ज़ल के माध्यम को उन्होंने बख़ूबी समझा और फिर उसका सूक्ष्मता से निर्वाह किया। लेकिन उनके बाद के ग़ज़लकारों ने वही विषय चुने, जो दुष्यन्त की ग़ज़लों में थे। ग़ज़लों के लिए आवश्यक अतिरिज़्त सूझबूझ, शज़्द-चयन में सतर्कता और यथार्थ की गहरी समझ दुष्यन्त में थी। वे कविता, उपन्यास और नाटक की भाषा, संरचना, मुहावरे और प्रतीकों से परिचित थे। कथ्य का ठोसपन ज़्या होता है और उसे किस प्रकार लोच तथा लय के साथ अश्आर में प्रस्तुत करना होता है, इस बात का उन्हें बेहतर इल्म था। तभी तो उनके शे'र कथ्यहीन न होकर यथार्थपरक और कल्पनाशील होते हैं। उदाहरण—

*ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा*
*मैं सजदे में नहीं था आपको धोखा हुआ होगा*

शे'र में अपने प्रति किया गया व्यंग्य है, जो गहरी वेदना तक पहुँचता है। बदलते समय के मंज़र को वे इन अश्आर... के ज़रिये व्यज़्त करते हैं—

*कुछ दोस्तों में वैसे मिरासिम नहीं रहे*
*कुछ दुश्मनों से वैसी अदावत नहीं रही*

...

*कभी मचान पे चढ़ने की आरज़ू की है*
*कभी ये डर कि ये सीढ़ी फिसल न जाये कहीं*

मनुष्य का द्वन्द्व और दुविधा तथा संशय उपरोक्त शे'र में शिद्दत के साथ उभरते हैं। दुष्यन्त की ग़ज़लों के कुछ अश्आर बेहद तीक्ष्ण चुभन पैदा करते हैं। ये राजनीतिक शे'र हैं। इनमें सियासददानों की निस्संगता का भाव है तो अवाम की तक़लीफ़ों का भी—

*भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ*
*आजकल दिल्ली में है ज़ेरे-बहस ये मुद्दआ*

...

*पक्ष और प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं*
*बात इतनी है कि कोई पुल बना है*

...

*सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं*
*मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए*

दुष्यन्त की ग़ज़लों में राजनीतिक चेतना है, लेकिन यह ग़ज़लें नारों में नहीं बदलतीं, इसलिए यह ग़ज़लें आज तक ज़िन्दा हैं। यह ग़ज़लें उद्वेलित करती हैं। मन को परेशान ही नहीं, प्रश्नाकुल भी बनाती हैं। ये ग़ज़लें जज़्बात की रौ में लिखी गयी भावुक और रूमानी ग़ज़लें नहीं। रोमान से पूरी तरह मुक्त हों ऐसा भी नहीं। लेकिन रूमानियत में भी यथार्थ की आहट को महसूस किया जा सकता है। कुछ शे'र मुलाहिजा हो—

*मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,*
*हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए*

...

*दुख को बहुत सहेज के रखना पड़ा हमें*
*सुख तो किसी कपूर की टिकिया-सा उड़ गया*

...

*आपके कालीन देखेंगे किसी दिन*
*इस समय तो पाँव कीचड़ में सने हैं*

दुष्यन्त की ग़ज़लों में सम्बोधन हैं। वे समाज, अवाम, लोग, दोस्त यहाँ तक कि प्रेमिका को भी सम्बोधित करते हुए शे'र कहते हैं—

*तू किसी रेल-सी गुज़रती है*
*मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ*

यह सम्बोधन यक़ीनी तौर पर संवाद की सूरत पैदा करते हैं। अपने साथ इन्वॉल्वमेंट पैदा करते हैं। दुष्यन्त ने जिस दुहरी तक़लीफ़ (व्यक्तिगत और समाजिक) की बात अपने 'आत्मकथ्य' में की थी, वह ज़्यादा सामाजिक बन गयी। दुष्यन्त की निजता और अपनी पीड़ा अवाम की आँखों में आँखें डालने से साफ़ नज़र आती है। उदाहरण के तौर पर कुछ शे'र देखिए—

*जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में*
*हम नहीं है आदमी, हम झुनझुने हैं*

...

*रोज़ जब रात को बारह का गजर होता है*
*यातनाओं के अँधेरे में सफ़र होता है*

...

*मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ*
*हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है*

दुष्यन्त अपनी ग़ज़लों में निजता को तोड़ते हुए ग़ज़ल को करोड़ों लोगों की आवाज़ में बदल देते हैं। यह क्रान्तिकारी परिवर्तन वही कवि कर सकता है जिसमें मानवतावाद हो, मनुष्य के प्रति गहरा जज़्बा और विसंगतियों पर प्रहार करने की ताक़त हो।

दुष्यन्त ने हिन्दी ग़ज़ल को एक नयी दिशा दी है। यह सवाल बेमानी है कि दुष्यन्त न होते तो क्या हिन्दी ग़ज़ल होती? वह होती ज़रूर, लेकिन किसी झिझक के साथ। छितरी हुई। कमज़ोर-सी आवाज़... लेकिन दुष्यन्त ने ग़ज़ल को जो भाषा, जो मुहावरा, जो मिज़ाज दिया, वही हिन्दी ग़ज़ल के लिए विकास के द्वार खोलता प्रतीत हुआ, दुष्यन्त के बाद ग़ज़ल लिखने वालों का इतना बड़ा समुदाय दुष्यन्त से प्रभावित ही नहीं, अनुगृहीत भी है।

दुष्यन्त के बाद समय में बदलाव आया है। यथार्थ में परिवर्तन और नये-नये यथार्थ के विभिन्न मंज़र, जिसमें बाज़ारवाद की छायाएँ मौजूद हैं, हमारे दौर के ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों में उसका प्रयोग किस प्रकार कर रहे हैं, इसका मूल्यांकन ज़रूरी है। हिन्दी ग़ज़ल का परिदृश्य, मिज़ाज, प्रवृत्तियाँ, धाराएँ इन सबकी जाँच-परख, निरीक्षण तथा मूल्यांकन ज़रूरी प्रतीत होता है। हिन्दी ग़ज़ल ने लम्बा सफ़र तय किया है। अत: उसकी विकास यात्रा का यह समय, परख का समय है।

भारतेन्दु 'रसा' से लेकर शमशेर बहादुर सिंह तक की ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़ल की ज़मीन तैयार ज़रूर करती हैं। लेकिन वे परम्परा नहीं बनतीं। परम्परा बनती हैं दुष्यन्त की ग़ज़लें। चूँकि दुष्यन्त की ग़ज़लों से हिन्दी ग़ज़ल प्रभावित होती है और इसी मक़ाम से हिन्दी ग़ज़ल का सफ़र शुरू होता है।

# दुष्यन्त कुमार

## दरख़्तों के साये में धूप

कहाँ तो तय था चिराग़ाँ हर एक घर के लिए
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए

यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है
चलो, यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए

न हो कमीज़ तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफ़र के लिए

ख़ुदा नहीं, न सही, आदमी का ख़्वाब सही
कोई हसीन नज़ारा तो है नज़र के लिए

वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता
मैं बेक़रार हूँ आवाज़ में असर के लिए

तेरा निज़ाम है सिल दे ज़ुबान शायर की
ये एहतियात ज़रूरी है इस बहर के लिए

जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले
मरें तो ग़ैर की गलियों में गुलमोहर के लिए

## पीर पर्वत-सी

हो गयी है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए

आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए

## बाढ़ की सम्भावनाएँ

बाढ़ की सम्भावनाएँ सामने हैं
और नदियों के किनारे घर बने हैं

चीड़-वन में आँधियों की बात मत कर
इन दरख़्तों के बहुत नाज़ुक तने हैं

इस तरह टूटे हुए चेहरे नहीं हैं
जिस तरह टूटे हुए ये आईने हैं

आपके क़ालीन देखेंगे किसी दिन
इस समय तो पाँव कीचड़ में सने हैं

जिस तरह चाहो बजा लो इस सभा में
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं

अब तड़पती-सी ग़ज़ल कोई सुनाये
हमसफ़र ऊँघे हुए हैं अनमने हैं।

## वो सब के सब परीशाँ है

ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा
मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा

ग़ज़ब ये है कि अपनी मौत की आहट नहीं सुनते
वो सब-के-सब परीशाँ हैं वहाँ पर क्या हुआ होगा

तुम्हारे शहर में ये शोर सुन-सुनकर तो लगता है
कि इनसानों के जंगल में कोई हाँका हुआ होगा

कई फ़ाके बिताकर मर गया, जो उसके बारे में
वो सब कहते हैं अब, ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा

यहाँ तो सिर्फ़ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं
ख़ुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा

चलो, अब यादगारों की अँधेरी कोठरी खोलें
कम-अज-कम एक वो चेहरा तो पहचाना हुआ होगा

## नज़रों में आ रहे हैं नज़ारे बहुत बुरे

हालाते जिस्म, सूरते जाँ, और भी ख़राब
चारों तरफ़ ख़राब, यहाँ और भी ख़राब

नज़रों में आ रहे हैं नज़ारे बहुत बुरे
होंठों में आ रही है ज़ुबाँ और भी ख़राब

पाबन्द हो रही है रवायत से रौशनी
चिमनी में घुट रहा है धुआँ और भी ख़राब

मूरत सँवारने में बिगड़ती चली गयी
पहले से हो गया है जहाँ और भी ख़राब

रौशन हुए चिराग़ तो आँखें नहीं रहीं
अंधों को रोशनी का गुमाँ और भी ख़राब

आगे निकल गये हैं घिसटते हुए क़दम
राहों में रह गये हैं निशाँ और भी ख़राब

सोचा था उनके देश में महँगी है ज़िन्दगी
पर ज़िन्दगी का भाव वहाँ और भी ख़राब

## सन्दूक से वे ख़त तो निकालो यारो

ये जो शहतीर है पलकों पे उठा लो यारो
अब कोई ऐसा तरीक़ा भी निकालो यारो

दर्दे दिल वक़्त को पैग़ाम भी पहुँचाएगा
इस कबूतर को ज़रा प्यार से पालो यारो

लोग हाथों में लिये बैठे हैं अपने पिंजरे
आज सय्याद को महफ़िल में बुला लो यारो

आज सीवन को उधेड़ो तो ज़रा देखेंगे
आज सन्दूक से वे ख़त तो निकालो यारो

रहनुमाओं की अदाओं पे फ़िदा है दुनिया
इस बहकती हुई दुनिया को सँज़ालो यारो

कैसे आकाश में सूराख़ नहीं हो सकता
एक पत्थर तो तबीअत से उछालो यारो

लोग कहते थे कि ये बात नहीं कहने की
तुमने कह दी है तो कहने की सज़ा लो यारो

## मिट्टी का भी घर होता है

रोज जब रात को बारह का गजर होता है
यातनाओं के अँधेरे में सफ़र होता है

कोई रहने की जगह है मेरे सपनों के लिए
वो घरौंदा सही, मिट्टी का भी घर होता है

सिर से सीने में कभी, पेट से पाँवों में कभी
एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है

ऐसा लगता है कि उड़कर भी कहाँ पहुँचेंगे
हाथ में जब कोई टूटा हुआ पर होता है

सैर के वास्ते सड़कों पर निकल आते थे,
अब तो आकाश से पथराव का डर होता है

## गोपाल दास नीरज

एक जुग बाद शबे-ग़म की सहर देखी है
देखने की न थी उज़्मीद मगर देखी है

जिसमें मज़हब के हर इक रोग का लिज़्खा है इलाज
वो किताब हमने किसी रिन्द के घर देखी है

ख़ुदकुशी करती है आपस की सियासत कैसे
हमने ये फ़िल्म नयी ख़ूब इधर देखी है

दोस्तो! नाव को अब ख़ूब सँभाले रखियो
हमने नज़दीक ही इक ख़ास भँवर देखी है

उसको ज़्या ख़ाक शराबों में मज़ा आएगा
जिसने इक बार भी वो शोख़ नज़र देखी है

**2**

ख़ुशबू-सी आ रही है इधर जाफ़रान की
खिड़की खुली है फिर कोई उनके मकान की

हारे हुए परिन्द ज़रा उड़के देख तो
आ जाएगी ज़मीन पे छत आसमान की

बुझ जाये सरेशाम ही जैसे कोई चिराग़
कुछ यूँ है शुरूआत मेरी दास्तान की

ज्यों लूट लें कहार ही दुलहिन की पालकी
हालत यही है आजकल हिन्दोस्तान की

'नीरज' से बढ़के और धनी कौन है यहाँ
उसके हृदय में पीर है सारे जहान की

**3**

हम तेरी चाह में ऐ यार! वहाँ तक पहुँचे
होश ये भी न जहाँ है कि कहाँ तक पहुँचे

इतना मालूम है ख़ामोश है सारी महफ़िल
पर न मालूम ये ख़ामोशी कहाँ तक पहुँचे

वो न ज्ञानी, न वो ध्यानी, न बिरहमन, न वो शेख़
वो कोई और थे जो तेरे मकाँ तक पहुँचे

एक इस आस पे अब तक है मेरी बन्द ज़ुबाँ
कल को शायद मेरी आवाज़ वहाँ तक पहुँचे

चाँद को छूके चले आए हैं विज्ञान के पंख
देखना ये है कि इंसान कहाँ तक पहुँचे

**4**

तमाम उम्र मैं इक अजनबी के घर में रहा
सफ़र न करते हुए भी किसी सफ़र में रहा

वो जिस्म ही था जो भटका किया ज़माने में
हृदय तो मेरा हमेशा तेरी डगर में रहा

तू ढूँढ़ता था जिसे जा के बृज में गोकुल में
वो श्याम तो किसी मीरा की चश्मे-तर में रहा

वो और ही थे जिन्हें थी ख़बर सितारों की
मेरा ये देश तो रोटी की ही ख़बर में रहा

हज़ारों रत्न थे उस जौहरी की झोली में
उसे कुछ भी न मिला जो अगर-मगर में रहा

# हिन्दी वाङ्मय और ग़ज़ल

एहतराम इस्लाम

ज़्या ग़ज़ल को हिन्दी के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए ? यह प्रश्न यदि हिन्दी के पाठकों और ग़ज़ल प्रेमियों के मन-मस्तिष्क में उमड़ने-घुमड़ने लगे और इस हद तक उमड़ने-घुमड़ने लगे कि 'गुफ़्तगू' जैसी प्रमुख कविता-प्रधान पत्रिका को इस प्रश्न को केन्द्र में रखकर परिचर्चा आयोजित करवाने की आवश्यकता महसूस करनी पड़ जाए (गुफ़्तगू जुलाई-सितज़्बर 2009 अंक) तो समझ लेना चाहिए कि ग़ज़ल हिन्दी कविता की ज़मीन पर समुचित यात्रा तय करते हुए अब उस मुक़ाम पर आ पहुँची है, जहाँ उसे उन अधिकारों से वंचित रखा जाना जो उसके अतिरिज़्त अन्य सहगामी काव्य-विधाओं को प्राप्त है, उसके प्रति घोर अन्याय का दृष्टान्त ही कहलाएगा। वैसे जहाँ तक मेरा आकलन है, ग़ज़ल आज सज़्पूर्ण हिन्दी वाङ्मय में पूरी तरह समादृत है। गज़्भीर कविता के मंचों पर उसे सज़्मानित स्थान प्राप्त है तो पत्र-पत्रिकाओं में से अधिकांश के द्वारा उसका स्वागत कहीं वरीयता तो कहीं समानता के धरातल पर होता दिखायी देता है। आकशवाणी और दूरदर्शन पर वह उन्मुज़्त होकर अपना जलवा बिखेर रही है। ऑडियो-वीडियो कैसेटों के मामले में तो शायद उसे वर्चस्व ही प्राप्त है। ले-दे के पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने का प्रश्न उठाया जा सकता है और जो उठा भी दिया गया है लेकिन यह प्रश्न भी मेरी दृष्टि से किसी बड़ी आजमाइश की ओर संकेत नहीं करता ज़्योंकि ग़ज़ल को पाठ्यक्रमों में शामिल किए जाने का सिलसिला भी पहले ही शुरू किया जा चुका है। डॉ. रमा सिंह ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी ग़ज़ल नवम्दशक' (प्रकाशन वर्ष 1996) में लिखा है। आजकल विभिन्न प्रान्तीय बोर्डों में हिन्दी के पाठ्यक्रमों में ग़ज़लें पढ़ाई जाने लगी हैं। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल विधा को स्वीकृति प्रदान की गयी है।

सीबीएसई की इंटरमीडिएट परीक्षा के लिए तैयार की गयी हिन्दी की एक पाठ्य-पुस्तक, पाँच-छह वर्ष पूर्व मेरी निगाह से भी गुज़री, जिसमें दुष्यन्त कुमार की ग़ज़ल और उनका संक्षिप्त परिचय मौजूद था। अब पाठ्यक्रम रोज़-रोज़ तो नहीं तैयार किए जाते कि अचानक हमें हर जगह हिन्दी पाठ्यक्रमों में ग़ज़ल दिखायी देने लग जाए। मेरा विचार है कि अगले दस-पन्द्रह वर्षों के दौरान ग़ज़ल को उसका यह अधिकार भी बड़ी आसानी के साथ मिल जाएगा और यह सब मैं हवा में हरगिज़ नहीं कह रहा हूँ बल्कि मेरी निगाह में विश्वविद्यालय स्तर तक इस दिशा में विकसित होता हुआ परिवेश भी एक ठोस हक़ीक़त के रूप में मौजूद है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में ग़ज़ल को हिन्दी कविता की एक स्थापित विधा की हैसियत देते हुए उसके विविध आयामों पर पी.एच-डी और डी.लिट्. स्तर के छात्रों द्वारा विगत वर्षों में सज़्पन्न और वर्तमान में जारी शोध कार्य ज़्या इस बात का प्रमाण नहीं कि उसका पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना उच्चस्तरीय शैक्षिक संस्थानों की परियोजना का हिस्सा पहले ही बन चुका है। इस सन्दर्भ में डॉ. रमा सिंह की पूर्व सन्दर्भित पुस्तक से एक और उद्धहरण की प्रस्तुति समीचीन ठहरेगी। ''हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में ग़ज़ल की प्रसिद्धि एवं उसके प्रति हिन्दी के मनीषियों की अभिरुचि का एक प्रमाण यह भी है कि इन दिनों विभिन्न विश्वविद्यालयों से ग़ज़ल पर हिन्दी में अनेक शोध कार्य सज़्पन्न हो चुके हैं और कुछ विश्वविद्यालयों में इस समय भी हो रहे हैं। जो शोध कार्य हो चुके हैं, उनमें से रोहिताश्व अस्थाना द्वारा किया गया शोध 'हिन्दी ग़ज़ल:उद्भव और विकास' प्रकाशित भी हो चुका है। ग़ज़ल पर कार्य करने वाले अन्य शोधार्थियों में सरदार मुजावर, मंजु गुप्ता आदि प्रमुख हैं।''

उपर्युज़्त तथ्यों से यह बात पूर्णतया स्पष्ट है कि ग़ज़ल आज हिन्दी की एक प्रतिष्ठित विधा के रूप में सर्वत्र मान्य है। हाँ, यह सवाल ज़रूर सर उठाता है कि जिस विधा को इतनी आसानी से स्वीकृति दे दी गयी उसकी

ओर समालोचना के स्तर पर ध्यान देने की आवश्यकता ज़्यों नहीं महसूस की गयी। ग़ज़ल की गरिमा, गाज़्भीर्य और आभा को बचाए रखने का प्रयास कुछ चिन्तनशील रचनाकारों ने अपने तौर पर तो किया लेकिन वह अपर्याप्त साबित हुआ और हमारे सामने अधकचरी ग़ज़लों का अज़्बार लगता चला गया। अधकचरी ग़ज़लों का अज़्बार लगा तो लगा, कष्टकर यह है कि उस अज़्बार के नीचे साफ़-सुथरी ग़ज़लों की थाती भी दबी की दबी रह गयी। उन दबी हुई ग़ज़लों को कौन चिन्हित करेगा? अधकचरी ग़ज़लों की शिकायत ज़रा सज़्भले हुए स्वर में डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ ने भी की है। ''हिन्दी में ग़ज़लें थोक के भाव में लिखी गयी हैं। अनेक पुस्तकें और आलेख रचनाकारों को ग़ज़ल के शास्त्र से परिचित करा रहे हैं। फिर भी बहुत कम ग़ज़लें पाठकों की स्मृति में स्थान बना पाने में सक्षम सिद्ध होती हैं।'' (काव्या अप्रैल-जून 2009 अंक)। ऐसा स्वयं को, येन केन प्रकारेण, ग़ज़लकार मनवाने की प्रवृज़ि के कारण ही हो रहा है। यह प्रवृज़ि लोगों को ग़ज़ल शीर्षक से कुछ भी ऊटपटांग लिखकर प्रस्तुत कर देने पर उकसाती है।

*ग़ज़ब है यह, ग़ज़ल वालों के हाथों,*
*ग़ज़ल के साथ धोखा हो रहा है।*

—एहतराम इस्लाम

चलिए, ऐसा है तो है। इस अराजकता को हमें यह सोचकर सहन कर लेना चाहिए कि आँधी जब चलती है तो बुलन्दी पर शुष्क तृण, पीले मुरझाए पज़े और भारहीन खरपतवार ही उड़ते हुए दिखायी देते हैं, कोमल कलिकाएँ, हँसते हुए फूल और हरी कोंपलें नहीं। ग़ज़ल हिन्दी कविता के आकाश में आँधी ही की तरह आयी। तभी तो वह इतनी जल्द सर्वत्र व्याप्त हो गयी। लेकिन अब आँधी गुज़र चुकी है। आकाश स्वच्छ हो चुका है। इसलिए हमें मानना चाहिए कि वह समय आ गया है कि हम चारों ओर बिखरे हुए कचरे की सफ़ाई करवा के, हिन्दी ग़ज़ल के अपने 'फ़ैज़' और 'फ़िराक़' और उससे भी आगे बढ़कर 'मीर' और 'ग़ालिब' के आगमन का मार्ग प्रशस्त करने की चिन्ता करें।

'मीर' और 'ग़ालिब' का हवाला आ गया है तो मुझे स्वाभाविक रूप से वर्ष 1993 में प्रकाशित स्वयं के ग़ज़ल-संग्रह 'है तो है' में प्रकाशित अपने लेखकीय वज़्तव्य की याद हो आयी है, जिसमें मैंने हिन्दी ग़ज़ल की स्थापना के प्रति अपना विश्वास व्यज़्त किया था। पेश है वज़्तव्य का एक अंश— ''हिन्दी ग़ज़ल को अपने 'मीर' और 'ग़ालिब' की प्रतीक्षा एक लज़्बे समय तक करनी पड़ सकती है, लेकिन वातावरण जिस तेज़ी से उसके पक्ष में बनता नज़र आ रहा है, उससे यही लगता है कि आने वाले दिन ग़ज़ल ही के होंगे और वह हिन्दी काव्य की सर्वप्रिय विधा के रूप में जल्द ही प्रतिष्ठित हो पाएगी। न केवल यह कि हिन्दी कवियों की एक बड़ी संज़्या ग़ज़ल की केश-सज्जा में लीन हो चुकी है, बल्कि उनके द्वारा रचित ग़ज़लों को गज़्भीरता से लिया भी जा रहा है। पत्र-पत्रिकाओं ने अपने द्वार ग़ज़ल के लिए न सिर्फ़ खोल दिये हैं बल्कि वे उसे आदर और सज़्मान भी दे रहे हैं।''

मेरा अनुमान सच निकला और उसे आकार लेने में मात्र डेढ़ दशक का समय लगा। इस बात से मेरा अभिभूत होना सहज स्वाभाविक है। मेरे मुख से निकली एक और बात आज वास्तविकता में ढलती नज़र आ रही है, उसे भी आप तक पहुँचाना श्रेयस्कर होगा। बात सज़्भवतः वर्ष 1971 की है। तब एक सक्रिय एवं जुझारू कवि कर्मचारी नेता के रूप में सुपरिचित और आज ग़ज़ल के सशज़्त हस्ताक्षर सुरेश कुमार शेष, जिनकी ग़ज़लों का संग्रह 'मौसम के हवाले से' अपने मुद्रण के पूर्व ही मित्रों के बीच चर्चा का विषय बना हुआ है, लखनऊ से स्थानान्तरित होकर इलाहाबाद में नये-नये आये थे और मेरी उनसे ताज़ा-ताज़ा हुई पहचान, मैत्री का रूप धरने के लिए बेचैन नज़र आने लगी थी। मुझे समझने-परखने के क्रम में उन्होंने एक दिन यूँ ही एक सवाल दाग दिया। ''एहतराम साहब, स्कूलों और कॉलेजों में उर्दू जिस तरह ग़ायब हुई है और अपना अधिकांश धार्मिक साहित्य उर्दू में रखने के बावजूद, जिस तरह मुसलमान समुदाय उर्दू के पठन-पाठन के प्रति उदासीन हुआ है, उसे देखते हुए आप हिन्दुस्तान में उर्दू के भविष्य के बारे में ज़्या कहना चाहेंगे?'' ''उज्ज्वल! उज्ज्वल है उर्दू का भविष्य हिन्दुस्तान में'' मेरे जवाब ने, लज़्हाती तौर पर ही सही, उन्हें एक झटके से, हैरत में डाल दिया। 'शेष' मेरा मुँह ताकने लगे, विस्फारित नेत्रों के साथ, बिना कुछ बोले। उनकी इस हालत का मतलब था, ''यह कैसे कह सकते हैं आप?'' उनके मन में शायद मेरे निज़्नलिखित अशआर ने धमा-चौकड़ी मचा दी थी।

*आँखों में भड़कती हैं आक्रोश की ज्वालाएँ*
*हम लाँघ गए शायद संतोष की सीमाएँ*
*याद तेरी रातभर का जागरण दे जाएगी*
*स्वप्न की भाषा को लेकिन व्याकरण दे जाएगी*

'शेष' बज़ां तौर पर सोच रहे थे कि जो शायर उर्दू के भविष्य के प्रति इतना आश्वस्त है, वह उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत, उपर्युज़्त अश्आर की तर्ज़ के, संस्कृत मूल की तत्सम शज़्दावली से अनुप्रमाणित अश्आर कहने-रचने की ओर कैसे प्रवृज़ है। इस गुत्थी को सुलझाने की दृष्टि से मैंने कहा कि मोटे तौर पर इसके मूल में दो कारण हैं— पहला, इस दावे को ग़लत साबित करना कि तत्सम-शज़्दावली के परिधान में भी ग़ज़ल आकर्षक दिखायी दे सकती है। सौभाग्य से मैं अपने दोनों उद्देश्यों में सफल ठहरा और मेरे कथन को न केवल व्यापक सर्मथन प्राप्त हुआ वरन् अनेक प्रतिभा सज़्पन्न ग़ज़लकारों ने उससे प्रेरित होकर अपनी ग़ज़लों में तत्सम शज़्दावली के प्रयोग का प्रतिभा सज़्पन्न ग़ज़लकारों ने प्रचलन भी किया। विलक्षण क्षमताओं से समृद्ध उर्दू के सुपरिचित युवा कवि नैयर आक़िल (जिन्हें मरहूम लिखते हुए लेखनी काँप उठती है) ने तो मेरे प्रयोग को 'ग़ज़ल की एहतरामी धारा' की संज्ञा भी दे डाली। इलाहाबाद में जिन ग़ज़लकारों ने मेरा सहयात्री होना पसन्द किया उनमें वसु मालवीय, अहमद अबरार, सुरेश कुमार शेष, नैयर आक़िल, संजय मासूम, अजित शर्मा आकाश, निर्मल शुज़्ल, अनूप कुमार अन्दाज़ और रमेश नाचीज़ का नाम प्रमुखता से गिनवाया जा सकता है। हिन्दी शज़्दावली (जिसे मैंने अब तक तत्सम शज़्दावली के नाम से पुकारा है) के प्रयोग को सार्थकता की सनद डॉ. जगदीश गुप्त ने इन शज़्दों में दी। ''एहतराम इस्लाम ने हिन्दी की शज़्दावली को ग़ज़ल के पैरहन में नयी दीप्ति देकर प्रस्तुत किया है और अपनी अलग पहचान बनायी है, इसमें सन्देह नहीं।'' (उन्नयन कविता विशेषांक— 1982)।

भाषा, दरअसल, अपनी स्वयं की शक्ति और वैशिष्ट्य के सहारे प्रगति करती है और उर्दू की शक्ति और माधुर्य के प्रति मैं सदैव आश्वस्त रहा हूँ। मैं ही क्या एक ज़माना उर्दू के वैयक्तिक आकर्षण का साक्षी रहा है।

आपको लग रहा होगा कि मैं शेष जी की जिज्ञासा को पीछे छोड़कर कहीं और निकल आया हूँ लेकिन ऐसा नहीं है अपितु मामला यह है कि—

*ज़िक्र जब भी छिड़ा क़यामत का*
*बात पहुँची तेरी जवानी तक*

दरअसल भाषा को लेकर मेरी मान्यता कुछ अलग ही है। मुझे लगता है, सरकारी और ग़ैर सरकारी स्तर पर मिलने वाली सुविधाएँ किसी भाषा का मार्ग सुगम तो कर सकती हैं लेकिन सुविधाओं का अभाव उसके वजूद की विस्फीति का कारण कभी नहीं बन सकता।

भाषा, दरअसल, अपनी स्वयं की शक्ति और वैशिष्ट्य के सहारे प्रगति करती है और उर्दू की शक्ति और माधुर्य के प्रति मैं सदैव आश्वस्त रहा हूँ। मैं ही क्या एक ज़माना उर्दू के वैयक्तिक आकर्षण का साक्षी रहा है। सरे-दस्त अगर एक अदद गवाही से काम चल सके तो मैं सुप्रसिद्ध कथा-लेखिका ममता कालिया को गवाह के रूप में पेश कर सकता हूँ, जिन्होंने अपने 'प्रेम-कहानी' शीर्षक उपन्यास में एक पात्र से एक स्थान पर कहलवाया है "यार! ऐसी नफ़ीस भाषा में लिखता है फ़रीदा का भाई कि मर-मर जाती हूँ मैं। यों ही नहीं, फ़िल्म वाले उर्दू पर फ़िदा हैं।" इसके अतिरिक्त मुझे हिन्दी का विकास भी प्रकारान्तर से उर्दू का ही विकास नज़र आता है। कारण यह कि राजनीतिक बाज़ीगरों और तथाकथित विद्वानों की भारी-भरकम बहसों का ख़ुलासा भले ही इस रूप में होता रहा हो कि उर्दू और हिन्दी की जड़ें अलग-अलग ज़मीनों में हैं (कभी-कभी तो उर्दू के विदेशी भाषा होने का नारा भी बुलन्द किया जाने लगता है)। लेकिन सचाई यह है कि आम लोगों की जुबान पर न तो "व्योम पे चन्द्रमा एवं उडुगन दैदीप्यमान हैं।" जैसे वाक्य चढ़ पाते हैं और न "चर्ख़ पर माह-ओ-अंजुम ज़ौबार हैं," जैसे। अवाम की जुबान तो "आसमान पर चाँद-तारे चमक रहे हैं," जैसे वाक्यों की आदी है। और जब तक भाषा की इस तीसरी शैली से अवाम का मोह भंग नहीं होता तब तक हिन्दी भी ज़िन्दा रहेगी और उर्दू भी। हाँ, स्कूलों, कॉलेजों में उर्दू पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था न होने से उर्दू लिपि से अपरिचय ज़रूर बढ़ा है लेकिन उर्दू प्रेमी अच्छी संख्या में निजी प्रयास से लिपि भी सीख ही लेते हैं। मैं ऐसे अनेक मित्रों से वाक़िफ़ हूँ जिन्होंने गृहस्थ जीवन की आपाधापी से गुज़रते हुए भी महज़ अपने शौक़ के लिए न सिर्फ़ उर्दू सीखी वरन् उसमें पढ़ने और लिखने दोनों ही स्तरों पर पर्याप्त महारत भी हासिल कर ली। सुरेन्द्र राही और अनिल कुमार अन्दाज़ ऐसे ही क़लमकारों में हैं जिन्होंने 30 वर्ष की उम्र पार करने के बाद उर्दू पढ़ना-लिखना सीखा। यह तो हुआ भारत में उर्दू के उज्ज्वल भविष्य के प्रति दशकों पूर्व व्यक्त मेरे विश्वास का आधार जो सच साबित हुआ। उर्दू आज भी अपने वैभव के साथ जीवित है, इस हक़ीक़त के लिए प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं है।

एक बात और याद रखनी चाहिए कि भाषा (या बोली) का सम्बन्ध जहाँ अवाम से है, वहीं उसमें रचा जाने वाला साहित्य कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के प्रयास का फल होता है। सो, इन विशिष्ट व्यक्तियों के प्रयास में भाषा की उपर्युक्त तीनों शैलियाँ देखी जा सकती हैं। ग़ज़ल भी निस्सन्देह तीनों शैलियों को अपनाकर चल रही है। इस सम्बन्ध में सुपरिचित ग़ज़लकार और आलोचक कमलेश भट्ट 'कमल' के विचार ध्यातव्य हैं। वे गीतकार किशन स्वरूप की ग़ज़ल पुस्तक पर टिप्पणी करते हुए फ़रमाते हैं, "समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य पर ग़ज़ल कई धाराओं में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। इन धाराओं में से ही एक धारा ऐसी है, जिसके रचनाकार उर्दू ग़ज़ल से कहीं गहरे तक प्रेरित और अनुप्राणित हैं। ये रचनाकार लगभग शाइरों वाली भाव-भंगिमा तथा भाषा में अपनी अभिव्यक्ति को मुखर कर रहे हैं। यह अलग बात है कि इनमें से ज़्यादातर को उर्दू भाषा, लिपि और उसके संस्कारों की जानकारी बहुत कम है और इस कारण से उनके भाषाई प्रयोगों और शिल्प में कहीं-कहीं लड़खड़ाहट भी दिखायी देती है।" (गुफ़्तगू: दिसम्बर 2008 अंक)

कमलेश भट्ट 'कमल' की यह टिप्पणी सिर्फ़ टिप्पणी करने मात्र के लिए नहीं है। वह ऐसी ठोस बुनियादों पर टिकी है कि उससे असहमति के बिन्दु तलाश कर पाना किसी के लिए सम्भव नहीं हो पाएगा। 'कमल' की स्थापनाओं को प्रमाणित करने के लिए सबसे बड़ा उदाहरण तो हिन्दी में ग़ज़ल के प्रवर्तक और वर्तमान समय के शीर्षस्थ ग़ज़लकार दुष्यन्त कुमार स्वयं हैं। उनके एक मात्र ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप' में शामिल चन्द एक को छोड़कर लगभग सारी ग़ज़लों में प्रयुक्त शब्दावली इस बात का सुबूत मुहैया कराती है कि दुष्यन्त कुमार का रचनाकार "उर्दू ग़ज़ल से कहीं गहरे तक प्रेरित और अनुप्राणित है।" भाषा में आयातित फ़ारसी और अरबी मूल के शब्दों के साथ 'इज़ाफ़त' और 'वाव-ए-अत्फ़' का प्रयोग उसे उर्दू शैली या धारा की पहचान प्रदान करता है। यों भी कह सकते हैं कि हिन्दी में इज़ाफ़त और वाव-ए-अत्फ़ का प्रयोग उसे हिन्दी नहीं रहने देता और दुष्यंत ने 'साये में धूप' की ग़ज़लों में सूरते-जाँ, हालाते-जिस्म, अहले-वतन, रौनक़े-जन्नत, जज़्ब-ए-अमजद, पेशे-नज़र, महवे-ख़्वाब, फ़स्ले-बहार, पाबन्दी-ए-मज़हब, शरीक-ए-जुर्म जैसे 'इज़ाफ़त' युक्त और मस्लहत-आमेज़, ग़ैर-आबाद, तिश्ना-लब, नज़र-नवाज़ जैसे समास-रेखित और तहज़ीब-ओ-तमद्दुन, आरिज़-ओर-रुख़सार, सागर-ओ-मीना, आमद-ओ-रफ़्त, जैसे 'वाव-ए-अत्फ़' वाले दुरारोह शब्द-युग्मकों का प्रयोग धड़ल्ले से किया है। इन

शब्द-युग्मकों को नज़र-अन्दाज़ कर दिया जाये तो भी ''कि मैं उर्दू नहीं जानता'' जैसी घोषणा के बावजूद ग़ज़लों में बरगश्ता, मुरासिम, अलामात, मुजस्सम, सदक़ा और आक़बत जैसे शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग दुष्यन्त कुमार को उर्दू के उन शायरों की पंक्ति में खड़ा करवाने के लिए काफ़ी है जिनके सर पर उर्दू को फ़ारसी-अरबी शब्दों से बोझिल करने का आरोप है। दुष्यन्त पर उर्दू का माहौल ऐसा हावी है कि वे 'होम' और 'हवन' जैसे विशुद्ध संस्कृत शब्दों पर भी 'वाव-ए-अत्फ़' का प्रयोग करते हुए, उनसे 'होमो-हवन' जैसा शब्द-युग्म बनाते हैं। हिन्दी में प्रयुक्त 'मद्धिम' शब्द को वे उर्दू तर्ज़ पर 'मद्धम' लिखने को वरीयता देते हैं। एक अन्य हिन्दी शब्द सिरहाने (छह मात्राओं) को वे सिराने (पाँच मात्राएँ) के वज़न में बाँधते हैं जो स्पष्ट रूप से 'मीर' की सुप्रसिद्ध पंक्ति 'सिरहाने मीर' के आहिस्ता बोलो में 'सिराने' के वज़न पर उसके प्रयोग का अनुकरण है। दुष्यन्त की पंक्ति भी पढ़ ही लीजिए ''कहीं पे शाम सिराने लगा के बैठ गये'' दुष्यंत के विषय में ये सब लिखने का मेरा आशय उन्हें उर्दू का ग़ज़लकार साबित करना कदापि नहीं है लेकिन अगर ऐसा हो जाए तो उनके काँधे पर एक सितारा और टंक जाएगा और वे भी अमीर ख़ुसरो, प्रेमचंद, इंशाअल्ला ख़ान और उपेन्द्र नाथ अश्क की तरह मात्र हिन्दी या मात्र उर्दू के रचनाकार न होकर हिन्दी और उर्दू दोनों के रचनाकार हो जाएँगे।

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों की भाषा-शैली के पुनर्विलोकन का उद्देश्य, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कमलेश भट्ट कमल की इस स्थापना को तथ्यों के आधार पर प्रमाणित करना है कि हिन्दी कविता के परिदृश्य पर वास्तव में ग़ज़ल की एक ऐसी धारा दिखायी देती है, जिसके अधिकतर की बाबत 'कमल' ने यह मत व्यक्त किया है कि उनको उर्दू भाषा, लिपि और उसके संस्कारों की जानकारी बहुत कम है। उनमें दुष्यन्त के होने की कल्पना सपने में भी नहीं की जा सकती। तथापि, उनकी आत्मा से क्षमा-प्रार्थना सहित, यह बात कहने का साहस जुटाना होगा कि अपनी अति संक्षिप्त भूमिका में 'मैं स्वीकार करता हूँ...' शीर्षक के तहत उन्होंने 'शहर' शब्द को लेकर जिस प्रकार की कज़-बहसी (कुतर्क) से काम लिया है, उसने उनकी स्थिति को हास्यास्पद बना दिया है। दुष्यन्त कुमार फ़रमाते हैं 'कुछ उर्दू-दाँ दोस्तों ने कुछ उर्दू शब्दों के प्रयोग पर एतराज़ किया है। उनका कहना है कि शब्द 'शहर' नहीं 'शह्र' होता है।' आगे लिखते हैं कि ''मैं उर्दू नहीं जानता लेकिन इन शब्दों का प्रयोग यहाँ अज्ञानतावश नहीं, जानबूझकर किया गया है। यह कोई मुश्किल काम नहीं था कि 'शहर' की जगह 'नगर' लिखकर इस दोष से मुक्ति पा लूँ, लेकिन मैंने उर्दू शब्दों को उस रूप में इस्तेमाल किया है, जिस रूप में वे हिन्दी में घुल-मिल गये हैं। उर्दू का 'शह्र' हिन्दी में 'शहर' लिखा और बोला जाता है।''

आइए, देखें कि दुष्यन्त अपने दावे की लाज कहाँ तक रख पाये हैं। 'साये में धूप' की पहली और मशहूर ग़ज़ल कहाँ तो तय था चिराग़ां हरेक घर के लिए में इस्तेमाल किए गए क़ाफ़िये घर, भर, सफ़र, नज़र, असर आदि हैं। इन काफ़ियों की पंक्ति में स्थान देने (या खपाने) के लिए किसी भी शाइर की मजबूरी है, चाहे वो दुष्यन्त कुमार हों या मिर्ज़ा ग़ालिब, कि वो शब्द 'शह्र' को 'शहर' का रूप देने का जीवट दिखाएँ। सो दुष्यन्त कुमार ने अपनी उक्त ग़ज़ल के दो अश्आर में, लफ़्ज़ 'शह्र' को, अपने दावे के अनुसार अज्ञानतावाद नहीं, जानबूझकर 'शहर' का रूप दिया और क़ाफ़िये के रूप में प्रयुक्त किया। लेकिन संकलन की तीसरी और 16 वीं ग़ज़ल में उनके दावे और शब्द-ज्ञान दोनों की पोल खुल जाती है, जिसमें वे 'शह्र' को 'शह्र' ही के रूप में इस्तेमाल करने की चूक से स्वयं को बचा नहीं पाते।

तीसरी और सोलहवीं ग़ज़लों के सन्दर्भित अश्आर क्रमशः निम्नवत हैं—

*तुम्हारे शहर में ये शोर सुन-सुनकर तो लगता है*
*कि इन्सानों के जंगल में कोई हांका हुआ होगा*
*शहर की भीड़-भाड़ से बचकर*
*तू गली से निकल रही होगी*

लुत्फ़ की बात यह है कि उपर्युक्त दोनों अश्आर में 'शह्र' शब्द को उसके तत्सम रूप में यानी 'शह्र' उच्चारण के साथ ही इस्तेमाल करने के बावजूद दुष्यंत कुमार ने सम्भवतः अपनी बात ऊपर रखने के उद्देश्य से, लिखा 'शहर' ही है। शब्दों के उच्चारण को लेकर दुष्यंत कुमार के शब्द 'स्मरण' के प्रति उनका रवैया और भी दिलचस्प तथ्य सामने लाता है। मानना चाहिए कि जिस तरह दुष्यंत उर्दू के 'शह्र' को हिन्दी में 'शहर' के रूप में घुला-मिला मानते थे वैसे ही वे 'सुब्ह' को 'सुबह' के रूप में और 'बर्फ़' को 'बरफ़' के रूप में घुला मिला मानते रहे होंगे। सो उनके द्वारा 'सुबह' और 'बरफ़' रूपों का प्रयोग सर्वथा स्वाभाविक माना जा सकता है। उनके अश्आर उदाहरण स्परूप प्रस्तुत हैं—

*हम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत,*
*तुमने बासी रोटियाँ नाहक़ उठाकर फेंक दीं।*

*फिर मेरा ज़िक्र आ गया होगा,*
*वो बरफ़-सी पिघल रही होगी।*

लेकिन संकलन में ही, अन्यत्र वो अपने इस दावे की लाज नहीं रख पाते कि वे उर्दू शब्दों के इस्तेमाल को उसी रूप में उचित मानते हैं जिस रूप में वे हिन्दी में घुल-मिल गये हैं—

*शब ग़नीमत थी लोग कहते हैं,*
*सुब्ह बदमान हो रही है अब।*

*यों मुझको ख़ुद पे बहुत एतबार है लेकिन,*
*ये बर्फ़ आँच के आगे पिघल न जाए कहीं।*

अब आइए दुष्यन्त कुमार के शब्द प्रयोग के हवाले से संस्कृत मूल के शब्द 'स्मरण' का कुशल-क्षेम जानें, जिसे उन्होंने अपने एक शेर में वाचित रूप से 'अस्मरण' बना दिया है।

*वे सम्बन्ध अब तक बहस में टंगे हैं,*
*जिन्हें रात-दिन (अ)स्मरण कर रहा हूँ।*

दुष्यन्त कुमार से यह चूक शायद इसलिए सरज़द हुई कि तीन मात्राओं वाला 'स्मरण' शब्द आम बोलचाल में प्रायः पाँच मात्राओं वाला 'अस्मरण' बनकर ही सामने आता है। यहाँ यह बात स्पष्ट करता चलूँ कि ग़ज़ल में भाषाई और शिल्प सम्बन्धी प्रयोगों पर केन्द्रित उपर्युक्त चर्चा में दुष्यन्त मात्र का सन्दर्भ निस्सन्देह सोद्देश्य है। ग़ज़ल के आम साधकों तक यह

# ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार की कृति

## शहरयार सुनो...

चयनकर्ता : **गुलज़ार**

हिन्दुस्तानी अदब में शहरयार वो नाम है जिसने छठे दशक की शुरुआत में शायरी के साथ उर्दू अदब की दुनिया में अपना सफ़र शुरू किया। शहरयार मानवीय मूल्यों को सबसे ऊपर मानते हैं। वे दो टूक लहज़े में कहते हैं कि हिन्दी और उर्दू अदब के मक़सद अलग नहीं हो सकते। शहरयार को अपनी सभ्यता, इतिहास, भाषा और धर्म से बेहद लगाव है, । शहरयार की शायरी में एक अन्दरूनी सन्नाटा है। फ़ैज़ की साफ़बयानी और फ़िराक़ की गहरी तनक़ीदी और तहज़ीबी कोशिश को उनसे कतरा करके भी शहरयार ने उन्हीं की तरह, लेकिन उनसे अलग वो इशारे पैदा किये हैं जो कविता के इशारे होते हुए भी इनसान के बेचैन इशारे बन जाते हैं— 'ग़मे जाना' के साथ-साथ 'ग़मे दौराँ' के इशारे। शहरयार की ख़ूबी यही है कि उनकी रचना का चेहरा निहायत व्यक्तिगत है, लेकिन उसमें झाँकिए तो अपना और फिर धीरे-धीरे वक़्त का चेहरा झाँकने लगता है। शहरयार ने काल्पनिक सृजन संसार की बजाय दुनिया की असलियत को ग़ज़लों के लिए चुना है।

**मूल्य : 220 रुपये**

## बज़्मे-ज़िन्दगी : रंगे शायरी

**'फ़िराक़' गोरखपुरी**

पचास वर्ष से अधिक की फ़िराक़ की काव्य-यात्रा से चुने हुए रत्नों के इस संकलन 'बज़्मे-ज़िन्दगी : रंगे शायरी' के बारे में स्वयं फ़िराक़ साहब ने कहा था : ''...जिसने इसे पढ़ लिया, उसने मेरी शायरी का हीरा पा लिया।'' इस संकलन में वे ग़ज़लें हैं जिन्होंने फ़िराक को एक ओर मीर और ग़ालिब का समकक्ष और दूसरी ओर ग़ज़ल के रंग और परिवेश को नया रूप देनेवाला क्रान्तिकारी कवि बनाया; वे रुबाइयाँ हैं जिन्होंने एक नारी की कमनीय काया के उभार-उतार की नाजुक-गहरी रेखाओं को, किशोरी, युवती और सुहागन के रूप और सौन्दर्य की भारतीय छवियों को तथा जीवन-दर्शन के सर्वोच्च शिखरों का स्पर्श करनेवाले चिन्तन को मार्मिक अभिव्यक्ति दी; और वे नज़्में हैं जो राष्ट्र के जीवन और नवजागरण के शंखनाद के साथ-साथ फ़िराक़ के जीवन-अनुभवों और व्यापक दृष्टिकोण की दर्पण हैं।

**मूल्य : 200 रुपये**

## चाँदनी बेग़म

**क़ुर्रतुलऐन हैदर**

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उर्दू की प्रसिद्ध कथाकार क़ुर्रतुलऐन हैदर का यह उपन्यास 'चाँदनी बेगम' कथ्य और शिल्प के स्तर पर दरसअल एक ऐसा प्रतीकात्मक उपन्यास है जिसके कई-कई पहलू हैं; और कथानक के धागे में समर्थ कथाकार ने सबको इस तरह पिरोया है कि किसी को अलग करके नहीं देखा जा सकता। उपन्यास के केन्द्र में है ज़मीन की मिल्कियत की ज़िद्दोजहद-यानी लखनऊ की 'रेडरोज़' की कोठी और उसके इर्दगिर्द रचे बसे बदलते समाज तथा रिश्तों और चरित्रों की रंगारंग तस्वीरें। इनसानी बेबसी की इतनी जानदार और सच्ची अभिव्यक्ति इस उपन्यास में है कि चरित्रों के साथ पाठक का एक हमदर्द जुड़ाव हो जाता है।

भाषा की दृष्टि से भी 'चाँदनी बेगम' बेजोड़ है और कुर्रतुलऐन हैदर ने कहानी और माहौल के हिसाब से इसका बेहद ख़ूबसूरती के साथ इस्तेमाल किया है। समूचे उपन्यास में एक ओर जहाँ आम लोगों की बोलीबानी में पूर्वी और पश्चिमी उर्दू के साथ अवधी, भोजपुरी और पछाँही हिन्दी है; वहीं लखनवी उर्दू की भी छटाएँ हैं। नतीजन उपन्यास का सारा परिवेश सहज ही अपनी अमिट छाप बनाता है।

**मूल्य : 300 रुपये**

## मेरा सफ़र

**अली सरदार जाफ़री**

शाइरी का यह मैदान इतना विस्तृत है कि अगर इसमें एक तरफ़ ललित लेखन की क्षमता है, जिस तरह चित्रकला में छोटे-छोटे सूक्ष्म लघुचित्रों की; तो दूसरी तरफ़ बड़े-बड़े कैनवास पर मोटी-मोटी रेखाओं और चमकीले रंगों के सम्मिश्रण से बनाये गये चित्रों की भी है। मैक्सिको की जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष का एक परिणाम यह हुआ कि वहाँ के चित्रकारों ने भवनों की दीवारों पर बड़े-बड़े और जनता के क्रान्तिकारी स्वभाव के अनुकूल बहुत ज़ोरदार और जोशीले भित्ति-चित्र बनाने की कला आविष्कार की और अब इसे विश्वव्यापी सर्वप्रियता प्राप्त है। सरदार जाफ़री की बड़ी कविताओं में ऐसी ही बड़ी दीवारी चित्रकारी का आनन्द है।

**मूल्य : 120 रुपये**

सन्देश पहुँचाना आवश्यक महसूस हुआ कि आलोचना किसी भी क़लमकार को नहीं बख़्शती, चाहे वह दुष्यन्त कुमार जैसा क़द्दावर ग़ज़लकार ही ज्यों न हो। लेकिन, साथ ही यह बात भी साफ़ होनी चाहिए कि किसी ख़ूबसूरत बग़ीचे के सूने या कटीले कोनों पर निगाह पड़ने से समूचे बग़ीचे की ख़ूबसूरती या महत्त्व में कोई कमी नहीं आती। कलाकार की कमज़ोरियों की निशानदेही आलोचना का दायित्व है लेकिन वह कलाकार को उसकी बुलन्दी से नीचे उतारने का न तो उद्देश्य रखती है न ही शक्ति। कलाकार के कारनामे उसे जिस बुलन्दी पर बिठा देते हैं, उस पर कलाकार का अधिकार सदा-सदा के लिए आश्लिष्ट हो जाता है। इसलिए दुष्यन्त कुमार पर की गई उपर्युक्त टिप्पणियों से यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकालना चाहिए कि उन्हें एक साधारण ग़ज़लकार के रूप में देखा गया है। सच तो यह है कि दुष्यंत हिन्दी ग़ज़ल वाङ्मय में नींव का पत्थर हैं। उनके पूर्व तो हिन्दी में ग़ज़ल की कल्पना ही असम्भव थी। यह जो आज हिन्दी में ग़ज़ल का बोल-बाला दिखायी देता है, उसमें किसका योगदान है? हिन्दी में ग़ज़ल का माहौल किसके दम से बना? ज़ाहिर है, दुष्यन्त कुमार ही दोनों प्रश्नों का उत्तर हैं। ग़ज़ल के सन्दर्भ में, दुष्यन्त कुमार का योगदान, दरअसल सम्पूर्ण हिन्दी कविता पर एहसान के रूप में देखा जाना चाहिए।

हिन्दी कविता के वर्तमान परिदृश्य में ग़ज़ल को उपेक्षित विधा के रूप में देखना हरगिज़ समीचीन नहीं है, यद्यपि यह विचार रखने वाले विचारक-आलोचक भी हमारे बीच मौजूद हैं जो ग़ज़ल की हैसियत को आज भी गौण मानते हैं। ज्ञान प्रकाश विवेक डंके की चोट पर कहते हैं कि हिन्दी कविता (छन्दमुक्त) आज भी हिन्दी काव्य की केन्द्रीय विधा है और हिन्दी ग़ज़ल उप-विधा। उन्हें हिन्दी ग़ज़ल का परिदृश्य बहुत आश्वस्त नहीं करता तथापि वे युवा आलोचक अनिल राय के इस कथन से सहमति जताते हैं कि हिन्दी में अच्छी ग़ज़लें भी कही-लिखी जा रही हैं। ग़ज़ल के विषय में अनिल राय का यह मत उल्लेखनीय है, "अराजक माहौल बना देने वाली ख़राब ग़ज़लों की अनियन्त्रित बाढ़ के प्रति गहन क्षोभ के बावजूद यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुछेक सर्जनात्मक प्रतिभाओं की निष्ठा और श्रम से अच्छी ग़ज़लों की एक क्षीण धारा सतत विकासमान है। दुष्यन्त कुमार के बाद, आज हिन्दी ग़ज़ल को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, इसका श्रेय इसी क्षीण धारा वाले ग़ज़लकारों को है।"

डॉ. वशिष्ठ अनूप भी हिन्दी ग़ज़ल की प्रगति के प्रति सन्तुष्टि का भाव व्यक्त करते हैं। उनके शब्दों में "दुष्यन्त के बाद हिन्दी ग़ज़ल में कोई प्रगति नहीं हुई— इस प्रकार के कथन अज्ञानतापूर्ण और हास्यास्पद हैं। जिस प्रकार जीवन, समाज और मानवीय प्रवृत्तियाँ ठहरी हुई न होकर गतिशील और परिवर्तनशील हैं। यह बात ग़ज़ल के विषय में भी सत्य है।" अनिरुद्ध सिन्हा तो ग़ज़ल को मुक्त छन्द कविता की बन्द गली से निकलता हुआ नया पथ मानते हैं। 'शिवम्' पत्रिका के पूर्व संपादक ग़ज़लकार विनोद तिवारी ने भी अपने एक लेख में माना है कि ग़ज़ल ने हिन्दी के श्रोता, पाठक और रचनाकार को बड़े पैमाने पर रिझाया है। अशोक रावत ग़ज़ल के सुपरिचित हस्ताक्षर ही नहीं प्रबल समर्थक भी हैं। ऐसे में ग़ज़ल की दशा एवं दिशा के प्रति उनका असन्तुष्ट और चिन्तित होना अस्वाभाविक नहीं है। फिर भी वे इतना तो मान ही लेते हैं कि ढेरों-ढेर प्रकाशित होने वाले हिन्दी के ग़ज़ल-संग्रहों में सभी निरस्त नहीं किये जा सकते।

ग़ज़ल के वर्तमान परिदृश्य को काव्य समीक्षकों के माध्यम से समझने के क्रम में सुप्रसिद्ध नवगीतकार-लेखक यश मालवीय के नाम का स्मरण करना स्वाभाविक है। कारण कि यश मालवीय शुरू ही से न केवल ग़ज़ल के प्रशंसक और उसे हिन्दी कविता की एक विधा के रूप में स्वीकृति दिए जाने के पक्षधर रहे हैं वरन् समय-समय पर अपनी सार्थक टिप्पणियों से ग़ज़ल के परिवेश को आइना दिखाने का काम भी करते रहे हैं। मैं इस लेख का समापन उनके 'हिन्दी कविता में ग़ज़ल' शीर्षक लेख के कुछ उदाहरणों के साथ करना चाहूँगा। यश बिना किसी लाग-लपेट के कहते हैं, 'ग़ज़ल के हिन्दी कविता के दायरे में आने पर हिन्दी कविता का भी कल्याण हुआ और ग़ज़ल का भी।' हिन्दी और उर्दू को लेकर भी उनके मन में कोई ग्रन्थि नहीं है। यश लिखते हैं, "भाषा की राजनीति करने वाले भाषा के बीच खाई खोद रहे हैं अन्यथा दोनों भाषाओं को निकट लाने में ग़ज़ल विधा के ऐतिहासिक अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।" "...यह एक ऐसा समय है जब उर्दू और हिन्दी ग़ज़ल के बीच विभाजन रेखा भी लगभग समाप्त हो चली है।" "... ग़ज़ल आज एक अत्यन्त लोकप्रिय काव्य विधा है। उसे भाषा के स्तर पर कट्टरपन्थियों से बचाए जाने की ज़रूरत है। उन लोगों से बचाना भी ज़रूरी है जो इसका चेहरा विकृत कर रहे हैं। भाषा का सवाल धर्म और मज़हब के सवाल की तरह जब-तब फन काढ़ लेता है। बहुत से लोग आज भी उर्दू को परायी ज़बान और ग़ज़ल को परायी काव्य-विधा मानते हैं जबकि हिन्दी कविता में हस्तक्षेप करने के बाद से ग़ज़ल का पूरी तरह से भारतीयकरण हो चुका है। यहाँ यह ध्यान रखा जाए कि भारतीयकरण का मतलब भगवाकरण नहीं है। हिन्दी को केवल हिन्दुओं की और उर्दू को केवल मुसलमानों की भाषा मानने वालों के दिलों में वास्तव में गहरा खोट है। ग़ज़ल गंगा-जमुनी तहज़ीब की हिमायती है।" यश के वक्तव्य में मुझे इतना और जोड़ने दीजिए कि गंगा-जमुनी तहज़ीब आज हमारी पहचान ही नहीं ज़रूरत भी है।

अन्त में आइए ऐसे विचारों से अवगत हों, जो, यदि हम ग़ज़ल के ज़रा हिमायती हैं, तो हमें अत्यन्त सुखद अनुभूतियों से गुज़रने का अवसर देंगे। विचार हैं विद्वान लेखक कमल किशोर गोयनका के जिन्हें, उन्होंने प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'सबके दावेदार' (अंक मई 2010) को लिखे गये अपने एक पत्र में व्यक्त किया है। गोयनका लिखते हैं, "हिन्दी ग़ज़ल अब स्वीकृत एवं मान्य विधा है और उसने अपना विशिष्ट रूप विकसित कर लिया है। दुष्यन्त के बाद ग़ज़ल तो अब जीवन का पर्याय है। इसमें समकालीन जीवन का क्रूर यथार्थ देखा जा सकता है, लेकिन उसमें प्रतिरोध है तो आस्था का स्वर भी है। जीवन भी तो ऐसा ही है। यदि आज की ग़ज़लें अधिक बोलती हैं तो इसका कारण यह है कि पूरे परिवेश में दर्द की चीख़ है, अन्याय की पहाड़ जैसी व्यथा है और मनुष्य को जानवर बनाने की साज़िश है। हिन्दी ग़ज़ल को समझना वास्तव में जीवन को समझना है।"

**635/547, अतरसुइया, इलाहाबाद-211003**
**मो. 09839814279**

## तुम हो चुके शहीद भी अब तो कहीं चलो

### बालस्वरूप राही

किस मुहूरत में दिन निकलता है?
शाम तक सिर्फ़ हाथ मलता है

वक़्त की दिल्लगी के बारे में
सोचता हूँ तो दिल दहलता है

दोस्तों ने जिसे डुबोया हो
वो ज़रा देर से सँभलता है

हमने बौनों की जेब में देखी
नाम जिस चीज़ का सफलता है

तन बदलती थी आत्मा पहले
आजकल तन उसे बदलता है

एक धागे की बात रखने को
मोम का रोम रोम जलता है

काम चाहे ज़ेहन से चलता हो
नाम दीवानगी से चलता है

उस शहर में भी आग की है कमी
रात दिन जो धुआँ उगलता है

उसका कुछ तो इलाज करवाओ
उसके व्यवहार में सरलता है

सिर्फ़ दो चार सुख उठाने को
आदमी बारहाँ फिसलता है

याद आते हैं शेर 'राही' के
दर्द जब शायरी में ढलता है

**2**

इतना बुरा तो तेरा भी अंजाम नहीं है
सूरज जो सवेरे था वही शाम नहीं है

पहचान अगर बन न सकेगी तो ज़्या ग़म है
कितने ही सितारों का यहाँ नाम नहीं है

आकाश भी धरती की तरह घूम रहा है
दुनिया में किसी चीज़ को आराम नहीं है

पीने को मिले मय तो तक़ल्लुफ़ है कहाँ का
पी ओक से क़िस्मत में अगर जाम नहीं है

मत सोच कि ज़्या तूने दिया तुमको मिला ज़्या
शाइर है जमा-ख़र्च तेरा काम नहीं है

यह शुक्र मना इतना तो इंसाफ़ हुआ है
तुझ पर ही तेरे क़त्ल का इलज़ाम नहीं है

माना वो मेहरबान है सुनता है सभी की
मत भूल कि उसका भी करम आम नहीं है

उठने दे जो उठता है धुआँ दिल की गली से
बस्ती वो कहाँ है जहाँ कोहराम नहीं है

टपकेगा रुबाई से तेरा ख़ून या आँसू
'राही' है तेरा नाम तू ख़य्याम नहीं है

## बलबीर सिंह रंग

ऐ दिले नाकाम आख़िर किसलिए ?
गर्दिशे-अय्याम आख़िर किसलिए ?

आपके पैग़ाम आख़िर किसलिए ?
हर किसी के नाम आख़िर किसलिए ?

पाकदामानी में शोहरत आपकी,
हम हुए बदनाम आख़िर किसलिए ?

मैक़दे में साक़िया तेरा वजूद,
फिर भी ख़ाली जाम आख़िर किसलिए ?

अपनी अपनी बज़्म की रंगीनियाँ,
'रंग' पै इलज़ाम आख़िर किसलिए ?

**2**

हमने तनहाई में ज़ंजीर से बातें की हैं
अपनी सोई हुई तक़दीर से बातें की हैं

तेरे दीदार की ज्या ख़ाक तमन्ना होगी
ज़िन्दगी भर तेरी तसवीर से बातें की हैं

मौत के डर से मैं ख़ामोश रहूँ लानत है
जब कि जल्लाद की शमशीर से बातें की हैं

क़ैस की लैला या फ़रहाद की शीरीं कह लो
हम नहीं राँझा मगर हीर से बातें की हैं

'रंग' का रंग ज़माने ने बहुत देखा है
ज्या कभी आपने 'बलबीर' से बातें की हैं ?

**3**

ज़माना आ गया रुसवाइयों तक तुम नहीं आये
जवानी आ गई तनहाइयों तक तुम नहीं आये

धरा पर थम गई आँधी, गगन में काँपती बिजली
घटाएँ आ गयी अमराइयों तक तुम नहीं आये

नदी के हाथ निर्झर को मिली पाती समन्दर को
सतह भी आ गई गहराइयों तक तुम नहीं आये

किसी को देखते ही आपको आभास होता है
निगाहें आ गयीं परछाइयों तक तुम नहीं आये

समापन हो गया नभ में सितारों की सभाओं का
उदासी आ गई अंगड़ाइयों तक तुम नहीं आये

न शमादा हैं न परवाने ये ज्या 'रंग' है महफ़िल
कि मातम आ गया शहनाइयों तक तुम नहीं आये

## शलभ श्रीराम सिंह

मुश्किलें थम गईं, दर्द कम हो गया
अब ज़मानें का ग़म अपना ग़म हो गया

रास्ते ने मुसाफ़िर से ज़्या ज़्या कह दिया
इन्क़िलाबे सफ़र हर क़दम हो गया

जब कटे हाथ भी लेके परचम उड़े
तक सितमगर ने समझा सितम हो गया

जिस क़लम ने लिखा इन्क़िलाबन् अलिफ़
वह क़लम सर न था, सर क़लम हो गया

रोशनी अब अँधेरे की हमराज़ है
जो न होता था वह एकदम हो गया

ज़हन से ज़ीस्त तक सुर्ख़रू था मगर
ज़्वाब आँखों में उतरा तो नम हो गया

वज़्त तो आसमाँ को झुका देता है
सर तो सर ही है थोड़ा सा ख़म हो गया

मेरे बाद आने वालों से कहना 'शलभ'
एक बेगाना दुनिया में कम हो गया

**2**

ख़ूँ के हर इक सवाल का ज़िन्दा जवाब हूँ
ऐ शायिरे-शबाब तेरा इन्तिख़ाब हूँ

कहते हैं मुझको लोग नये दौर का ख़ुदा
कैसे कहूँ कि उनकी सदाक़त का ज़्वाब हूँ

दस्ते-दुआ हूँ मादरे-हिन्दोस्तान का
मेहनत की रोटियों में झलकता सवाब हूँ

गुज़रेगी इस मुक़ाम से जब आख़िरी सदी
पढ़ते मिलेंगे लोग जिसे वह किताब हूँ

क़ौमों के रहनुमाओं से जाकर कहो 'शलभ'
जिसको वो ढूँढ़ते हैं वही इंक़िलाब हूँ

**3**

रस्ते में कहीं चाहने वाले भी पड़ेंगे
दिल है तो कभी जान के लाले भी पड़ेंगे

ग़ैरों से गले मिलके तड़पने की चाह में
अपनों से कभी आपके पाले भी पड़ेंगे

कहते हो सफ़रे-ज़ीस्त पे निकले हो देखना
काँटों के लिए पाँवों में छाले भी पड़ेंगे

जिस नाम के हमनाम हो उस नाम के लिए
हिस्से में कभी देश निकाले भी पड़ेंगे

जिस घर से निकलने की 'शलभ' सोच रहे हो
लौटे कोई दिन और तो ताले भी पड़ेंगे

## रामावतार त्यागी

वही टूटा हुआ दर्पण बराबर याद आता है
उदासी और आँसू का स्वयंवर याद आता है

कभी जब जगमगाते दीप गंगा पर टहलते हैं
किसी सुकुमार सपने का मुक़द्दर याद आता है

महल से जब सवालों के सही उज्ञर नहीं मिलते
मुझे वह गाँव का भीगा हुआ घर याद आता है

सुगन्धित ये चरण, मेरा महक से भर गया आँगन
अकेले में मगर रूठा महावर याद आता है

समन्दर के किनारे चाँदनी में बैठ जाता हूँ
उभरते शोर में डूबा हुआ स्वर याद आता है

झुका जो देवता के द्वार पर वह शीश पावन है
मुझे घायल मगर वह अनझुका सर याद आता है

कभी जब साफ़ नीयत आदमी की बात चलती है
वही 'त्यागी' बड़ा बदनाम अकसर याद आता है

**2**

दर्द जब तक सवालात करते रहे
हम दरज़्तों के संग बात करते रहे

ज़िन्दगी से मिलीं गालियाँ और हम
रोज़ उससे मुलाक़ात करते रहे

लोग सोते रहे चादरें तान कर
जंग हमसे ज़्यालात करते रहे

हम न बोले कभी, वह न समझे कभी
बेवजह ख़ूने-ज़ज़्बात करते रहे

रोशनी वह तवायफ़ कि जिसके लिए
ख़ुशनुमा उम्र को रात करते रहे

बेवजह रो दिये, बेवजह हँस दिये
रात-दिन यह खुराफ़ात करते रहे

हम झुके तो नहीं, यह तमन्ना मगर
इक ज़माने से हालात करते रहे

**3**

पूरी हुई उज़्मीद भी अब तो कहीं चलो
तुम हो चुके शहीद भी अब तो कहीं चलो

तुम क़र्ज़ इस समाज का बिककर चुका लिये
लो आ गयी रसीद भी अब तो कहीं चलो

तुमने किया था ख़ून तब अपने वजूद का
था एक चश्मदीद भी अब तो कहीं चलो

तुमको ख़ुदा के नाम पर लाये थे जो यहाँ
वह जा चुके मुरीद भी अब तो कहीं चलो

कल तक तुज़्हारी आँख से जो देखते थे लोग
दुश्वार उनका दीद भी अब तो कहीं चलो

## हरजीत सिंह

उसके लहजे में इत्मिनान भी था
और वो शख़्स बदगुमान भी था

फिर मुझे दोस्त कह रहा था वो
पिछली बातों का उसको ध्यान भी था

सब अचानक नहीं हुआ यारो
ऐसा होने का कुछ गुमान भी था

देख सकते थे छू न सकते थे
काँच का पर्दा दरमियान भी था

रात भर उसके साथ रहना था
रतजगा भी था इम्तिहान भी था

आईं चिड़ियाँ तो मैंने ये जाना
मेरे कमरे में आसमान भी था

**2**

घुटन के साथ तू जाएगा इन घरों में कहाँ
खुली फ़िज़ा में जो राहत है बस्तियों में कहाँ

उतर चुकी है जो काग़ज़ पे अपने रंगों में
छुपी हुई थी वो तसवीर उँगलियों में कहाँ

घने दरख़्त हैं इस राह से तू दिन में गुज़र
हुई जो रात तो भटकेगा जंगलों में कहाँ

सफ़ेद पेड़ बहुत जल्द हो गये ऊँचे
जो कल मिले थे वो मंज़र भी रास्तों में कहाँ

हरी ज़मीन पे तूने इमारतें बो दीं
मिलेगी ताज़ा हवा तुझको पत्थरों में कहाँ

ये रतजगे ये इबादत तो उनका पेशा है
भटक रहा है नगर उनके रतजगों में कहाँ

उसे निज़ाम ने अपना बना लिया यारो
अब उसका नाम अदालत के काग़ज़ों में कहाँ

**3**

ज़िन्दा चेहरे भी बदल जाते हैं तसवीरों में
पेड़ मरते हैं तो ढल जाते हैं शहतीरों में

उम्र ले जाती है चेहरे का चमकता पानी
जंग लग जाता है ठहरी हुई शमशीरों में

शाम जलसे में बहुत शोर था हंगामा था
एक चिड़िया की चहक खो गयी तक़रीरों में

तुम इनको बाँट के ख़ुद ख़त्म करोगे ख़ुद को
ज़ख़्म भी बँटते हैं बँटती हुई जागीरों में

मैं तो लोहा हूँ कहो आग पे रखने वालो
मुझको औज़ारों में ढालोगे कि ज़ंजीरों में

**4**

तहज़ीब अब ख़ला में परवाज़ कर रही है
अब हमसफ़र हमारा लोहे का आदमी है

सबको तलाश है अब इक दूसरी ज़मीं की
अपनी ज़मीन हमसे कुछ और चाहती है

पहचान आदमी की इक दस्तख़त है जिसको
कितना कोई चुरा ले तहरीर बोलती है

पेड़ों से गिरके पत्ते जब तक न उड़ सकेंगे
तब तक वो बोझ सहना ये घास जानती है

अहसास के परिन्दे आँखों की सरहदों से
उस पार जा चुके हैं जिस पार रोशनी है

फिर इसके बाद तुमको बस रेत ही मिलेगी
तुम इसको साथ ले लो ये आख़िरी नदी है

## अदम गोंडवी

हिन्दू या मुस्लिम के अहसासात को मत छेड़िए
अपनी कुर्सी के लिए जज़्बात को मत छेड़िए

हममें कोई हूण, कोई शक, कोई मंगोल है
दफ़्न है जो बात, अब उस बात को मत छेड़िए

ग़ल्तियाँ बाबर की थीं, जुम्मन का घर फिर क्यों जले
ऐसे नाजुक वक़्त में, हालात को मत छेड़िए

हैं कहाँ हिटलर, हलाकू, ज़ार या चंगेज़ ख़ाँ
मिट गये सब क़ौम की औक़ात को मत छेड़िए

छेड़िए इक जंग मिलजुलकर ग़रीबी के ख़िलाफ़
दोस्त मेरे मज़हबी नग़मात को मत छेड़िए

**2**

काजू भुनी प्लेट में ह्विस्की गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में

पक्के समाजवादी हैं तस्कर हों या डकैत
इतना असर है खादी के उजले लिबास में

आज़ादी का वो जश्न मनायें तो किस तरह
जो आ गए फुटपाथ पर घर की तलाश में

पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें
संसद बदल गयी है यहाँ की नख़ास में

जनता के पास एक ही चारा है बग़ावत
यह बात कह रहा हूँ मैं होशोहवास में

**3**

उनका दावा, मुफ़लिसी का मोर्चा सर हो गया
पर हक़ीक़त ये है मौसम और बदतर हो गया

बन्द कल को क्या किया मुखिया के खेतो में बेगार
अगले दिन ही एक होरी और बेघर हो गया

जब हुई नीलाम कोठे पर किसी की आबरू
फिर अहिल्या का सरापा जिस्म पत्थर हो गया

रंग-रोग़न से पुता, पहलू में लेकिन दिल नहीं
आज का इंसान भी काग़ज़ का पैकर हो गया

माफ़ करिये, सच कहूँ तो आज हिन्दुस्तान में
कोख ही ज़रख़ेज़ है अहसास बंजर हो गया

**4**

महल से झोंपड़ी तक एक दम घुटती उदासी है
किसी का पेट ख़ाली है किसी की रूह प्यासी है

ख़ुदा का वास्ता देकर किसी का घर जला देना
ये मज़हब की वफ़ादारी हक़ीक़त में सियासी है

नंगी पीठ हो जाती है जब हम पेट ढँकते हैं
मेरे हिस्से की आज़ादी भिखारी के क़बर सी है

कभी तक़रीर की गर्मी से चूल्हा जल नहीं सकता
वहाँ वादों के जंगल में सियासत बेहया सी है

हमारे गाँव का 'गोबर' तुम्हारे लखनऊ में है
जवाबी ख़त में लिखना किस मोहल्ले का निवासी है

## कुबेर दत्त

इस आदमी के फ़िक्र की हासिल कहाँ गयी
मंज़िल से पूछता है कि मंज़िल कहाँ गयी

पिंजरे में क़ैद मुनिया थी, मुनिया में पिंजरा
अब ग़ाइबाने-वक़्त-ए-साइल कहाँ गयी

हाँ मैं मजीद हूँ तो सही शहरियों के बीच
पर शह्र के अदब की मनाज़िल कहाँ गयी

मर्क़ूम ये बयान है और ख़ून में रँगा
पर मीर मुशाअर की मुफ़स्सिल कहाँ गयी

2

महलों से मुर्दघाट तक फैले हुए हैं आप
मख़मल से ले के टाट तक फैले हुए हैं आप

बिजनेस बड़ा है आपका तारीफ़ क्या करें
मन्दिर से ले के हाट तक फैले हुए हैं आप

ईमान तुल रहा है यहाँ कौड़ियों के मोल
भाषण से ले के बाट तक फैले हुए हैं आप

दरबारियों की भीड़ में जम्हूरियत का रक़्स
आमद से ले के घाट तक फैले हुए हैं आप

जनता का शोर ख़ूब है जनता कहीं नहीं
संसद से राजघाट तक फैले हुए हैं आप

3

कुछ नयी ख़बरें इधर आने लगी हैं
राजपथ पर चीलें मँडरानें लगी हैं

आग जंगल में लगी तो क्या हुआ
लपटें शहरों की तरफ़ आने लगी हैं

एक हद तक सब्र करके ये क़तारें
लालबत्ती पार कर जाने लगी हैं

आँधियाँ फिर किस तरह पागल हुईं
एक दूजे से ही टकराने लगी हैं

कल तलक थीं काठ सी ख़ामोशियाँ
आज दीवारों से बतियाने लगी हैं

4

जिसको कौंचा, जिसे तराशा है
वो तो तेरा ही अपना चेहरा है

जिस्म दोहरा हुआ कि तिहरा है
देख अब कौन या अँधेरा है

मुझको पत्थर बना गये थे लोग
पानियों ने मुझे उकेरा है

यूँ उम्मीदें भी बदनुमा होंगी
चाँद के घर में ज्यों अँधेरा है

मैं तो समझा था रात काली है
रात के गाल पे सवेरा है

वक़्त की मार ने नचाया जिसे
साँप तो है नहीं सपेरा है

## कुँअर 'बेचैन'

गुलों में ज्यों चमन की ख़ुशबुएँ मौजूद रहती हैं
कहीं जाऊँ, वतन की ख़ुशबुएँ मौजूद रहती हैं

मैं अपने गीत गाता हूँ तो लगता है कि इनमें भी
तुम्हारे ही भजन की ख़ुशबुएँ मौजूद रहती हैं

अगर सच्ची मुहब्बत है तो फिर यह बात भी सच है
विरह में भी मिलन की ख़ुशबुएँ मौजूद रहती हैं

थकूँगा क्यों, मुझे जब ताज़गी देने को ही अक्सर
मेरी अपनी थकन की ख़ुशबुएँ मौजूद रहती हैं

मैं जब भी लड़खड़ाने को हुआ तो सामने मेरे
किसी पावन वचन की ख़ुशबुएँ मौजूद रहती हैं

मिली बचपन में लेकिन हमने अन्तिम साँस तक यूँ ही
'कुँअर' माँ के बदन की ख़ुशबुएँ मौजूद रहती हैं

**2**

फूल को ख़ार बनाने पे तुली है दुनिया
सबको अँगार बनाने पे तुली है दुनिया

मैं महकती हुई मिट्टी हूँ किसी आँगन की
मुझको दीवार बनाने पे तुली है दुनिया

हमने लोहे को गलाकर जो खिलौने ढाले
उनको हथियार बनाने पे तुली है दुनिया

जिनपे लफ़्ज़ों की नुमाइश के सिवा कुछ भी नहीं
उनको फ़नकार बनाने पे तुली है दुनिया

नन्हें बच्चों से 'कुँअर' छीन के भोला बचपन
उनको हुशियार बनाने पे तुली है दुनिया

**3**

तेरी हर बात चलकर यूँ भी मेरे जी से आती है
कि जैसे याद की ख़ुशबू किसी हिचकी से आती है

बदन से माँ के आती है मुझे अक्सर वही ख़ुशबू
जो इक पूजा के दीपक में पिघलते घी से आती है

कहाँ से और आएगी मुहब्बत की वो सचाई
जो जूठे बेर वाली सरफिरी शबरी से आती है

हज़ारों ख़ुशबुएँ दुनिया में हैं पर उससे कमतर हैं
जो भूखे को किसी सिकती हुई रोटी से आती है

ये माना आदमी में फूल-जैसे रंग हैं, लेकिन
'कुँअर' तहज़ीब की ख़ुशबू मुहब्बत ही से आती है

**4**

आज जो ऊँचाई पर है क्या पता कल गिर पड़े
इतना कहके ऊँची शाखों से कई फल गिर पड़े

साँस की पायल पहनकर ज़िन्दगी निकली तो है,
क्या पता कब टूटकर यह उसकी पायल गिर पड़े

यह भी हो सकता है पत्थर फेंकने वालों के साथ,
उनका पत्थर ख़ुद उन्हें ही करके घायल गिर पड़े

सर पे इतना बोझ और पाँवों में इतनी ठोकरें,
अच्छा ख़ासा आदमी भी होके पागल गिर पड़े

चार पल को हम जी इस दुनिया की आँखों में 'कुँअर'
बन के आँसू आये थे और बन के बादल गिर पड़े

## सूर्यभानु गुप्त

हर लम्हा ज़िन्दगी के पसीने से तंग हूँ
मैं किसी कमीज़ के कॉलर का रंग हूँ

मोहरा सियासतों का, मेरा नाम आदमी
मेरा वजूद क्या है, ख़लाओं की जंग हूँ

रिश्ते गुज़र रहे हैं लिए दिन में बत्तियाँ
मैं बीसवीं सदी की अँधेरी सुरंग हूँ

निकला हूँ एक नदी सा समन्दर को ढूँढ़ने
कुछ दूर कश्तियों के अभी संग संग हूँ

माँझा कोई यक़ीन के क़ाबिल नहीं रहा
तनहाइयों के पेड़ से अटकी पतंग हूँ

ये किसका दस्तख़त है, बताए कोई मुझे
मैं अपना नाम लिख के अँगूठे सा दंग हूँ।

**2**

उल्टे सीधे गिरे पड़े हैं पेड़
रात तूफ़ान से लड़े हैं पेड़

क्या ख़बर इन्तज़ार है किसका
सालहासाल से खड़े हैं पेड़

कौन आया था, किससे बात हुई
आँसुओं की तरह झड़े हैं पेड़

जिस जगह हैं, न टस से मस होंगे
कौन-सी बात पर अड़े हैं पेड़

कोपलें, फूल, पत्तियाँ देखो
कौन कहता है ये, कड़े हैं पेड़

जीतकर कौन इस ज़मीं को गया
परचमों की तरह गड़े हैं पेड़

अपनी दुनिया के लोग लगते हैं
कुछ हैं छोटे तो कुछ बड़े हैं पेड़

उम्र भर रास्तों पे रहते हैं
शाइरों पर सभी पड़े हैं पेड़

अपना मुखड़ा निहार ले मौसम
आईनों की तरह जड़े हैं पेड़

**3**

टिका के पीठ वो बैठा है गावतकिए से
न पूछिए कि बँधी, कैसे नाव तकिए से

बुझे पलक में बला के अलाव तकिए से
जहाँ ने मारे हज़ारों पड़ाव तकिए से

मिला वो जिससे, वही ताज़ादम हुआ साहब
सही में मिलता है, उसका स्वभाव तकिए से

जो गाँठता था कभी जूतियाँ सुभानअल्ला
है अब उसी का नगर में प्रभाव तकिए से

उसूल, हुस्ने-नज़र, दिल, ज़मीर, ख़ुद्दारी
हुए हैं दूर, अनेकों अभाव तकिए से

बसे थे यार जहाँ पर लँगोटिया सारे
वहाँ भी हो के रहा मनमुटाव तकिए से

ज़मीं पे आओ, उठो, मुँह छुपा के मत रोओ
न भर सकेंगे मुहब्बत के घाव तकिए से

**4**

सूरज के उजाले में कन्दील की तनहाई
रस्तों पे बज़्बई के इक मील की तनहाई

तस्वीर हँसी कोई जिस कील से उतरी हो
दीवार पे भारी है उस कील की तनहाई

इस दौर का इन्साँ भी बीमार नज़र आया
रोती है ख़लाओं में इन्ज़ील की तनहाई

सपनों के महल टूटे, अब मुल्क की गलियों में
चेहरे हैं किसी उजड़ी तहसील की तनहाई

भूले से कोई पंछी नज़दीक नहीं आता
सूरज की तरह ठहरी, इक चील की तनहाई

फिरता है शिकारे सा, ये कौन मेरे अन्दर
पहने है बदन मेरा, किस झील की तनहाई

धागा तो सुई के संग, किस देश गया जाने
यादों के रहट हैं और इक रील की तनहाई

दिल्ली तो नहीं दिल कुछ, जो आये इसे लूटे
हर एक क़दम पर हो, सौ मील की तनहाई

पत्थर हो कि आईना, दोनों ही बराबर हैं
जीवन है अब इक अँधी तमसील की तनहाई

## सोहन राही

कुछ दिनों से मेरा आईना मुझे अच्छा लगे
जब इसे देखूँ मेरा चेहरा तेरा चेहरा लगे

तेरे हर एक बोल में सिमटी है ऐसे रस कथा
तेरा झूठा क़ौल भी अब तो मुझे सच्चा लगे

तेरे नैनों के गगन का मैं कभी पंछी बनूँ
मुख तेरा चन्दा, कज़ी सूरज, कभी तारा लगे

ज़िन्दगी के शोर जंगल में दुखी की रागिनी
साथ हो जाए तेरा तो रसभरा नग़मा लगे

ऐसे काजल की लकीरों ने समेटा रैन को
अब अँधेरा भी मुझे अच्छा लगे, उजला लगे

बिन कहे और बिन सुने जो रूठ जाए तू कभी
साँस, तो चलती रहे जीना मगर झूठा लगे

प्यार की बाज़ी में 'राही' हार ही तो जीत है
ज़िन्दगी मेरी जो मिट्टी थी वो अब सोना लगे

**2**

समन्दर पार करके अब परिन्दे घर नहीं आते
अगर वापस भी आते हैं तो लेकर पर नहीं आते

मेरी आँखों की दोनों खिड़कियाँ ख़ामोश रहती हैं
कि अब इनसे सुख़न करने मेरे मंज़र नहीं आते

सुनहरी धूप की चादर वो पूरे चाँद की रातें
हम इनमें क़ैद रहते हैं कभी बाहर नहीं आते

मेरे आँगन की छतरी के कबूतर ख़ूब हैं लेकिन
चले जाते हैं वापस तो कभी मुड़ कर नहीं आते

तुज़्हारे शहर के मौसम, हमारे शहर में 'राही'
सुनहरी धूप की लेकर कभी चादर नहीं आते

## प्राण शर्मा

अपनी ही भूलों से हम ज़्यों खोएँ ये सौगातें जी
प्यार मुहज़्ज़्त यारी दोस्ती वाली सारी बातें जी

उजियाले के दिन हों चाहे, हों अँधियारी रातें जी
तेरे मेरे बीच में कुछ तो हों प्यारी सी बातें जी

कल आयी थीं हर आँगन पर, आहिस्ता ही आहिस्ता
राम करे के आज भी आएँ वैसी ही बरसातें जी

जिसके घर की जो बातें हैं घर में उसी के रहने दो
मेरे घर में किसी के घर की ज़्यों हो कुछ भी बातें जी

रो के सहो या हँस के सहो, ऐ 'प्राण' पड़ेंगी सहनी सब
कुछ क़िस्मत की, कुछ दुनिया की कुछ घर की आघातें जी

**2**

हर एक को ही कुनबे में इक जैसा पालना
कितना कठिन है दोस्तों घर को सँज़ालना

आनन्द की फुहार है चन्दन की गन्ध है
जादू जगाता माँओं की बाँहों का पालना

जिसको उजाड़ कर गये बच्चे शरारती
होता न काश वो किसी चिड़िया का आलना

शायद यही विचार के अब रुक गये हैं आप
आसाँ नहीं है अपने पे कीचड़ उछालना

ऐ 'प्राण' रास आयी है किस मन को दुश्मनी
इक संकरी गली से है स्वयं को निकालना

## ओम प्रभाकर

रफ़्ता-रफ़्ता[1] मेरे अन्दर इक ख़ला[2] भरने लगा
कल का सेहतमन्द इन्साँ दम-ब-दम मरने लगा

शुक्र है वो मुझको अपना दोस्त कहता है, मगर
अब परेशाँ हूँ कि वो कुछ-कुछ वफ़ा करने लगा

घुल गया है इक नयापन-सा मेरे माहौल में
एक इन्साँ दूसरे से ख़ुद-ब-ख़ुद डरने लगा

ज़्या हुआ था इस जगह, ये तो इबादतगाह[3] है
ज़्यूँ हमारी आँख में कड़वा धुआँ भरने लगा

फिर वही ख़ेमे, क़बीले फिर वही टकराहटें
फूलता-फलता तमद्दुन[4] नागहाँ[5] मरने लगा

[1]धीरे-धीरे [2]ख़ालीपन [3]पूजा-स्थल [4]भाईचारा [5]अचानक

**2**

मुझको इस तरह उछाला होता
खेत में, बाग़ में डाला होता

बन के गन्दुम[1] कि गुल[2] उभरता मैं
धूप ने आ के सँभाला होता

खींच कर कान[3] के मुँह से मुझको
शक़्ले औज़ार में ढाला होता

होते कितने ही यहाँ गंगो-जमुन
मैं अगर कोहे-हिमाला[4] होता

देस-परदेस बहम[5] हो जाते
फिर कहाँ देस-निकाला होता

यूँ भी होता कि मेरे हाथों से
तेरे मुँह में भी निवाला होता।

जलते चूल्हे में पकती रोटी से
घर की आँखों में उजाला होता

[1]गेहूँ [2]फूल [3]खदान [4]हिमालय पर्वत [5]एक

**3**

गुज़र गया जो नज़र से, नज़र का हिस्सा है
शज़र[1] से उड़ता परिन्दा शज़र का हिस्सा है

तुज़्हारा दर्द अगर दर्दे-नारसाई[2] है
तुज़्हारा दर्द हमारे जिगर का हिस्सा है

न वो तुज़्हारे यहाँ है, न वो हमारे यहाँ
उदास चूल्हा कहो, किसके घर का हिस्सा है

जहाँ के लोग ख़ुदा के करम[3] पे ज़िन्दा हैं
इलाक़ा वो भी हमारे नगर का हिस्सा है

सफ़र सफ़र है, सफ़र में पड़ाव ज़्या मानी
तिरा वजूद[4] तिरी रहगुज़र का हिस्सा है

बना रहे जो हमेशा वो घर बना ही नहीं
मकाँ तुज़्हारा, तुज़्हारे सफ़र का हिस्सा है

[1]पेड़ [2] साधनहीनता [3]कृपा [4]अस्तित्व

4

ख़रामा-ख़रामा[1], बिला दस्तो-पा[2]
मिरे साथ चलती हुई ये हवा

ये शाख़े-शजर ही हैं दस्ते हवा[3]
ये किसके लिए माँगते हैं दुआ

कभी रज़्स करती, सिसकती कभी
कभी दौड़ पड़ती है ये बेहया

ये मुमकिन है थम जाए जाकर उधर
जिधर तूने रज़्खा है जलता दिया

ख़ामोशी में, ख़िल्वत[4] में सुनना कभी
है गाती कभी, गुनगुनाती हवा

[1] धीरे-धीरे [2] हाथ-पाँव [3]हवा के हाथ [4]एकान्त

## श्रीनिवास श्रीकान्त

फिर लगी आग फिर जला कोई
फूल पत्थर पे है खिला कोई

लड़खड़ाने लगे हैं दिल के क़दम
आने वाला है ज़लज़ला कोई

दिल के टुकड़े मेरे हज़ार हुए
प्यार का था वो सिलसिला कोई

आ गयी याद उनकी बरसों बाद
जैसे डबरे पे दिन ढला कोई

हर तरफ़ काँच की दीवारें हैं
किसको आवाज़ दे भला कोई

आदमी जिसके डर से लरज़ाँ है
मौत है या है फिर बला कोई

दिल भी ईमाँ भी डगमगाया है
प्यार है या है कर्बला कोई

हर तरफ़ दर्द के हैं अफ़साने
हर क़दम पर है मरहला कोई

खिंच गये दूर तलक वीराने
कम करे आ के फ़ासला कोई

रख रहा था कि लेके जाएगा
या ख़ुदा करले फ़ैसला कोई

## लक्ष्मण

ग़म ख़ुशी का हादसा होता है, दोस्त
दर्द भी बढ़कर दवा होता है, दोस्त।

स्वर्ग का लालच हमें मत दीजिये,
मौत का भी मर्तबा होता है, दोस्त।

पीके अपने ऐतबारों का लहू
एक पत्थर देवता होता है दोस्त

ठीक है नज़दीकियाँ, लेकिन सुनो
उनसे अच्छा फ़ासला होता है दोस्त

साक्षी हैं घाव मेरी पीठ के
दुश्मनों से भी बुरा होता है दोस्त

**2**

और ही फ़रियाद की है, दरअसल
दर्द तो कुछ और ही है, दरअसल

आरज़ू की क़ैद में तड़पा करें
इक सज़ा यह ज़िन्दगी है, दरअसल

यह उदासी यह कमी, यह बेकली
उनकी नामौजूदगी है, दरअसल

भूख कब कोई नसीहत सुन सकी
भूख नीयत से बड़ी है, दरअसल

रात-भर जलसा हुआ है जिस जगह
रात-भर शमअ: जली है, दरअसल।

## चन्द्रसेन विराट

पिघले हुए दुख से ही, आँसू की बनावट है
जीवन के कपोलों पर, पानी की लिखावट है

समृद्धि बढ़ी जितनी, उतनी घटी नैतिकता
जीवन तो उठा लेकिन, मूल्यों में गिरावट है

बाहर जो भरा दिखता, ख़ाली है वो अन्दर से
भीतर तो है सूनापन, ऊपर की सजावट है

ज़्यादातर लोग दुखी, जीते हैं अभावों में
कुछ हो जो तरी में हैं, मुखड़ों पे तरावट है

हर क्षेत्र में करती है, जबरन दख़लन्दाज़ी
हर ओर सियासत के मोहरों की जमावट है

चेहरे न सही चेहरे, चेहरों पे मुखौटे हैं
तन से तो सुदर्शन सब, पर मन में मिलावट है

निर्बाध अवैध मिलन, अधरों का अधीर परस
यह प्यार तो प्यार नहीं, जिस्मों की लगावट है

कहते हैं ग़ज़ल जिसको, है वो अनूठी विधा
संकेत की भाषा में, अर्थों की बुनावट है

हम लेके बुराई से, संघर्ष करेगी ही
अच्छाई के मुखड़े पर माना कि थकावट है

कवि हो न निराश अभी, आएँगें ही अच्छे दिन
ये दिन ही बुरे उनके रस्ते की रुकावट है

**2**

मुश्किल न ज़िन्दगी है तो आसान भी नहीं
वह शान्त भी नहीं है तो हैरान भी नहीं

आबाद ख़ूब है न तो वीरान भी नहीं
ख़ुश ख़ुश अगर नहीं है, हलाकान भी नहीं

सामान्य ज़िन्दगी में तो औसत मनुष्य के
आँसू अगर नहीं हैं तो मुस्कान भी नहीं

इस ज़िन्दगी का अपना ही तेवर मिज़ाज है
नाराज़ वह नहीं तो मेहरबान भी नहीं

ये फलसफ़ा अजीब बहुत ज़िन्दगी का है
वो है नहीं चमन तो बियाबान भी नहीं

मैं सच अगर कहूँ तो हूँ सामान्य आदमी
मैं देवता तो हूँ नहीं इंसान भी नहीं

अपनी तरह निबाह रहे ज़िन्दगी से सब
ख़ुश हैं अगर नहीं तो परेशान भी नहीं

धरता है त्यागता है भला देह जीव ज्यों
जब कुछ नफ़ा न उसको है नुक़सान भी नहीं

अपनी ही ज़िन्दगी का है निष्कर्ष बस यही
हमको न है गुमान, पशेमान भी नहीं

ग़ज़लों में तो 'विराट' रहा नाम आपका
ज़्यादा प्रसिद्ध हो न तो अनजान भी नहीं

समृद्धि बढ़ी जितनी, उतनी घटी नैतिकता
जीवन तो उठा लेकिन, मूल्यों में गिरावट है

## विश्वनाथ

मैं तेरे आसपास रहता हूँ
फिर भी कितना उदास रहता हूँ

वो मरासिम नहीं हैं पहले से
अजनबी बन के साथ रहता हूँ

बेरुख़ी तेरी, बेवफ़ाई भी
इक इनायत समझ के सहता हूँ

ओढ़ रखी है लब पे मैंने हँसी
मह्वे-दिल मह्वेयास रहता हूँ

दिल की धड़कन को ग़ौर से सुनिए
दिल की धड़कन के पास रहता हूँ

लोग मुझको ही ग़लत कहते हैं
जब कभी ठीक बात कहता हूँ

मैं तो अपनी रविश पे चलता हूँ
मैं कहाँ रौ के साथ बहता हूँ

**2**

बात जिसका था शेर महशर में
बात निकली तो बात कुछ न थी

तूने क़तरे को कर दिया दरिया
वरना अपनी बिसात कुछ न थी

ज़र्रे ज़र्रे में तू है जलवागर
जुज़ तेरे कायनात कुछ न थी

ऐ गुनाहों को बख़्शने वाले
बख़्श देता तो बात कुछ न थी

**3**

पाँव ज़ख़्मी हैं, चल रहा हूँ मैं
राह दुश्वार है, फिर भी

जुर्म साबित न हो सका मुझ पर
मैं गुनहगार हूँ, फिर भी

गोकि मुद्दत हुई है बिछड़े हुए
याद आती है बारहाँ, फिर भी

कुल जहाँ की मसर्रतें हैं नसीब
मेरा दिल सोग़वार है, फिर भी

वो नहीं आएँगे, यकीं है मुझे
दिल ही दिल इन्तज़ार है, फिर भी

उनका आना, मुराद बर आना
रूह ज्यों बेक़रार है, फिर भी

आँधियाँ थम चुकी हैं अरसे से
हरसू गर्दो-गुबार है, फिर भी

**4**

हरएक चीज़ महँगी है, तंगदस्ती है
आदमी ही की जान सस्ती है

हर हसीं बुत को है ख़ुदा माना
मेरी पूजा है, बुतपरस्ती है

यूँ तो मैं इक हक़ीर ज़र्रा हूँ
फिर ज़ी मेरी नुमायाँ हस्ती है

हर बशर भागा जा रहा है कहाँ
किससे पूछूँ, यह कैसी बस्ती है

बिन पिये ही नशा है आठों पहर
कैसी मय है, ये कैसी मस्ती है

आजकल मौज ही मौज है यारो
आजकल पूरी फ़ाकामस्ती है

## रामदरश मिश्र

दर्द दुनिया भर का सीने में लिये जाते हैं हम
ज़िन्दगी जीने की मजबूरी जिये जाते हैं हम

अपने दामन से छुड़ा अब कहते ग़ैरों का हुआ
बेख़ता दोहरी सज़ाएँ भी पिये जाते हैं हम

यों तो ये बाज़ार, महफ़िल, पर सभी वीरान हैं
फिर भी वीराने में आवाज़ें दिये जाते हैं हम

बह रही है हर जुबाँ पर उनकी ज़ालिम दास्ताँ
फिर भी कुछ ऐसा कि होठों को सिये जाते हैं हम

एक ताज़ा चोट यूँ बरसी कि पहली धुल गयी
इस तरह से ग़म ग़लत ग़म से किये जाते हैं हम

**2**

तूने न कुछ कहा सुना जैसे टली बला कोई
देता है अपनों को विदा ऐसे भी प्रिय भला कोई

ऐसी उठी थीं आँधियाँ कि मैं बिखर के रह गया
फिर से गिला दे आएगा ऐसा भी ज़लज़ला कोई

तेरी नज़र में तू नहीं, छाया है गर्म रेत की
तुझको किसी की फ़िक्र ज़्या इसमें करे जला कोई

तेरी ज़ुबान पर चढ़ा कोई दिमाग़ और का
दिल का न दर्द कह रहा, यह भी है कला कोई

## गिरिराज शरण अग्रवाल

चमकता भी है लेकिन चाँद को गहना भी पड़ता है
पुरानी हो चुकी दीवार को ढहना भी पड़ता है

सभी बातों को मनवाने की ज़िद करने से बाज आओ
निभाने के लिए कुछ छोड़ना-सहना भी पड़ता है

यह बेहतर है कि होठों पर न आने दो कसक अपनी
मगर मजबूर हो जाने पे दुःज़ कहना भी पड़ता है

कभी अपनत्व का बन्धन, कभी दुनिया की मजबूरी
कई अवसर वे होते हैं कि चुप रहना भी पड़ता है

ज़रूरी है कभी जीवन में सूरज की तपन बनना
मरुस्थल में नदी बनकर कभी बहना भी पड़ता है

## राम मेश्राम

आग भड़की, ख़ून पानी हो गया
शोक में दिल हक़्क़बयानी हो गया

हम निवाला यार ज़्या जीता चुनाव
जीतते ही आसमानी हो गया

कैसे कैसे लोग शासक हो गये
शह्र जिस दिन राजधानी हो गया

ये नये राजा के पोस्टर हैं हुज़ूर
कल का राजा, अब कहानी हो गया

2
रोशनी का दिल से रिश्ता टूटता है
हाय, किरणों का शजर भी सूखता है

जी रहा है सिर्फ़ क़ुदरत की बदौलत
गाँव अँधियारे में हर दिन डूबता है

सब फ़िदा हैं आज बिजली की अदा पर
कौन माटी के दीये को पूछता है

यह बुढ़ापा है कि बचपन की मुहज़्बत
दास्तानों की गली में ढूँढ़ता है

किस ज़माने में हुआ बाग़ी कबीरा
आज तक जो शाइरी में गूँजता है

## उदयभानु 'हंस'

साँस जब चल पड़ी ढंग से, एक दिन ज़िन्दगी हो गयी
जिस तरह बूँद बरसात में धीरे धीरे नदी हो गयी

मैं न मन्दिर न मस्जिद गया, कोई पोथी न बाँची कभी
एक दुखिया के आँसू चुने, बस मेरी बन्दगी हो गयी

मेरे घर शादियाने बजे, लोग मातम मनाने लगे
मैं अँधेरों में घिरने लगा, उनके घर चाँदनी हो गयी

ज़्या समय आ गया है, कोई दुख किसी का समझता नहीं
अपनी सूरत भी तो आईने में आजकल अजनबी हो गयी

जो थे अमृत का सागर कभी, उन दिलों में ज़हर भर गया
हाय! गंगा मधुर प्रेम की अब तो ज्वालामुखी हो गयी

मैंने भाषा को साधा नहीं, मैंन छन्दों को बाँधा नहीं
दर्द शज़्दों में ढलने लगा, 'हंस' की शाइरी हो गयी

## शेरजंग गर्ग

सतह के समर्थक समझदार निकले
जो गहरे में उतरे गुनहगार निकले

बड़ी शानो शौक़त से अख़बार निकले
कि आधे अधूरे समाचार निकले

ये जम्हूरियत के जमूरे बड़े ही
कलाकार निकले, मज़ेदार निकले

बिकाऊ, बिकाऊ, नहीं कुछ टिकाऊ
मदरसे औ' मन्दिर भी बाज़ार निकले

जिन्हें प्यार के अर्थ ही व्यर्थ लगते
वो इन्सानियत के ख़रीदार निकले

गुलाबों की दुनिया बसाने की ख़्वाहिश
लिए दिल में जंगल से हर बार निकले

**2**

नर्म रहकर न यहाँ बैठना चलना होगा
वक़्त को सख़्त तरीक़ों से बदलना होगा

प्यार की बात अँधेरों में भटक सकती है
जब चिराग़ों को बहुत देर तक जलना होगा

जो हमारे लिए साज़िश में रचे दुनिया ने
उन खिलौनों से नहीं दिल का बहलना होगा

इक ज़रूरत है मेरी क़ौम का ज़िन्दा रहना
खुफ़िया पंजों से मौत के तो निकलना होगा

देश के प्रेम का हम जाम पिएँ, ख़ूब पिएँ
जलने वालों को फ़क़त हाथ ही मलना होगा

## राजनारायण बिसारिया

ज़िन्दगी ओढ़ भी तो न पाई
सर्दियों में मिली जो रज़ाई

स्वादी के वास्ते जब उठाई
ख़ूब कुतरी मिली सब मिठाई

खेद इसका ज़रा भी नहीं है
हाथ हर चीज़ बेस्वाद आई

रोज़ जब भी मिठासें तलाशीं
सिर्फ़ दहशत पड़ी तब दिखाई

अब समझ में नहीं आ रहा कुछ
उम्र दहशत-भरी क्यों बिताई ?

दहशतों में उमगते रहे हम
सिर्फ़ ये थी हमारी कमाई

## बुद्धिसेन शर्मा

अजब दहशत में है डूबा हुआ मंज़र जहाँ मैं हूँ
धमाके गूंजने लगते हैं रह रह कर जहाँ मैं हूँ

कोई चीख़े तो जैसे और बढ़ जाता है सन्नाटा,
सभी के कान हैं, ख़ुद अपनी आहट पर जहाँ मैं हूँ

खुली हैं खिड़कियाँ फिर भी घुटन महसूस होती है
गुज़रती हैं मकानों से हवा बच कर जहाँ मैं हूँ

सियासत जब कज़ी अँगड़ाइयाँ लेती हैं संसद में
कयामत नाचने लगती है सड़कों पर जहाँ मैं हूँ

समूचा शहर मेरा ज़लज़लों की ज़द पे रज़्खा है
जगह से हट चुके हैं नींव के पत्थर जहाँ हूँ मैं

कज़ी मरघट की ख़ामोशी कभी महशर का हंगामा
बदल देता है मौसम नित नया तेवर जहाँ मैं हूँ

घुलेगी पर हरारत बर्फ़ में पैदा नहीं होगी
वहाँ हर आदमी है बर्फ़ से बदतर जहाँ मैं हूँ

पराये दर्द से निस्बत किसी को भी नहीं लेकिन
जिसे देखो वही बनता है पैग़ज़्बर जहाँ मैं हूँ

सदन में इस तरफ़ हैं लोग गूँगे उस तरफ़ बहरे
नहीं मिलता किसी भी प्रश्न का उज़्र जहाँ मैं हूँ

मज़ा लेते हैं सब एक-दूसरे के ज़ख़्म गिन-गिन कर
मगर हर शख़्स है अपने लहू में तर जहाँ मैं हूँ

इसे गिरना है तो एकबारगी गिर ज़्यों नहीं जाती
लटकती है सदा तलवार ज़्यों सर पर जहाँ मैं हूँ

**2**

ज़्या ज़रूरी है कि हो त्योहार की हर रोशनी
आग लगने से भी हो जाती है अज़्सर रोशनी

खिड़कियों को बन्द रखने का मज़ा हम पा गये
दे के दस्तक फिर गयी बाहर-की-बाहर रोशनी

शर्त ये है, सौंप दे हम अपनी बीनाई उन्हें
फिर तो वह देते रहेंगे ज़िन्दगी भर रोशनी

रास्ता तो एक ही था, ये किधर से आ गये
बिछ गयी ज़्यों इनके नीचे बनके चादर रोशनी

सुज़्ह आ जाता हूँ जैसे अज़दहे के पेट में
रात होती है तो होती है मयस्सर रोशनी

अपनी साज़िश में हवाएँ हो गयीं फिर क़ामयाब
रह गयी फिर बादलों के बीच फँस कर रोशनी

ख़ुद चमकते हैं हमेशा रात की पाकर पनाह
ये सितारे ज़्या भला बाँटेंगे घर-घर रोशनी

यूँ सवा नेज़े पे सूरज तो कभी पहले न था
थी, मगर पहले न थी इतनी भयंकर रोशनी

हम दिलों से दिल मिलाते हैं, निगाहों से निगाह
रोशनी से कर रहे हैं हम उजागर रोशनी

## रामकुमार कृषक

वज़्त है वज़्त की तेज़ रफ़्तार है
जो नहीं चल रहा वो गुनहगार है

वज़्त को काटना ज़्या हँसी-खेल है
वज़्त तो ख़ुद-ब-ख़ुद एक तलवार है

बेवफ़ा हो भले ज़िन्दगी मौत से
मौत को ज़िन्दगी से बहुत प्यार है

वज़्त को जाँच लें, बाँच लें हाथ से
अन्यथा व्यर्थ जाएगा अख़बार है

वज़्त के हाथ में तो घड़ी ही नहीं
हर घड़ी वज़्त की ही तलबगार है

वज़्त है सिन्धु ख़ुद में घुमड़ता हुआ
संग भाटा कभी तो कभी ज्वार है

अपनी ख़ुद्दारियत ही ख़ुदा दोस्तो
वज़्त भी है ख़ुदा, पर निराकार है

**2**

ज़्या जानूँ ज़्यूँ उमड़ा होगा पहली-पहली बार समन्दर
बूँद-बराबर रह जाता हूँ देख तेरा विस्तार समन्दर

जाने कब से खोज रहा हूँ मिला नहीं माँझी तेरे-सा
लहर लहर तरणी है तेरी लहर लहर पतवार समन्दर

सोच रहा धरती छूने की होड़ तरंगों में किस कारण
जिस तट पर इंसान बसा है उससे तुझको प्यार समन्दर

मुझको तो तेरी मर्यादा पराधीनता ही लगती है
यों ही टूट न पाता तेरी बेचैनी का तार समन्दर

सही बात है तेरे बदले मैं रत्नाकर होता कैसे
सारी दुनिया में फैला है तेरा कारोबार समन्दर

पता नहीं जलचर सब तेरे किसके पाँव पूजने होंगे
मैंने तुझसे छीन लिया है तेरा हर अवतार समन्दर

अपने मन अनुकूल सदा ही शायद मैंने तुझको जाना
सुख में अट्टहास लगता है दुख में हाहाकार समन्दर

शायद कुछ गहराई मिलती शायद कुछ मोती मिल जाते
अगर कहीं तेरा तट होता अपना भी घर बार समन्दर

समझ रहा हूँ तेरी भाषा फिर भी भाषा ही मजबूरी
वरना हो ही जातीं तुझसे बातें भी दो-चार समन्दर

**3**

क़दम-क़दम पर नयी मुश्किलें पैदा करता है
सुनते हैं वह जो करता है अच्छा करता है

आख़िर ज़्यों मैं उसको अज़्सर याद दिलाता हूँ
आख़िर ज़्यों वो मुझसे अज़्सर वादा करता है

उसके पैरों की किरचों को कौन निकालेगा,
कुचल-कुचल के जो आईना तोड़ा करता है

आना और न आना भी उसकी मर्ज़ी पर है
लेकिन अच्छा लगता है जब वादा करता है

जलती चट्टानों पर अपनी धुन में बढ़ते लोग
है कोई जो सबके सर पर साया करता है

कोई और है तुम जिसको इंसान समझते हो
वरना ज़्या मिट्टी का पुतला बोला करता है

उसकी आँखें अमृत का विश्वास दिलाती हैं
एक नज़र में मुर्दों को वह ज़िन्दा करता है

मुझसे जितनी हो सकती थी कोशिश मैंने की,
इसके आगे देखना ये है जो वो ज़्या करता है

उसे ज़रूरत नहीं किसी की, दिल बहालने को
दीवाना अपने ज़ख़्मों से खेला करता है

## विज्ञानव्रत

सारा ध्यान ख़ज़ाने पर है
उसका तीर निशाने पर है

अब इस घर के बँटवारे में
झगड़ा बस तहख़ाने पर है

होरी सोच रहा है उसका
नाम यहाँ किस दाने पर है

सबकी नज़रों में हूँ जब से
मेरी आँख ज़माने पर है

काँप रहा है आज शिकारी
ऐसा कौन निशाने पर है

**2**

वो सितमगर है तो है
अब मेरा सर है तो है

आप भी हैं, मैं भी हूँ
अब जो बेहतर है तो है

जो हमारे दिल में था
अब ज़ुबाँ पर है, तो है

दुश्मनों की राह में
है मेरा घर, है तो है

एक सच है मौत भी
वो सिकन्दर है तो है

पूजता हूँ बस उसे
अब जो पत्थर है तो है

**3**

मैं था तन्हा एक तरफ़
और ज़माना एक तरफ़

तू जो मेरा हो जाता
मैं हो जाता एक तरफ़

अब तू मेरा हिस्सा बन
मिलना-जुलना एक तरफ़

यूँ मैं एक हक़ीक़त हूँ
मेरा सपना एक तरफ़

फिर उससे सौ बार मिला
पहला लम्हा एक तरफ़

**4**

इक मुश्तरका रक़बा हूँ
जाने किसका कितना हूँ

जंग लगा दरवाज़ा हूँ
मैं मुश्किल से खुलता हूँ

सदियों बाद बनेगा जो
मैं उस घर का नक़्शा हूँ

पल भर में क्या समझोगे
मैं सदियों में बिखरा हूँ

दानिशवर क्या समझेंगे
मैं बच्चों की भाषा हूँ

## विजय वाते

मैं किसी ग़ज़ल की रदीफ़ हूँ मुझे क़ायदे से सँवार लो
मैं हुनर नहीं मैं शऊर हूँ, मुझे ज़िन्दगी में उतार लो

मेरी हैसियत के ख़्याल से जो रहे हो मुझसे जुदा-जुदा
मेरी तुमसे है यही इल्तज़ा मुझे देख ख़ुद को सँवार लो

यों तो वजन भी है मेरी कहन में, सभी ठीक बनते हैं क़ाफ़िये
मेरा दिल ये मुझको कहे मगर ज़रा फ़िक्र को भी निखार लो

मेरी ज़िन्दगी, मेरी मुश्किलें, मैं लडूँगा इनसे भी उम्र भर
कहाँ मैंने तुमसे कहा है ये, मुझे इन सभी से उबार लो

वो ही चाँद है, वो ही आस्माँ, वो ही भूख है, वो ही मुफ़लिसी
जो न कह सको नयी बात तुम, मेरी शायरी से उधार लो

**2**

तेरे आँचल की मकई बिखर जाए रे
ज्यों सितारे ज़मीं पर उतर आए रे

भटकि मेले में ज्यों अचकची-सी दुल्हन
देख साजन को कैसे निखर जाए रे

मेघ की हलचलों में कुँवारी किरन
बन्द कमरे में सुख से सिहर जाए रे

बादलों से ढँके दिन से थक कर के साँझ
शिकवे-सूरज से कर चुप से ढर जाए रे

सूखे खेतों में पपड़ी उभर आए पर
सूर्य मेघों के भीतर छितर जाए रे

## ओमप्रकाश चतुर्वेदी पराग

मैं खुले चमन की बयार हूँ, मुझे दायरों में न क़ैद कर
मैं तो ख़ुशबुओं का ग़ुबार हूँ, मुझे ज़्यारियों में न क़ैद कर

मेरा धर्म कोई न जात है, मैं तो जन्म से ही हूँ आदमी
मैं तो अन्तहीन उड़ान हूँ, मुझे बन्दिशों में न क़ैद कर

मेरे पाँव चलते चले गये, कोई लक्ष्य था न निशान था
मुझे रहगुज़र से ही इश्क़ है, मुझे मंज़िलों में न क़ैद कर

कभी क़ाफ़िलों में रहा नहीं, किसी कारवाँ में चला नहीं
मुझे रास आईं तन्हाइयाँ, मुझे महफ़िलों में न क़ैद कर

कभी मयक़दे में पनाह ली, कभी मन्दिरों से झगड़ पड़ा
मैं न रस्म हूँ न रिवाज़ हूँ, मुझे क़ायदों में न क़ैद कर

मैं मिलन के घर में अछूत हूँ, मुझे दूर-दूर से देख ले
मेरे पास आ न गले लगा, मुझे हसरतों में न क़ैद कर

किसी शर्त पर न जिया कभी, मैं न ज़िन्दगी का ग़ुलाम हूँ
मेरी मौत होगी नज़ीर-सी, मुझे हादसों में न क़ैद कर

## सुल्तान अहमद

रास्ते जब नये बनाओगे
कुछ तो काँटे ज़रूर पाओगे

आ गये जो शहर के धोखे में
रास्ता घर का भूल जाओगे

हाथ अँधेरा ज़रूर कुचलेगा
जब भी कोई दीया जलाओगे

आस्माँ चोट क्यों न पहुँचाए
इस क़दर सर अगर उठाओगे

उनसे कह दो कि हम हैं ख़ुद मिट्टी
हमको मिट्टी में क्या मिलाओगे

2

दरख़्त बोले, ख़िज़ाँ है कब से ? कभी चमन में फ़ज़ा भी आए
अगर चली है फ़ज़ा की, कोई तो पत्ता हरा भी आए

उजाड़ चेहरे, उदास गलियाँ, ये सहमी सड़कें, खिंची हवाएँ
लरज़ उठे हैं तमाम बस्ती कोई जो मद्धिम सदा भी आए

बहस लुटेरों की हरक़तों पर छिड़ी हुई है न जाने कब से
लुटे घरों को ये फ़िक्र है अब बहस का कुछ फ़ैसला भी आए

सभी से ऊँचा, सभी से बढ़कर मकाँ बनाना तो देख लेना
कहीं बचा है वो कोना जिसमें कोई तुम्हारे सिवा भी आए

उमस, अँधेरा, घुटन, उदासी, ये बन्द कमरों की ख़ूबियाँ हैं
खुली रखो गर ये खिड़कियाँ तो कहीं से ताज़ा हवा भी आए

3

नज़र ये किसकी लगी ज़र्द हो गये पत्ते
अभी-अभी तो दरख़्तों पे थे हरे पत्ते

कहाँ-कहाँ न भटकते हुए मिले पत्ते
दरख़्त से जो कभी टूटकर गिरे पत्ते

किसे था वक़्त कि सुनता, सभी थे जल्दी में
सुना रहे थे कहानी झरे हुए पत्ते

फिरी है ऐसी मुनादी सज़ा मिलेगी उन्हें
जो बनके साज़ कभी भी यहाँ बजे पत्ते

ख़बर चमन में उड़ी बाग़वान आएगा
न जाने सुनके ये क्यों काँपने लगे पत्ते

4

इनको हम लेके भटकते हैं सिरों पर अपने
कितने बेजोड़ हैं क़िस्मत में लिखे घर अपने

कल जो कहते थे बदल देंगे रविश आँधी की
आज घुटनों में छुपाये हैं वही सर अपने

क्या ही तुम होंगे पशेमाँ, जिन्हें कल ग़ैर कहा
गर वही लोग लगे तुमको बिछुड़कर अपने

लाख भटकोगे मगर राह पे आ जाओगे
छोड़कर उनको बनो ख़ुद कभी रहबर अपने

इस धुएँ में भी कहा आँख से, देखो सपना
होगी इक रोज़ ज़मीं अपनी, समुन्दर अपने

## माधव कौशिक

लहू को और भी ज़्यादा सियाह मत करना
नगर के वास्ते क़स्बे तबाह मत करना

मुसाफ़िरों के मुक़द्दर में राहतें कैसी
किसी भी मोड़ पर मंज़िल की चाह मत करना

नहीं तो वक़्त भी समझेगा आपको बुजदिल
जलेगा जिस्म मगर मुँह से आह मत करना।

क़लम हो सर, या ज़ुबाँ को तराश दे दुनिया
किसी भी हाल में नीची निगाह मत करना

जला सको तो जला दो चिराग़ आँधी में
ज़रा-सी बात पर सपनों का दाह मत करना

ज़माने वाले मुहब्बत को जो कहें सो कहें
गुनाह इस को समझ कर गुनाह मत करना

उजाला भीख में मिलता तो सारे ले आते
अँधेरी रात से झूठा निबाह मत करना

**2**

पुराने वक़्त के चेहरों को ध्यान में रख ले
नज़र में फूल तो ख़ुशबू ज़ुबान में रख ले

हथेलियों की लकीरों से दूर है दुनिया
मेरी दुआओं का जादू कमान में रख ले

अभी तो दूर, बहुत दूर है तेरी मंज़िल
मुसाफ़िरों का मुक़द्दर थकान में रख ले

सुनेगा कौन अदालत में साफ़ सचाई
ज़रा सी झूठ की शोख़ी बयान में रख ले

मेरे ख़्याल के खेतों को छोड़ दे लेकिन
मेरे वजूद को गिरती लगान में रख ले

ज़मीं की कोख में सब कुछ समा नहीं सकता
जिगर के दर्द को अब आसमान में रख ले

न जाने कौन से पल कब चिराग़ बुझ जाये
किसी के प्यार का जुगनू मकान में रख ले

3

दिल में हरदम चुभने वाला काँटा सही सलामत दे
आँखें दे या मत दे लेकिन सपना सही सलामत दे

हमें युद्ध, आतंक, भूख से मारी धरती बख़्शी है
आने वाली पीढ़ी को तो दुनिया सही सलामत दे

बच्चे भी अब खेल रहे हैं ख़तरनाक हथियारों से
बचपन की बगिया को कोई गुड़िया सही सलामत दे

टुकड़े-टुकड़े में जीने का मतलब मरना होता है
बुझे चिराग़ों की क़िस्मत में जलना सही सलामत दे

दावा है मैं उस को इक दिन दरिया करके छोड़ूँगा
खुली हथेली पर आँसू का क़तरा सही सलामत दे

भीड़ भरी महफ़िल में सबकी अलग अलग पहचान बने
इसीलिए हर इक इंसान को चेहरा सही सलामत दे

आधी और अधूरी हसरत कब तक ज़िन्दा रक्खेंगे
काग़ज़ पर ही लेकिन घर का नक़्शा सही सलामत दे

**4**

बस एक काम यही बार-बार करता था
भँवर के बीच से दरिया को पार करता था

उसी की पीठ पर उभरे निशान ज़ख़्मों के
जो हर लड़ाई में पीछे से वार करता था

अजीब शख़्स था ख़ुद अलविदा कहा लेकिन
हर एक शाम मेरा इन्तज़ार करता था

हवा ने छीन लिया अब तो धूप का जादू
नहीं तो पेड़ भी पत्तों से प्यार करता था

सुना है वक़्त ने उसको बना दिया पत्थर
जो रोज़ वक़्त को भी संग सार करता था

## राजेश रेड्डी

बिना खिलौनों के बचपन गुज़ार आये हैं
हम अपने मन को बहुत पहले मार आये हैं

हमारे पास भी सुख आये हैं मगर अक़्सर
हवा के झोंकों पे होकर सवार आये हैं

गये थे जीतने जो कल बड़े-बड़े सपने
वो छोटी-छोटी-सी ख़ुशियाँ भी हार आये हैं

अब और ढूँढ़ें कहाँ जा के ज़िन्दगानी को
हम उसको दोनों जहाँ में पुकार आये हैं

गये थे भूल से इक बार हम दुखों की तरफ़
फिर उसके बाद वो ख़ुद बार-बार आये हैं

**2**

हम तो समझे थे कि है इक रोज़ मर जाना, बहुत
मर के देखा तो अभी बाक़ी था अफ़साना बहुत

बच गये हम, हमने थोड़े को भी था जाना, बहुत
खो गये वरना यहाँ सब जिनको था पाना बहुत

दर्द में भी हर किसी से मुस्कराकर हम मिले
हमने तश्ना रहके भी छलकाया पैमाना बहुत

यूँ तो पहली बार ही आना हुआ है इस तरफ़
फिर भी लगता है जहाँ ज़्यूँ जाना-पहचाना बहुत

कब समझता है ये आसानी से बातें अक़्ल की
दिल तो नादां है इसे पड़ता है समझाना बहुत

उसकी परवाज़ों को तो कम-कम रहा हर आसमाँ
पर क़फ़स के वास्ते था एक ही दाना बहुत

ज़िन्दगी ने अपनी आदत-सी बना ली है इधर
रोज़ ठुकराना जहाँ को रोज़ पछताना बहुत

बाप तो बेटे की हाँ-हूँ सुनके उखड़ा-सा रहा
माँ ने टेलीफोन पर इतने को भी माना बहुत

शाइरी ही के लिए शायद था सारा एहतमाम
यूँ ही तो ग़म का न था इस दिल से याराना बहुत

3

नेकियाँ करके जो दरिया में डाल आता है
ऐसे इंसान का किसको ख़याल आता है

पहले दस्तार पे पड़ती है बुरे वक़्त की मार
बाद में सर को बचाने का सवाल आता है

ताज़ा दम घर से निकलता है सवेरे सूरज
शाम ढलते ही मगर होके निढाल आता है

ये अलग बात है कुछ कर न सकूँ मैं, लेकिन
दिल के जज़्बात में रह-रह के उबाल आता है

रात-दिन सोचता रहता हूँ तेरे बारे में
ज़िन्दगी तुझको भी ज़्या मेरा ज़्याल आता है

कब बदलता है कहीं कुछ भी कैलेंडर के सिवा
पिछले सालों की तरह हर नया साल आता है

**4**

मुश्किल भरे जहान में आसाँ रहा हूँ मैं
यानी तमाम उम्र परेशाँ रहा हूँ मैं

इस्लाम वाले हिन्दू समझते रहे मुझे
और हिन्दुओं के बीच मुसलमाँ रहा हूँ मैं

हमला न कर सकी कभी इन पर कोई ख़ुशी
अपनी उदासियों का निगहवाँ रहा हूँ मैं

उनको ज़रा भी फ़िक्र नहीं मेरे आज की
कल जिनकी ज़िन्दगानी का उन्वाँ रहा हूँ मैं

सच बोलने या सुनने की आदत नहीं जिन्हें
उनके लिए अजीब-सा इन्साँ रहा हूँ मैं

## सुरेन्द्र सिंघल

ये जिनके कान गिरवी हैं, उन्हें दुख अपना ज़्या कहना
मगर ये भी नहीं अच्छा, यूँ ही चुपचाप सब सहना

हवा का रुख़ बदलने की, अगर ताक़त नहीं हममें
किसी तिनके-सा बस यूँ ही, ज़रूरी तो नहीं बहना

न मैं नंगा हूँ, मुझे लड़ने दे मौसम के ख़ुदाओं से
वो लू हो, ठंड हो, हमदर्दियों के कपड़े मत पहना

चलो अब सरहदें लाँघों, कि दुनिया सब तुज़्हारी है
कि है जो चारदीवारी, शुरू कर देगी ख़ुद ढहना

मेरे दिल में न दीवारें, न दरवाज़े, न साँकल है
यहाँ दुनिया की जन्नत है, खुले दिल से यहाँ रहना

**2**

रात का वक़्त है और पैदल हूँ मैं, एक सुनसान रस्ता है क़दमों तले
एक भुतहा हवेली है जिसकी तरफ़ जा रहा हूँ मैं, कोई मुझे रोक ले

और कुछ भी न हो, और कुछ भी न हो, रास्तों की ये लज़्बाई कम तो लगे
साथ चल कर मेरे देख तो लो ज़रा, लौट आना अगर साथ मेरा खले

भींच कर अपने सीने से तुमने मुझे, जब कहा सिर्फ़ मेरे हो, मेरे हो तुम
तब न जाने मुझे ज़्यों ये लगने लगा, इतनी नज़दीकियों में भी हैं फ़ासले

जा रहा हूँ तुझे सौंप कर चाबियाँ अपने घर की, तू गाहे-बगाहे इसे
खोल कर देखियो, रखने दीजो मगर, कुछ परिन्दे जो इसमें रखे घोंसले

क़त्लगाहों की जानिब लिये जा रहे, वे हमें रास हमने थमायी जिन्हें
यूँ ही हँकते चले जायें या फिर उन्हें सींग मारें ये करने हैं अब फ़ैसले

## जहीर क़ुरैशी

घर के अन्दर देख कर या घर के बाहर देख कर
थक गया है आदमी ख़ुद को निरन्तर देख कर

न्याय-घर में भी बदल जाते हैं 'दर्पण' के बयान
मूल अपराधी के संकेतों में 'पत्थर' देख कर

चीखने की भी यहाँ पंछी को आज़ादी नहीं
चाकुओं के हाथ में अपने कटे 'पर' देख कर

उसको तालाबों के क़िस्सों में मज़ा आता नहीं
जो अभी लौटा है अपने घर, समन्दर देख कर

दोस्तों से राय लेना व्यर्थ लगता है मुझे
दोस्त मुझको राय देते हैं, मेरा 'स्वर' देख कर

**2**

वो घुप अँधेरे में भी ये कमाल कर देखे
पुरानी यादों के जुगनू निकाल कर देखे

वो सोन-मछली स्वयं चाहती है फँस जाना
कोई तो उसके लिए जाल डाल कर देखे

गवाह से वो उगलवा सका न वो उज़्र
वकील ने यूँ हज़ारों सवाल कर देखे

मैं किसके साथ रहूँ, इतने फ़ैसले के लिए
तमाम लोगों ने सिज़्के उछाल कर देखे

मिलेंगे लाखों जहाज़ों के शव समन्दर में
अगर समुद्र को कोई खँगाल कर देखे

## कुमार शिव

थामने कल जो चले थे रोशनी की उँगलियाँ
हाथ में लेकर खड़े हैं तीरगी की उँगलियाँ

जा रहा है शाम को सूरज किनारा छोड़कर
हिल रही हैं देखकर उसको नदी की उँगलियाँ

आज इसका चप्पा-चप्पा ख़ून से है तरबतर
किन फ़सादों में कटी हैं इस गली की उँगलियाँ

एक बादल बहुत पहचाना लगा कर रात को
बहुत अपनी-सी लगीं कल चाँदनी की उँगलियाँ

कोढ़ जैसी लग रही हैं आजकल जो आपको
हादसों में जल गयी थीं ज़िन्दगी की उँगलियाँ

चाहे दीमक लग चुकी है और गुज़री है मियाद
क़र्ज़ मेरा गिन रहीं अब तक बही की उँगलियाँ

सैकड़ों आये-गये गुम हो गये इस भीड़ में
रोक पाया कौन इस चंचल घड़ी की उँगलियाँ

## हस्ती मल हस्ती

काँच के टुकड़े को महताब बताने वाले
हमको आते नहीं आदाब ज़माने वाले

दर्द की कोई दवा लेके सफ़र पे निकलो
जाने मिल जाएँ कहाँ ज़ख़्म लगाने वाले

ग़ैर की आह से भी लोग तड़प जाते थे
वो ज़माना ही रहा ना वो ज़माने वाले

वो करिश्माई जगह है ये मुहब्बत की बिसात
हार जाते हैं जहाँ सबको हराने वाले

मेरे क़िस्से के सिवा फिर कोई क़िस्सा न हुआ
उठ गये बज़्म से सब सुनने सुनाने वाले

**2**

जब तलक लहरों से रिश्ता नहीं होने वाला
पार तुमसे कोई दरिया नहीं होने वाला

और भी चाहिए कुछ दिल के उजालों के लिए
सोने-चाँदी से उजाला नहीं होने वाला

उसके परदे पे निगाहों को जमाये रखना
हर घड़ी उसका इशारा नहीं होने वाला

लाख इसरार करें कितना ही रोयें बच्चे
सस्ता अब कोई खिलौना नहीं होने वाला

आज वो मुझसे दवा माँग रहे हैं 'हस्ती'
जो ये कहते थे मैं अच्छा नहीं होने वाला

## इक जंग जारी है तो है

### एहतराम इस्लाम

अग्नि-वर्षा है तो है, हाँ! बर्फ़बारी है तो है
मौसमों के दरमियाँ इक जंग जारी है तो है

ज़िन्दगी का लज़्हा-लज़्हा उसपे भारी है तो है
क्रान्तिकारी व्यज़्ति, कुछ हो, क्रान्तिकारी है तो है

मूर्ति सोने की निरर्थक वस्तु है, उसके लिए,
मोम की गुड़िया अगर बच्चे को प्यारी है तो है

ख़ूँ-पसीना एक करके हम सजाते हैं इसे,
हम अगर कह दें कि यह दुनिया हमारी है तो है

रात कोठे पर बिताता है कि होटल में कोई
रोशनी में दिन की, मन्दिर का पुजारी है तो है

अपनी कोमल भावना के रज़्त में डूबी हुई,
मात्र श्रद्धा आज भी भारत की नारी है तो है

हैं तो हैं दुनिया से बेपरवा परिन्दे शाख़ पर
घात में उनके कहीं कोई शिकारी है तो है

आप छल-बल के धनी हैं जीतिएगा आप ही
आपसे बेहतर मेरी उज़्मीदवारी है तो है

देश की सज़्पन्नता कितनी बढ़ी है, देखिए
सोचिये ज़्यों? देश की जनता भिखारी है तो है

दिल्लियों अमृतसरों की भीड़ में खोई हुई
देश में अपने, कहीं कन्याकुमारी है तो है

'एहतराम' अपने ग़ज़ल लेखन को कहता है कला
आप कहते हैं उसे जादूनिगारी, है तो है

**2**

ज़्या फ़िक्र की अँधियारा अजय ज़ी तो नहीं है
फिर सूर्य के उगने का समय भी तो नहीं है

संघर्ष बिना प्राप्त सफलता पे न इतराओ
यारो, ये विजय कोई विजय भी तो नहीं है

मैं अपना अहं तोड़ के रख दूँ पर तुज़्हारा
हो जाएगा मन साफ़ ये तय भी तो नहीं है

वैभिन्य दिशाओं का भला कैसे मिटेगा
सज़्भाव्य विचारों का विलय भी तो नहीं है

ज़्यों पाप छिपा लेने का अपराध करूँ मैं,
मुझको किसी भगवान का भय भी तो नहीं है

3

अन्तरगति का चित्र बना दो काग़ज़ पर
मकड़ी के जाले तनवा दो काग़ज़ पर

गुमराही का नरक न लादो काग़ज़ पर
लेखक हो तो स्वप्न सजा दो काग़ज़ पर

युज़्ति करो अपना मन ठंडा करने की
शोलों के बाज़ार लगा दो काग़ज़ पर

होटल में नंगे जिस्मों को प्यार करो
बेशर्मी का नाम मिटा दो काग़ज़ पर

कोई तो साधन हो जी ख़ुश रखने का
धरती को आकाशा बना दो काग़ज़ पर

यादों की तस्वीर बनाने बैठे हो
आँसू की बूँदें टपका दो काग़ज़ पर

अनपढ़ को जिस ओर कहोगे जाएगा
सज़्य-सुशिक्षित को बहका दो काग़ज़ पर

4

आँखों में भड़कती हैं आक्रोश की ज्वालाएँ
हम लाँघ गये शायद सन्तोष की सीमाएँ

पग-पग पे प्रतिष्ठित हैं पथ भ्रष्ट दुराचारी
इस नक़्शे में हम ख़ुद को किस बिन्दु पे दर्शाएँ

अनुभूति की दुनिया में भूकम्प-सा आया है
आधार न खो बैठे निष्ठाएँ, प्रतिष्ठाएँ

बाँसों का घना जंगल कुछ काम न आएगा
हाँ खेल दिखा देंगी कुछ अग्नि-शलाकाएँ

सीने से धुआँ उठना कब बन्द हुआ कहिये
कहने को बदलती ही रहती हैं व्यवस्थाएँ

वीरानी बिछा दी है मौसम के बुढ़ापे ने
कुछ गुल न खिला डालें यौवन की निराशाएँ

तस्वीर दिखानी है भारत की तो दिखला दो
कुछ तैरती पतवारें, कुछ डूबती नौकाएँ

## ज्ञानप्रकाश विवेक

किसने कहा ज़मीन पर तारे बिछा के देख
मिट्टी का इक चराग़ ज़मीं पर जला के देख़

मुमकिन है आसमान की तू छू ले सरहदें
बस एक बार हाथ तो अपना उठा के देख

जूते घिसे हुए हैं तो इसका मलाल ज्या
नंगे हैं तेरे पाँव इन्हें आज़मा के देख

मिलते थे जिस उजाड़ में हम-तुम कभी-कभी
मैं आज जा रहा हूँ वहाँ, तू भी आ के देख

गर ये नया समय तुझे माफ़िक नहीं तो ज्या
अपने पुराने दोस्तों से मिल-मिला के देख

कमरे का तापमान बदल जाए ज्या पता
तन्हाइयों के साथ ज़रा गुनगुना के देख

मैंने ये सब चराग़ लहू से जलाये हैं
तूफ़ान, तेरी ज़िद है तो इनको बुझा के देख

इस रास्ते पे कहकशाँ की बात है फ़ज़ूल
किरचों पे चल सके तो मेरे साथ आ के देख

2

जश्ने-नाकामी मनाकर ख़ुश हुए
काग़ज़ी रावण जलाकर ख़ुश हुए

हम तो यारों इस नगर में थे नये
हाथ ग़ैरों से मिलकार ख़ुश हुए

मछलियों से उनकी थी कुछ दुश्मनी
आग पानी में लगाकर ख़ुश हुए

लोग चट्टानों से लड़कर आये थे
और तुम कंकर उठाकर ख़ुश हुए

उर्मिला का जाने क्यूँ सोचा नहीं
लक्ष्मण बनवास पाकर ख़ुश हुए

एक गूँगा आदमी बेचैन था—
सब गवैये गा-बजाकर ख़ुश हुए

आग की लपटें पकड़ लीं हाथ में
अपनी क़ुव्वत आज़मा कर ख़ुश हुए

कोट मेरा था शिग़ाफ़ों से भरा
सब मेरी खिल्ली उड़ाकर ख़ुश हुए

बालकों की सादगी तो देखिए
वो मेरे जुगनू चुराकर ख़ुश हुए

3

दोस्तो, मुझपे अजब क़िस्म का जुर्माना था
मौत की धुन पे कोई राग मुझे गाना था

वेदना! देख, तेरी मैंने पकड़ ली उँगली
कहकहों ने तो मुझे छोड़ के आ जाना था

वो सगा भाई जो घर आया कई साल के बाद
मैंने तो उसको बड़ी देर से पहचाना था

ज़ख़्म को देख के अफ़सोस जतानेवालो
अपने घर से ज़रा महरम तो उठा लाना था

धूप कमरे में चली आयी तो मैंने जाना
इस दिसज़्बर का ये सबसे बड़ा नज़राना था

वो परिन्दा था भटकना था उसे जंगल में
मैं था इंसान, मुझे लौट के घर आना था

तू भी फिरती थी उदासी की उठाकर गठरी
मेरे अन्दर भी कोई दर्द का तहख़ाना था

4

संवेदनाओं की बहती हुई नदी रख ली
किसी फ़कीर की जीवन में सादगी रख ली

सफ़र में जाते हुए तुमने रख लिए कपड़े
कि हमने बैग में यादों की डायरी रख ली

मिला के हाथ अँधेरे ने मुझको यूँ देखा
कि जैसे उसने मेरे साथ दोस्ती रख ली

हवाओं, तुमसे मुझे रंज है तो इतना है
कि तुमने मेरे चराग़ों की रोशनी रख ली

पुराने वक़्त का कमरा वही रहा लेकिन
नये मिज़ाज की टेबल तो हमने भी रख ली

ये तितलियों की शिकायत फ़जूल है यारो
कि एक शूल ने फूलों की ताज़गी रख ली

कोई ग़रीब नहीं होता दोस्ताने में
कृशन ने देख, सुदामा की पोटली रख ली

## यश मालवीय

है कभी पत्थर कभी लोहा ग़ज़ल
किसलिए कहिये कि है शीशा ग़ज़ल

जो निहत्थे थे समय की जंग में
हाथ का उनके हुई भाला ग़ज़ल

है मुखर इतनी कि बहरे तक सुनें
ज़्यों न खोले होठ का ताला ग़ज़ल

चल रही है पाँव में छाले लिये
हाथ में मेंहदी रचाये ज़्या ग़ज़ल

मुट्ठियों में क़ैद हो सकती नहीं
चिलचिलाती धूप में पारा ग़ज़ल

कहकहों का दम अचानक घुट गया
हो गयी जिस लज़्हा संजीदा ग़ज़ल

फ़ितरतन बहती है दरिया की तरह
कैसे हो सकती है पेचीदा ग़ज़ल

रात के काले घने माहौल में
और भी लगती है पाकीज़ा ग़ज़ल

**2**

वज़्त का तेवर बदलता है बताओ ज़्या करें
ऊबकर भी जी बहलता है बताओ ज़्या करें

चाँद को रोटी समझकर भूख की दहलीज़ पर
एक नन्हा शिशु मचलता है बताओ ज़्या करें

मेमने की गन्ध पर क़ाबू नहीं औ' सिंह में
फाड़ खाने की कुशलता है बताओ ज़्या करें

शाम तक भी गर न लौटा सुज़्ह का भूला हुआ
सोचकर ही जी दहलता है बताओ ज़्या करें

शून्य से नीचे उतर आया है पैमाना, वहीं
धमनियों में ख़ूँ उबलता है बताओ ज़्या करें

गिर गये जो लोग उनको देखकर फिर, बल्लियों
दोस्तों का मन उछलता है बताओ ज़्या करें

सुबह पाकर भी किसी ख़रगोश सा सहमा हुआ
बादलों में सच टहलता है बताओ ज़्या करें

**3**

ठोस लिखना या तरल लिखना
दोस्त मेरे कुछ सरल लिखना

पाँव जब पथ से भटकते हों
गाँव की कोई मसल लिखना

आस्था के सिन्धुमन्थन में
नाम पर मेरे गरल लिखना

वायदों की एक सूची है
नीति पर अपनी अमल लिखना

भोर में भी सो रहे हैं जो
नींद में उनकी ख़लल लिखना

झूठ का चेहरा उतर जाये
बात जब लिखना असल लिखना

रोशनी चुँधिया न दे सच को
सोच में अपनी बदल लिखना

**4**

पुरानी धड़कनों का मोल दे दो
हमारे हाथ में कश्कोल दे दो

कहानी है तनी रस्सी सरीखी
कहानी में ज़रा सा झोल दे दो

रहे कुछ तो सुहाना पास अपने
हमें वो दूर के ही ढोल दे दो

कि जिससे लड़ सकें हम तीरगी से
हमें वो पैरहन, वो खोल दे दो

हमें इतिहास से निस्बत नहीं है
हमारे वज़्त का भूगोल दे दो

हवाएँ देख लें चेहरा समय का
सलीक़े से कोई भूडोल दे दो

## विजय किशोर मानव

एक ओर माँ लेटी एक ओर बाबू जी
खाँस रहे माँ से भी ज़ोर ज़ोर बाबू जी

बोये कोई, काटे दूसरा, चरे कोई
चीखा करते बैठे चोर चोर बाबू जी

चौतरफ़ा नथे लोग, जुते हुए बैलों-से
देख रहे चाबुक से लैस ढोर बाबू जी

चूर आईने मिलते सुबह गली में बिखरे
रोज़ फेंकते हैं किरचें बटोर बाबू जी

मोमबज़ियों जैसे जले गले रातों में
बैठे सर पीट रहे देख भोर बाबू जी

फाड़कर कमीज़ दिया गुल करके बैठ गये
अन्धों के हाथों में देख डोर बाबू जी

आधी चिट्ठी बाँची, आँखें पूरी भरीं
डूब गये बेटे में पोर पोर बाबू जी

2

बौने हुए विराट हमारे गाँव में
बगुले हैं सम्राट हमारे गाँव में

घर घर लगे धर्मकाँटे लेकिन
नक़ली सारे बाट हमारे गाँव में

हर मछली को सुख के आश्वासन
मछुआरे हैं घाट हमारे गाँव में

मुखिया का कुरता है रेशम का
भीड़ पहनती टाट हमारे गाँव में

सुबह पीठ मिलती है छिली हुई
चुभती है हर खाट हमारे गाँव में

रात शुरू होकर दिन भर चलते
चज़्की के दो पाट हमारे गाँव में

दिन भर खटकर सोना आधे पेट
ऐसा बन्दरबाँट हमारे गाँव में

## उपेन्द्र कुमार

शर्तें समझ के दाँव लगाये हुए हैं लोग
ज़्या-ज़्या न ज़िन्दगी को बनाये हुए हैं लोग

ख़ुद को ही ख़ुद से ख़ूब छुपाये हुए हैं लोग
सूरज पे मगर दोष लगाये हुए हैं लोग

अब आईना छुपाइये, चेहरा बचाइये
पत्थर हरेक ओर उठाये हुए हैं लोग

क़ानून जा छुपा किसी क़ातिल के शिविर में
इंसाफ़ की गुहार मचाये हुए हैं लोग

चलिये तिमिर के पार के मंज़र भी देख लें
उज़्मीद की मशाल जलाये हुए हैं लोग

चुप्पी तो उनकी सिर्फ़ छलावा है वज़्त का
दिल में हज़ार ग़म भी छुपाये हुए हैं लोग

**2**

ये जो दर्द है अपने सीने में, ये नया भी है, ये अजीब भी
कि उगा है दिल की ज़मीन से ये दिमाग़ के है क़रीब भी

जो क़दम हमारे ये तेज़ हैं वे उसी उज़्मीद का फ़ैज़ है
जो दिखाये मौत की घाटियाँ जो बनी है अपनी सलीब भी

यूँ जले नगर की शवों को भी वो कफ़न न कोई दे सका
कि पहुँच के चाँद पे आदमी, रहा किस क़दर ग़रीब भी

मेरी पूँजी तमाम दर्द थी, उसे किस तरह कोई जानता
ये जो दर्द होता ज़मीन सा कोई माप लेती ज़रीब भी

कोई और वादे कीजिए कि समय का दुख तो दराज़ है
न ये वज़्त टलने की चीज़ है, न बदल सकेगा नसीब भी

## देवेन्द्र आर्य

कभी पेड़ो कों भी छुट्टी दिया कर
हवा तू भी कभी पैदल चला कर

मैं संगे-मील होके रह न जाऊँ
सफ़र की गर्द को अपना बना कर

बग़ावत दुम हिलाती आ गयी फिर
इसे चलता करो कुछ दे दिला कर

सड़क पर जब कभी चलना हो तुझको
कलेजा हाथ में लेकर चला कर

मैं ज़्या सूरज नया पैदा करूँगा
बड़ा जो भी बना है ज़ुल्म ढाकर

नज़र की ख़ैरियत गर चाहता हो
उजाले से अँधेरे में मिला कर

गढ़ी है वक़्त की तस्वीर मैंने
समय की आँच में सपने गला कर

ख़र्राटें भर रहे थे रात को
मैं जब आयी थी बच्चे को सुला कर

2

बस्ती, जंगल, पर्वत, मौसम, फ़सलें भी हैं, बंजर भी
नदियों के भीतर ही होता है इक खारा सागर भी

सर ऊँचा करके जीने की जबसे ठानी है मैंने
मुझको दहशतगर्द समझता है मेरा अपना घर भी

सरकारी नौकरियाँ भूख, हिकारत, कुंठा देती हैं
केवल एन.जी.ओ. में ही रोटी भी है, आदर भी

घर का मतलब और नहीं, इक ख़ास तरह की ख़ुशबू है
जिसके खो जाते ही अनजाना-सा लगता बिस्तर भी

हर शब, हर दिन चुभता रहता है इसका अहसास मुझे
जो कुछ मेरी पहुँच में है ज़्या उतना ही है बेहतर भी

जल्दी और ज़ियादा, चाहे जैसे वाला वक़्त है ये
इसमें ही हमको रह के देनी है इसको टक़्कर भी

किसे चुने और छोड़ें किसको, धरती और गगन में से
हिन्दुस्तानी औरत में पीहर भी है और नैहर भी

तुम ख़ुशबू की तरह ज़माने भर में पहचाने जाओ
लेकिन इसमें हर पल ख़ुद के खो जाने का है डर भी

इक चौकन्ना बड़बोलापन तो है ही इन ग़ज़लों में
दम आधी आवाज़ें भी हैं, चुभ जाने वाला स्वर भी

## बल्ली सिंह चीमा

हमारी याद को चाहो तो ताक पर रखना
नयी जगह है वो ख़ुद को सँभालकर रखना

तुझें मिला हूँ तो मुझको ख़्याल आया है
तुझीं से सीख लूँ ख़ुद को सँवारकर रखना

ये पोज भी उसकी आदत का एक हिस्सा है
किसी भी सोच में उँगली को गाल पर रखना

किसी दुष्यन्त से जुड़ती हैं गर तेरी राहें
तो उसकी याद अँगूठी सँभालकर रखना

ये तय है कि वो आएँगे आज ही 'बल्ली'
इसी उम्मीद में घर को सँवारकर रखना

**2**

डूबते वक़्त भी तिनके का सहारा है मुझे
यूँ लगे है कि किनारों ने पुकारा है मुझे

इन अभावों में मुहब्बत की नदी सूख गयी
फिर भी लगता है कि सोहनी ने पुकारा है मुझे

मौत हर मोड़ मुसीबत में मेरे साथ रही
फिर भी जीवन हर एक चीज़ से प्यारा है मुझे

मैं न मरता जो ग़रीबी न सताती मुझको
कौन कहता है तेरे गम ने ही मारा है मुझे

इस ग़रीबी ने बहुत दुख भी दिये हैं 'बल्ली'
फिर भी जीवन के संघर्षों में उतारा है मुझे

## हृदयेश मयंक

नज़र को ख़्वाब परों को नयी उड़ान मिले
ख़ुदा करे तेरी चाहत को इक जहान मिले

ख़ला में उड़ते हुए पंख जब लगें थकने
सुहानी शाम हो चिड़ियों का इक बगान मिले

चले जो ज़िक्र तो महफ़िल के आसपास कहीं
तेरा वजूद मुझे सबके दरमियान मिले

यही चलन है ज़माने में अब तलक साहिब
हर इक चढ़ान के आगे कोई ढलान मिले

जो चाहो रख लो ये दुनिया समेट कर ख़ुद में
मगर 'मयंक' को छोटा-सा इक मकान मिले

**2**

बिकने ख़रीदने में रुकावट नहीं रही
हम सब हुए ग़ुलाम कि आहट नहीं रही

कुछ लोग झुग्गियों को परेशाँ हैं देखकर
पहले-सी शहर की जो सजावट नहीं रही

चेहरों की झुर्रियों में है तस्वीर देश की
कहता है कौन साफ़ लिखावट नहीं रही

वे लोग जो मरे थे दवाओं के ज़हर से
तहक़ीक़ में दवा के मिलावट नहीं रही

सूरज को बादलों से निकलने की देर थी
धरती पे तीरगी की बुनावट नहीं रही

## चन्द्र त्रिखा

ख़ूबसूरत तितलियों के काट कर पर ले गया
सिर्फ़ दहशत के लिए मासूम का सर ले गया

हाथ में अंजील, आँखों में लहू, चेहरे पे ख़ौफ
इक मसीहा कल चरागाहों में खंज़र ले गया

रतजगे, वो महफ़िलें, वो सैर जुए बार की
एक कर्फ़्यू मुझसे कैसे कैसे मंज़र ले गया

कौन दहशत भर गया मोनालिज़ा की आँख में
कौन था मुस्कान के जो मूक ज़ेवर ले गया

हादसों की इक नयी मीनार चिनवाई गयी
कौन था जो फ़न के प्यारे प्यारे तेवर ले गया

**2**

दिये की लौ जो हवाओं में थरथराती है
ज़िन्दगी मौत से आगाह हुई जाती है

अज़्सर आबाद इलाक़ों में ही दम घुटता है
मरघटों में तो बड़ी ठंडी हवा आती है

कैसी आवारा सियासत है जो हर शाम ढले
झोंपड़ी छोड़ के महलों में चली जाती है

हमने सूरज को भी, चन्दा को भी बिकते देखा
दर्द के गाँव से 'बेदर्द' सी बू आती है

हमने यादों को सँजोया भी सलीक़े से, मगर
ज़िन्दगी फिर भी बिखरती ही चली जाती है

ग़ैर से पूछते हैं अपने ही घर का रस्ता
एक आवारा ग़ज़ल यूँ भी तो भटकाती है

## द्विजेन्द्र 'द्विज'

बन्द कमरों के लिए ताज़ा हवा लिखते हैं हम
खिड़कियाँ हों हर जगह, ऐसी दुआ लिखते हैं हम

आदमी को आदमी से दूर जिसने कर दिया
ऐसी साज़िश के लिए हर बद्दुआ लिखते हैं हम

बिछ गयी हैं जो सुरंगें ज़िन्दगी की राह में
उन सुरंगों से निकलता रास्ता लिखते हैं हम

रौशनी का नाम देकर आपने बाँटे हैं जो
उन अँधेरों को कुचलता हौसला लिखते हैं हम

जो बराबर चल रहा हो मंज़िलों के वास्ते
हर क़दम पर एक ऐसा क़ाफ़िला लिखते हैं हम

**2**

दूर तक काली अँधेरी रात गुर्राती रही
रौशनी फिर भी हमारे संग बतियाती रही

स्वार्थों की धौंकनी को आग सुलगाती रही
गाँव की सुन्दर ज़मीं पर धुन्ध बिखराती रही

'सत्य' और 'ईमान' के सब तर्क थे हारे थके
'भूख' मनमानी से अपनी बात मनवाती रही

लाखों बेबस झुग्गियों के सोरी दीपक छीनकर
चन्द फ़र्मानों की बस्ती झूमती-गाती रही

खुरदरे हाथों से लेकर पाँवों के छालों तलक
रोटियों की कामना ज़्या-ज़्या न दिखलाती रही

रास्ता पहला क़दम उठते ही तय होने लगा
फ़लसफ़ों की भीड़ नाहक उसको उलझाती रही

## चाँद शेरी

मेरा वो आशना था बहुत
मुझसे लेकिन ख़फ़ा था बहुत

ज़र्द पत्ते हरे हो गये
बादलों में नशा था बहुत

मेरी नींदें चुरा ले गया
देखने में भला था बहुत

फड़फड़ाता है अब क़ैद में
जो परिन्दा उड़ा था बहुत

तिनका तिनका नशेमन हुआ
आँधियों से लड़ा था बहुत

ख़ूने-दिल से जो उन्वाँ लिखा
सुर्ख़ियों में छपा था बहुत

दिल के काग़ज़ पे 'शेरी' तेरे
हाशिया रह गया था बहुत

2

एक लम्बी क़तार बाक़ी है
मुफ़लिसों की पुकार बाक़ी है

सूद ही सूद में बिका सबकुछ
जो लिया था उधार बाक़ी है

क़त्ल मासूम हो गये लाखों
फिर भी ख़ंजर की धार बाक़ी है

नींद तो उड़ गयी धुआँ बन कर
जलती बुझती सिगार बाक़ी है

बस यही ग़म-गुसार है मेरा
हाथ में जो सितार बाक़ी है

रौनक़ें कारवाँ के साथ गयीं
धूल उड़ाता ग़ुबार बाक़ी है

आदमीयत तो मर गयी 'शेरी'
अब तो उसका मज़ार बाक़ी है

## अतुल अजनबी

अजब ख़ुलूस सादगी से करता है
दरख़्त नेकी बड़ी ख़ामोशी से करता है

मैं उसका दोस्त हूँ अच्छा, यही नहीं काफ़ी
उम्मीद और भी कुछ दोस्ती से करता है

जवाब देने को जी चाहता नहीं उसको
सवाल वैसे बड़ी आजिज़ी से करता है

जिसे पता ही नहीं शाइरी का फ़न क्या है
वो कारोबार यहाँ शाइरी से करता है

समन्दरों से लड़े तो उसे पता भी चले
लड़ाई करता है वो भी नदी से करता है

नयी नहीं है ये उसकी पुरानी आदत है
शिक़ायतें हों किसी की, किसी से करता है

मुक़ाबले के लिए लोग और भी हैं मगर
मुक़ाबला वो अतुल अजनबी से करता है

**2**

सर पर हमारे साया-ए-दीवार भी नहीं
सूरज सा हम फ़क़ीरों के घर बार भी नहीं

मुझसे तअल्लुक़ात का इक़रार भी नहीं
और कोई पूछतार है तो इनकार भी नहीं

गहराई उस नदी की भला क्या पता लगे?
जिसमें भँवर नहीं कोई मझधार भी नहीं

जिसको तमाम उम्र अमल में न ला सके
ऐसी वो राय देने का हक़दार भी नहीं

साँसों की डोर थामे चली जा रही है उम्र
वरना किसी से कोई सरोकार भी नहीं

## सलीम अख़्तर

शाम आई तो भरम सारे किताबी निकले
गाँव के लोग तो सूरज के पुजारी निकले

होठ भी खेतों के उनसे तो भिगोये न गये
बादलों के घड़े बरसात में ख़ाली निकले

याद है उसकी, कि तन्हाई में जंगल का सफ़र
या कि खँडहर से कोई क़ब्र पुरानी निकले

शाम का बूढ़ा चला चाँद की क़न्दील लेकर
रात दामन में लिये कोई कहानी निकले

वक़्त सर देने का आया तो रहा मैं तन्हा
यार तुम लोग तो बातों के खिलाड़ी निकले

जिनके हाथों में दी है क़ौम की क़िस्मत हमने
हाय वो लोग भी काग़ज़ के सिपाही निकले

**2**

अपने हिस्से में है अज़ाबों सी
ज़िन्दगी हाई-वे के ढाबों सी

बुद्ध, नानक, कबीर की बातें
आज दीमक लगी किताबों सी

दुख के ढोए पहाड़ सुब्हों शाम
और ख़ुशियाँ है बात ख़्वाबों सी

आपकी सोच ने है फैलाई
गन्ध माहौल में जुराबों सी

आप भी क्या? चरित्र रखते हैं
ज़हन गन्दा, ज़ुबाँ गुलाबों सी

3

सोचा था हम भी लाएँगे हीरे ख़रीद कर
लौटे हैं चन्द काँच के टुकड़े ख़रीद कर

नादान कौन होगा हमारी तरह यहाँ
हम पालते हैं साँप के बच्चे ख़रीद कर

मेरी सख़ावतों पे न तनक़ीद कीजिये
मैंने उजाले बाँटे, अँधेरे ख़रीद कर

इंसाफ़ जा के खो गया सिक्कों की भीड़ में
इतरा रहे हैं सच्चों को झूठे ख़रीद कर

घोड़ों को बेच-बाच के सरकार सो गयी
ख़ुश हो गयी अवाम भी सपने ख़रीद कर

बच्चों से दूर ईद के दिन बदनसीब बाप
बहला रहा था ख़ुद को खिलौने ख़रीदकर

**4**

रह गये क़द वाले लेकिन सारे बौने बिक गये
इस नुमाइश में तो मिट्टी के खिलौने बिक गये

धर्म, मज़हब का अँधेरा खा गया हर इल्म को
इस सदी की रोशनी में जादू-टोने बिक गये

दोस्तो, धनवान के तो झूठ भी अनमोल थे
मुफ़लिसों के सच यहाँ पर औने-पौने बिक गये

देखिये ये भी करिश्मा बदनसीबी का हुज़ूर
छातियाँ माँओं की सूखी नन्हे-मुन्ने बिक गये

थी बहुत महँगी वो गुड़िया आज भी बाज़ार में
जिसकी ख़ातिर कल मेरे सपने-सलोने बिक गये

## नूर मुहज़्मद नूर

उधर इस्लाम ख़तरे में, इधर है राम ख़तरे में
मगर मैं ज़्या करूँ, है मेरी सुज़्हो-शाम ख़तरे में

वो ग़म वाले से बम वाले हुए उनको पता ज़्यों हो
कि मुश्किल में मेरी रोटी है मेरा जाम ख़तरे में

ये ज़्या से ज़्या बना डाला है हमने मुल्क को अपने
कहीं हैरी, कहीं हामिद, कहीं हरनाम ख़तरे में

ग़ज़लगोई ये अफ़साने, रिसाले और तहरीकें
किताबत, सचकलामी, हाय सारे काम ख़तरे में

न बोलो सच ज़ियादा 'नूर' वर्ना लोग देखेंगे
तुज़्हारी जान जोख़िम में तुज़्हारा नाम ख़तरे में

**2**

बस्तियों में सर छुपाने को ठिकाना ढूँढ़ना
बंजरों में पागलों सा आबोदाना ढूँढ़ना

जिस तरह सहरा में पानी ढूँढ़ते हैं तिश्नालब
दोस्तों के बीच रहकर, दोस्ताना ढूँढ़ना

आदमी में आदमीयत और ख़ुशबू फूल में
हो सके तो शहर में अब ये ख़ज़ाना ढूँढ़ना

शे'र कहना अब अदब के वास्ते, ऐसा लगे
जैसे गूँगों के लिए कोई तराना ढूँढ़ना

ढूँढ़ते हैं अब तेरे हमअस्त्र मक़तल में पनाह
'नूर' तुम लफ़्ज़ों में तेवर क़ातिलाना ढूँढ़ना।

## कमलेश भट्ट 'कमल'

गुलाबों में कभी मैं हूँ, कभी मैं गुलमोहर में हूँ
मेरी चाहत है फूलों की, मैं फूलों के नगर में हूँ

समझती है बड़ा दुनिया ये उसकी मेहरबानी है
मेरा क़द तो बस उतना है जो मैं ख़ुद की नज़र में हूँ

जहाँ जाता हूँ, मुझको इतना सारा प्यार मिलता है
ये लगता ही नहीं, मैं घर से बाहर हूँ कि घर में हूँ

मेरी फ़ितरत में चलना है तो मुझको कौन रोकेगा
मैं चाहे चाँदनी में हूँ, मैं चाहे दोपहर में हूँ

मेरी हर एक मंज़िल फिर नया आग़ाज देती है
मैं कल भी इक सफ़र में था, मैं अब भी इक सफ़र में हूँ

मैं ख़ुद में खोजने निकलूँ तो ख़ुद को ही नहीं पाता
जो देखूँ, ख़ुद से बाहर तो लगे, मैं हर बशर में हूँ

अगर थक जाऊँ तो यह ज़िन्दगी ख़तरे में पड़ती है
यहाँ हर पल मुझे लड़ना है, मैं ऐसे समर में हूँ

## जयकृष्ण राय तुषार

खार से रिश्ता भले खार की सूरत रखना
फूल से मिलना तो फूलों-सी तबीयत रखना

जब भी तक़सीम किया जाता है हँसते घर को
सीख जाते हैं ये बच्चे भी अदावत रखना

हम किसे चूमें किसे सीने पे रखकर रोयें
दौर-ए-ईमेल में मुमकिन है कहाँ ख़त रखना

ज़िन्दगी बाँह में बाँधा हुआ ताबीज़ नहीं
गर मिली है तो इसे जीने की क़ुव्वत रखना

जिसके सीने में सचाई के सिवा कुछ भी नहीं
उसके होठों पे उँगलियों को कभी मत रखना

रेशमी ज़ुल्फ़ें, ये आँखें, ये हँसी के झरने
किस अदाकार से सीखा ये मुसीबत रखना

चाहता है जो तू दरिया से समन्दर होना
अपना अस्तित्व मिटा देने की फ़ितरत रखना

जब उदासी में कभी दोस्त भी अच्छे न लगें
क़ैद-ए-तनहाई की इस बज़्म में आदत रखना

इसको सैलाब भी रोके तो कहाँ रुकता है
इश्क़ की राह, न दीवार, न ही छत रखना

**2**

उसी के क़दमों की आहट सुनाई देती है
कभी-कभार वो छत पर दिखाई देती है

मैं उससे बोलूँ तो वो चुप रहे ख़ुदा की तरह
मैं चुप रहूँ तो ख़ुदा की दुहाई देती है

वो एक ख़त है जिसे मैं छिपाये फिरता हूँ
जहाँ ख़ुलूस की स्याही दिखाई देती है

तमाम उम्र उँगलियाँ मैं जिसकी छू न सका
वो चूड़ी वाले को अपनी कलाई देती है

वो एक बच्ची खिलौनों को तोड़कर सारे
बड़े सलीक़े से माँ को सफ़ाई देती है

**3**

समन्दर से उठे हैं या नहीं बादल ये रब जाने
नजूमी बाढ़ का मंज़र लगे खेतों को दिखलाने

नमक से अब भी सूखी रोटियाँ मज़दूर खाते हैं
भले ही कृश्न चन्दर ने लिखे हों इनपे अफ़साने

रईसी देखना है मुल्क की तो ज्यों भटकते हो
सियासतदाँ का घर देखो या फिर मन्दिर के तहख़ाने

मुसाफ़िर छोड़ दो चलना ये रस्ते हैं तबाही के
यहाँ हर मोड़ पे मिलते हैं साक़ी और मयख़ाने

चलो जंगल से पूछें या पढ़ें मौसम की ख़ामोशी
परिन्दे उड़ तो सकते हैं मगर गाते नहीं गाने

ये वो बस्ती है जिसमें सूर्य की किरणें नहीं पहुँचीं
करेंगे जानकर भी ज्या ये सूरज चाँद के माने

सफ़र में साथ चलकर हो गये हम और भी तन्हा
न उनको हम कभी जाने न वो हमको ही पहचाने

4

आराकशी को अपना हुनर मत बनाइये
जंगल तबाह करके शहर मत बनाइये

लौटेंगे शाम होते ही पंछी उड़ान से
उनके मकाँ को तोड़ के घर मत बनाइये

ताज़ा हवा, ये फूल, ये ख़ुशबू न छीनिए
मुश्किल हमारा और सफ़र मत बनाइये

ईज़ाद यूँ तो नस्लें नयी कीजिए मगर
बौना हो जिसका क़द वो शजर मत बनाइये

पत्थर में भी हुनर है तो तारीफ़ कीजिए
ज़ेहनों को अपने तंग-नज़र मत बनाइये

बस्ती ये पुरसुकून है दिल्ली में ही रहें
अपना निवास आप इधर मत बनाइये

काला धुआँ है सिर्फ़ तरक़्क़ी के नाम पर
वातावरण को आप ज़हर मत बनाइये

इनका तो काम प्यास बुझाना है दोस्तो
नदियों के दरमियान गटर मत बनाइये

ख़बरों की असलियत का पता कुछ हमें भी है
शोहरत के वास्ते ही ख़बर मत बनाइये

## राजेन्द्र तिवारी

मेरी ख़ामोशियों में भी फ़साना ढूँढ़ लेती है
बड़ी शातिर है ये दुनिया बहाना ढूँढ़ लेती है

हक़ीक़त ज़िद किये बैठी है चकनाचूर करने की
मगर हर आँख फिर सपना सुहाना ढूँढ़ लेती है

उठाती है जो ख़तरा हर क़दम पर डूब जाने का
वही कोशिश समन्दर में ख़ज़ाना ढूँढ़ लेती है

न चिड़िया की कमाई है न कारोबार है कोई
वो केवल हौसले से आबोदाना ढूँढ़ लेती है

जुनूँ मंज़िल का राहों में बचाता है भटकने से
मेरी दीवानगी अपना ठिकाना ढूँढ़ लेती है

2

मुफ़लिस की जवानी के लिए सोचता है कौन
अब आँख के पानी के लिए सोचता है कौन

प्यास अपनी बुझाने में हैं मसरूफ़ सभी लोग
दरिया की रवानी के लिए सोचता है कौन

मिट्टी के खिलौनों पे फ़िदा होती है दुनिया
मिट्टी की कहानी के लिए सोचता है कौन

बेताब नयी नस्ल है पहचान को अपनी
पुरखों की निशानी के लिए सोचता है कौन

सब अपने लिए करते हैं लफ़्ज़ों की तिजारत
लफ़्ज़ों के मआनी के लिए सोचता है कौन

## योगेन्द्र दत्त शर्मा

इस शहर के सुर्ख़ नज़ारों में, एक ज़र्द-सा क़स्बा याद आया
दिन-रात के मस्त उजालों में, एक शाम का चेहरा याद आया

इस जद्दोजहद, हंगामे में, सब प्यार-मुहब्बत भूले थे
घर छोड़ते वक़्त का, वो तेरा छूटा हुआ जुमला याद आया

तक़दीर है क्या, तदबीर है क्या, यह एक क़शमकश साथ चली
दरिया की उफनती लहरों में, एक ऊँघता सहरा याद आया

सदियों की कला, सदियों का हुनर, सदियों के निशाँ, सदियों का सफ़र
फिर भी इस दौर की हलचल में, बग़दाद का नक़्शा याद आया

गंगा का नमन, जमुना की छुअन, ग़ालिब की ग़ज़ल, मीरा के भजन
एक सब्ज़-सी बस्ती में अक्सर एक टूटता पत्ता याद आया

वो शान, वो शोहरत, वो रौनक़, वो भीड़, वो यारों की महफ़िल
कल रात जो देखा आईना, एक पेड़ वो तनहा याद आया

ईमान, वफ़ा, क़स्में, वादे, अहसास, वो नर्म फ़रेबों के
जज़्बात के उजड़े गुलशन में, एक प्यासा परिन्दा याद आया

## संजय मासूम

जिसे देखो वही प्यासा खड़ा है
हमारा शहर है या कर बला है

चलें कैसे, बचें कैसे बताओ
यहाँ जब हर क़दम पर हादसा है

वो सूखा पेड़ है पर काटना मत
परिन्दों का उसी पर घोंसला है

मैं उसके सामने हरगिज़ न जाता
पता होता अगर वो आईना है

शहर में हो गया तब्दील शायद
यहाँ इक गाँव था जो लापता है

जिसे 'मासूम' तुम कहते हो जीवन
ग़मों का एक लम्बा सिलसिला है

**2**

बहुत ही तल्ख़ है मेरी जुबान ये सच है
मैं साफ़गो हूँ बहुत मेहरबान ये सच है

ये और बात है हम धूप से नहीं हारे
कहीं नहीं था कोई सायबान ये सच है

भरम भले हो कि धरती से मिल रहा है गले
झुका नहीं है कहीं आसमान ये सच है

जोश था, मौसम भी ठीक था फिर भी
ख़्वाब ही रह गयी मेरी उड़ान ये सच है

पेड़ ख़ुद खा गये फल पी गयी नदी पानी
ये है हमारी सदी का बयान ये सच है

## कुमार विनोद

आस्था का जिस्म घायल रूह तक बेज़ार है
ज़्या करे कोई दुआ जब देवता बीमार है

तीरगी अब भी मज़े में है यहाँ पर दोस्तो
इस शहर में जुगनुओं को रोशनी दरकार है

भूख से बेहाल बच्चों को सुनाकर चुटकुले
जो हँसा दे, आज का सबसे बड़ा फ़नकार है

मैं मिटा के ही रहूँगा मुफ़लिसी के दौर को
बात झूठी रहनुमा की है, मगर दमदार है

वो रिसाला या कोई नावल नहीं है दोस्तो
पढ़ रहा हूँ मैं जिसे, वो दर्द का अख़बार है

ख़ूबसूरत जिस्म हो या सौ टका ईमान हो
बेचने की ठान लो तो हर तरफ़ बाज़ार है

रास्ते ही रास्ते हों जब शहर की कोख में
मंज़िलों को याद रखना और भी दुश्वार है

## जगमोहन राय 'सजल'

ले चली मुझको उड़ा के ये हवा और कहीं
मैं कहीं और गिरा, अज़्स मेरा और कहीं

पूछ ही लेता अगर उससे तो बेहतर होता
मुझको ढूँढ़े न मिला अपना पता और कहीं

आसमाँ गुम है सितारों में मची है हलचल
अब वो घर ढूँढ़ते हैं एक नया और कहीं।

किसकी मर्ज़ी से चलीं किसके इशारों पे बता
आँधियाँ और कहीं, बाद-ए-सबा[1] और कहीं

अब के टूटा तो बहुत दूर तलक बिखरा मैं
सर कहीं और गिरा, पाँव गिरा और कहीं

सूखे पत्रों ने ये इस बार ज़्या ठानी मन में
वो कहीं और चले और हवा और कहीं

ये ख़ुदावन्द[2] तेरी आवाज़ न सुन पाएँगे
जा किसी और के दर, माँग दुआ और कहीं

लोग कहते हैं 'सजल' सबको नहीं दिखता मैं
आईना ढूँढ़े मुझे, पास खड़ा, और कहीं

[1]सुबह की हवा [2] ईश्वर [3] प्यास

2

वो यहीं था किधर गया यारो
ज़्या हवा में बिखर गया यारो

इतने ख़ामोश थे सभी कि मैं
अपनी आहट से डर गया यारो

कैसी बर्फ़ीली थी हवा कल शब
पत्ता-पत्ता सिहर गया यारो

फिर वो चुपचाप मेरी आँखें से
मेरे दिल में उतर गया यारो

जाते-जाते भी मुझसे मिल के गया
ये भी एहसान कर गया यारो

ऐ 'सजल' वो चला न हम ही चले
वज़्त यूँ ही ठहर गया यारो

## आलोक श्रीवास्तव

तुम सोच रहे हो बस, बादल की उड़ानों तक
मेरी तो निगाहे हैं, सूरज के ठिकानों तक

टूटे हुए ख़्वाबों की इक लम्बी कहानी है
शीशे की हवेली से, पत्थर के मकानों तक

दिल आम नहीं करता, एहसास की ख़ुशबू को
बेकार ही लाये हम चाहत को जुबानों तक

लोबान का सौंधापन, चन्दन की महक में है
मन्दिर का तरन्नुम है, मस्जिद की अज़ानों तक

इक ऐसी अदालत है, जो रूह परखती है
महदूद नहीं रहती वो सिर्फ़ बयानों तक

हर वक़्त फ़िजाओं में, महसूस करोगे तुम
मैं प्यार की ख़ुशबू हूँ, महकूँगा ज़मानों तक

2
अब तो ख़ुशी के नाम पे कुछ भी नहीं रहा
आसूदगी[1] के नाम पे कुछ भी नहीं रहा

सब लोग जी रहे हैं मशीनों के दौर में
अब आदमी के नाम पे कुछ भी नहीं रहा

आई थी बाढ़ गाँव में, क्या-क्या न ले गयी
अब तो किसी के नाम पे कुछ भी नहीं रहा

घर के बुजुर्ग लोगों की आँखें ही बुझ गयीं
अब रोशनी के नाम पे कुछ भी नहीं रहा

आये थे मीर ख़्वाब में कल डाँटकर गये
'क्या शाइरी के नाम पे कुछ भी नहीं रहा?'

[1] तृप्ति

## पवन कुमार

रात अकेली चाँद सुहाना, धुँधला-धुँधला मद्धम-मद्धम
दरिया में है किसका फ़साना, धुँधला-धुँधला मद्धम-मद्धम

ओस सिरहाने, फूल लबों पर, चाँद का हाला हाथों में
याद है मुझको वो अफ़साना, धुँधला-धुँधला मद्धम-मद्धम

कह ना देना, सुन न सकेंगे, याद उन्हें है शायद कुछ-कुछ
मेरी कहानी, मेरा फ़साना, धुँधला-धुँधला मद्धम-मद्धम

आँख के मोती बाँध दिये हैं, फिर भी लबों पर तारी है
मेरी उदासी मेरा तराना, धुँधला-धुँधला मद्धम-मद्धम

राह चले थे जो दुखियारे, वो सब रस्ता भूल गये
याद रहा बस नाम ठिकाना, धुँधला-धुँधला मद्धम-मद्धम

दिल के सागर में तस्वीरें, यारों कब की ग़र्क़ हुई
दर्द ने छेड़ा राग पुराना, धुँधला-धुँधला मद्धम-मद्धम

2
वो बात बात पर कैसी दुहाई देता है
न पूछो कुछ भी मगर वो सफ़ाई देता है

हवाएँ चारों पहर सनसनाती रहती हैं
मुझे बताओ कि ये क्या सुनाई देता है

वो रात जिसके तसव्वुर में कोई ख़्वाब नहीं
ये कौन चीखता है क्या दुहाई देता है

ये कौन जाता है मुझसे निकल के पिछले पहर
सुख़न से छीन के अपनी कमाई देता है

कभी वो मुझसे भी करता है बात मिलने की
कभी वो अपने ज़ेहन में रसाई देता है

मेरी बयाज[1] में ढूँढ़ों कि कुछ सुराग़ मिले
सुनाई देता है न वो दिखाई देता है

मैं ख़्वाब-ख़्वाब उसे ढूँढ़ता रहा हूँ सदा
मुझे वहम है वो मुझको दिखाई देता है

[1]डायरी

## विनय मिश्र

तुझे कुछ इस तरह भी एक दिन महसूस करना था
किसी सूखी नदी पर काँपते पुल से गुज़रना था

मरुस्थल है कोई मुझमें जो ये आवाज़ देता है
वहाँ पर रेत उड़ती है जहाँ पानी उतरना था

सुनाऊँ ज़्या सियासत एक वो अश्लील क़िस्सा है
जिसे कहते हुए हालात के जूतों से डरना था

अकेला हो गया इतना कि इस दुनिया में जीने को
अगर मरना था तो ज़िन्दादिली के संग मरना था

वही ग़लती वही आदत वही बातें हमेशा ही
हमारे दिल में रहती है जिन्हें थोड़ा सँवरना था

उठाने में लगे हैं सिर्फ़ दीवारें ही दीवारें
जिन्हें सपना किसी छत का यहाँ साकार करना था

कहीं कोई पराजय प्यास की होती नहीं चलकर
उदासी के सफ़र में ज़िन्दगी का एक झरना था

## आचार्य सारथी

तुझे पाने की जागी वो लगन आहिस्ता-आहिस्ता
कि मुझपे छा गया दीवानापन आहिस्ता-आहिस्ता

किसी के देखने भर से यूँ रोशन हो गयी दुनिया
मुझे छूती है जीने की लगन आहिस्ता-आहिस्ता

वो हल्की-सी छुअन एहसास से यूँ भर गयी मुझको
तुझे पाने का करता हूँ जतन आहिस्ता-आहिस्ता

जलाकर ख़ाक़ न कर दे मुझे ये बेरुख़ी तेरी
कि बढ़ती जाए है मन की अगन आहिस्ता-आहिस्ता

इसी उज़्मीद पे सहते गये दुनिया के दुख हम भी
कि फूटेगी कभी सुख की किरन आहिस्ता-आहिस्ता

मैं काफ़िर हूँ! भला किसने मुझे ये बन्दगी दे दी
लहू करने लगा किसका भजन आहिस्ता-आहिस्ता

## अखिलेश तिवारी

एक दिन आख़िर महल को तो खँडर होना ही था
ख़्वाहिशें थी ख़्वाहिशों को दर-ब-दर होना ही था

वक़्त के सीपों में ढलते हों जो मोती की तरह
दीन-दुनिया से उन्हें जो बेख़बर होना ही था

यूँ हुआ बेचेहरगी के हो गये हम भी शिकार
आईनों से दूर रहने का असर होना ही था

हमने की सूरज की सरहद में उतरने की ख़ता
यानी हमको इस तरह बेबालो-पर होना ही था

चाँद से नज़दीकियों के बाद ये हम पर खुला
उसकी रानाई का कारन अर्श पर होना ही था

तुमने गुंजाइश कहाँ छोड़ी थी ख़ुद में पत्थरों
कुछ तो रखनी थी जगह सेराब गर होना ही था

## नरेश शांडिल्य

दिलकश कमसिन बातें छोड़ो आज तल्ख़ियों पर चर्चा हो
ख़ूब हो चुकी रिमझिम-रिमझिम कड़क-बिजलियों पर चर्चा हो

फूल, तितलियाँ, प्यार, वफ़ा, मीठे मौसम, जज़्बाती मसले
ये मस्ती का समय नहीं है जली बस्तियों पर चर्चा हो

घूँघट-चूनर-शाल-दुपट्टा, शर्म, हया था जिनका गहना
फ़ैशन शो पर नहीं आज उन आम लड़कियों पर चर्चा हो

ये ख़बरें छोटी मोटी हैं इनको फ़ुर्सत में देखेंगे
आज तो केवल अख़बारों की ख़ास सुर्ख़ियों पर चर्चा हो

वक़्त नहीं ये पुरस्कार के पैमानों पर बहस करें हम
आज नवोदित किसी क़लम की रक़्त-पंक्तियों पर चर्चा हो

## सलीम ख़ाँ फ़रीद

जब तेरी ठकुराई चुप है
तो मेरी कविताई चुप है

भक़्तों के हिंसक गीतों से
वपुरा सदन कसाई चुप है

ज़ेद राग गाती संन्यासिन
सुनकर मीराबाई चुप है

ऐसे-ऐसे मंज़र जिन पर
आँखों की बीनाई चुप है

बोल रहे बुलबुले बराबर
सागर की गहराई चुप है

कोई हल कैसे निकलेगा
जब तक यह तरुणाई चुप है

2

पानी पर ही पानी बरसे
अज़्बर की नादानी बरसे

देख बचपना बड़े-बड़ों का
बच्चों की हैरानी बरसे

दुख से तपते एक नगर पर
सुख की आनाकानी बरसे

एक अकेले सच के आगे
सबकी ग़लतबयानी बरसे

मुश्किल से मालूम हुआ है
मुश्किल से आसानी बरसे

## प्रेम किरण

अब के मायूस ही लौटा है खिलौने वाला
एक बच्चा न मिला गाँव में रोने वाला

कम से कम क़त्ल का मंज़र तो न देखा उसने
जागने वालों से अच्छा रहा सोने वाला

माँ के आँचल पे हैं बच्चों के लहू के छींटे
कोई आँसू नहीं इस दाग़ को धोने वाला

हम तो आराम से पत्थर पे भी सो जाते हैं
गोलियाँ नींद की खाता है बिछौने वाला

ये क़लम, ये किताबें, ये समाज और कुज़्बा
है तेरी तरह कोई बोझ को ढोने वाला

जुस्तजू फूलों को कैसे न 'किरन' की होती
वो था पैराहने-मौसम को भिगोने वाला

## प्रकाश बादल

यूँ चीखने से बात नहीं बनती
मायने रखता है सुनाई देना

लाद गया वो किताबों के भारी बस्ते
मैंने कहा था बच्चों को पढ़ाई देना

जो दर्द दिये तूने उसका हिसाब कर,
फिर मुझे नये साल की बधाई देना

कितना अच्छा है पत्थर पूजने से
बीमार ग़रीबों को दवाई देना

परिन्दों का पिंजरे में लौट आना है अलग
अलग बात है पिंजरे से रिहाई देना

2
मैं अज़्सर सच कहता हूँ
सबको कड़वा लगता हूँ

जो भी नोक पे आते हैं
मैं उनको ही चुभता हूँ

तू जो मुझ पर मरती है
इसीलिए तो जीता हूँ

वो नाख़ून दिखाते हैं
घाव की बात जो करता हूँ

हो जाता तूफ़ान खड़ा
जब तिनकों सा जुड़ता हूँ

## दीक्षित दनकौरी

कुछ ज़िन्दगी के प्रश्न उठाने की बात कर
भटके हुओं को राह दिखाने की बात कर

हुस्नो-शबाब की तो बहुत बात हो चुकी
ख़तरे में आदमी है बचाने की बात कर

मज़हब के नाम पर न बहा ख़ून और अब
इन्सानियत के फूल खिलाने की बात कर

सदियों से दूर दूर ही रज़्खा गया जिन्हें
उनको गले से आज लगाने की बात कर

लड़ना ही चाहता है बदी के ख़िलाफ़ लड़
नेकी पे अपनी जान लुटाने की बात कर

## मंगल नसीम

परिन्दे हौसला क़ायम उड़ान में रखना
हर इक निगाह तुझी पर है ध्यान में रखना

बुलन्दियाँ तेरी हिज़्मत को आज़माएँगी
परों में जान, नज़र आसमान में रखना

हर इम्तिहान पे मंज़िल क़रीब आती है
हमेशा ख़ुद को किसी इम्तिहान में रखना

तू बोलता है तो मिसरी सी घुलती जाती है
यही मिठास हमेशा ज़बान में रखना

उड़ान भर के तेरी ओर आ रहा है ये
तू इस परिन्दे को अपनी अमान में रखना

## अमरजीत अमर

मुझे मिलकर तुम्हारे दिल में ग़र कोई ख़ुशी जागे
तो शायद मुझमें फिर सोया हुआ इक आदमी जागे

हमारी चीख़ सन्नाटे का सीना चीर डालेगी
बशर्ते मुद्दतों की नींद से जो हम कभी जागे

यह निश्चित है कि आदमखोर आएगा तो रातों में
जिसे ख़ुद पर भरोसा हो यहाँ पर बस वही जागे

हिफ़ाज़त गाँव की हर हाल में करनी है हम सबको
भले चौपाल सो जाए मगर हर घर गली जागे

सलीबें ढो रहे हैं मौत की चुपचाप सदियों से
कभी तो उन फरिश्तों में भी सोई ज़िन्दगी जागे

विभीषण आज भी रावण की लंका फूँक सकता है
कभी तो वक़्त करवट ले कभी तो यह सदी जागे

## विकास शर्मा 'राज़'

ज़रूरत है वफ़ादारी के पीछे
छुपाता हूँ नमकज़्वारी के पीछे

क़बीले को बिखरना ही था आख़िर
सभी पागल थे सरदारी के पीछे

निशाना साधना आता है मुझको
हवा रख दूँगा चिंगारी के पीछे

तुज़्हारे ज़्वाब को भी खो दिया है
मेरी आँखों ने बेदारी[1] के पीछे

मिसाल ऐसे नहीं देता ज़माना
लहू थूका है इस यारी के पीछे

अकेला कर लिया है उसने ख़ुद को
अना[2] की चारदीवारी के पीछे

सियाही घुल रही है ज़िन्दगी में
उजाले की तरफ़दारी के पीछे

[1]जागृति [2]घमंड

2

कोई उसके बराबर हो गया है
ये सुनते ही वो पत्थर हो गया है

जुदाई का हमें इमकान[1] तो था
मगर अब दिन मुक़र्रर[2] हो गया है

सभी हैरत से मुझको तक रहे हैं
ये ज़्या तहरीर[3] मुझ पर हो गया है

असर है ये हमारी दस्तकों का
जहाँ दीवार थी दर[4] हो गया है

बहुत ख़ुश हूँ उसे बेचैन करके
हिसाब उससे बराबर हो गया है

जिसे देखो ग़ज़ल पहने हुए है
बहुत सस्ता ये ज़ेवर हो गया है

[1]सज़्भावना [2] निश्चित [3] अंकित [4]द्वार

## कृष्ण शलभ

है उजालों की ज़रूरत, ओ रे सूरज आ इधर
देख ऐसे हिचकिचा मत, ओ रे सूरज आ इधर

ये लिफ़ाफा जो अँधेरों से मिला है स्याह है
बाँचना ही होगा ये ख़त ओ रे सूरज आ इधर

साज़िशों के घर रखैलों सी है किरनें आजकल
बात है ये सत्य सज़्मत ओ रे सूरज आ इधर

स्वर्ण सिंहासन, महल, दरबार, इस घेरे को छोड़
देख पाएगा तभी सत, ओ रे सूरज आ इधर

राख के नीचे दबी चिंगारियाँ किसकी हुईं
देख आगत, दे हवा मत, ओ रे सूरज आ इधर

2

जाने ज़्या ज़्या सोचे बैठी बैठी राम जनम की माँ
ख़ुद ही ख़ुद से बातें करती रहती राम जनम की माँ

बस्ती के सारे सुख दुख में ख़ुद को शामिल करती वो
ख़ुशियों में झूमे तो दुख में रोती राम जनम की माँ

जब से दोनों बेटे बोले, अज़्मा घर तक़सीम करो
सब से अन्दर फोड़ा जैसी रिसती राम जनम की माँ

ये पुरखों का घर बँटते ही कितना कुछ बँट जाएगा
इस अनहोनी की आहट से डरती राम जनम की माँ

कैसे मेरा हिस्सा होगा कैसे बाँटी जाऊँगी
इस चिनता में जीती है न मरती राम जनम की माँ!

## अश्वघोष

यूँ तो वह रहबर लगता है
लेकिन उससे डर लगता है

तुझको लगता होगा ईश्वर
मुझको तो पत्थर लगता है

दरवाज़े को ऊँचा कर ले
दरवाज़े में सर लगता है

थोड़ा सा हो, लेकिन हो तो
दुख से भी घर, घर लगता है

ख़ुद से मिलने की इच्छा है
पर जाने ज़्यों डर लगता है

**2**

अब के जब तुम ख़त लिखना
अपनी भी हसरत लिखना

गाँव तलक कैसे पहुँची
शहरों से नफ़रत लिखना

बादल से जूझी होगी
छत की हालत मत लिखना

बूढ़े बरगद के दिल में
ज़्यों उपजी दहशत लिखना

गर तुम पर अल्फ़ाज़ बचें
बार बार उल्फ़त लिखना

## हरेराम समीप

देखना फ़रमान ये जल्दी निकाला जाएगा
जुर्म होते जिसने देखा मार डाला जाएगा

मसख़रों के स्वागतम में गीत गाये जाएँगे
शायरों को देश से बाहर निकाला जाएगा

दिल की बेरंगी ने बदला है नज़र का दृष्टिकोण
हमसे ऐसे में न कोई चित्र ढाला जाएगा

पोथियाँ मत सौंपिए झूठे किसी इतिहास की
व्यर्थ का यह बोझ न हमसे सँभाला जाएगा

खो गयी है रात की तारीकियों में ज़िन्दगी
खोजने उसको न जाने, कब उजाला जाएगा

**2**

वेदना को शब्द के परिधान पहनाने तो दो
ज़िन्दगी को गीत में ढल कर ज़रा आने तो दो

वक़्त की ठंडक में शायद जम गयी मन की नदी
देखना बदलेंगे मंज़र, धूप गर्माने तो दो

खोज ही लेंगे नया आकाश ये नन्हें परिन्द
इन परिन्दों को ज़रा तुम पंख फैलाने तो दो

ऐ अँधेरो! देख लेंगे हम तुम्हें भी कल सुबह
सूर्य को अपने सफ़र से लौट कर आने तो दो

मुद्दतों से सोच अपनी बन्द कमरों में है क़ैद
खिड़कियाँ खोलो, यहाँ ताज़ा हवा आने तो दो

ना-समझ है वक़्त, लेकिन ये बुरा बिल्कुल नहीं
मान जाएगा, उसे इक बार समझाने तो दो

कब तलक डरते रहें हम, ये न हो, फिर वो न हो
जो भी होना है, उसे इस बार हो जाने तो दो

3

झुलसती धूप, थकते पाँव, मीलों तक नहीं पानी
बताओ तो कहाँ धोऊँ, सफ़र की ये परेशानी

इधर भागूँ उधर भागूँ जहाँ जाऊँ वहीं पाऊँ
परेशानी परेशानी परेशानी परेशानी

बड़ा सुन्दर-सा मेला है, मगर उलझन मेरी ये है
नज़र में है किसी खोए हुए बच्चे की हैरानी

यहाँ मेरी लड़ाई सिर्फ़ इतनी रह गयी यारो
गले के बस ज़रा नीचे, रुका है बाढ़ का पानी

तबीयत आजकल मेरी यहाँ अच्छी नहीं रहती
विषैला हो गया शायद, यहाँ का भी हवा पानी

समय के ज़ंग खाये पेंच दाँतों से नहीं खुलते
समझ भी लो मेरे यारो बग़ावत के नये मानी

## इम्तियाज़ अहमद ग़ाज़ी

अपने वादे से डर गया कोई
मौत से पहले मर गया कोई

अपनी नज़रों को बेज़ुबा करके
हादसा फिर से कर गया कोई

वादि-ए-हिन्द की गुलसिताँ को
कैसे बरबाद कर गया कोई

बेगुनाही की कुछ दलील लिए
पास आके गुज़र गया कोई

इक ग़ज़ल मेरी आश्ना करके
आज दामन को भर गया कोई

मेरी आँखों में झाँककर बोले
तेरे जलवों पे मर गया कोई

नाज़ से कह दिया है 'ग़ाज़ी' ने
ख़ुद ही मुझमें सँवर गया कोई

भारतीय ज्ञानपीठ

# सद्यःप्रकाशित नयी पुस्तकें

**जिनकी मुट्ठियों में सुराख़ था...**

(कहानी)

**नीलाक्षी सिंह**

मूल्य : 170

**प्रिंट लाइन**

(उपन्यास)

**परितोष चक्रवर्ती**

मूल्य : 340

**ब्रेकिंग न्यूज**

(कहानी)

**अनन्त कुमार सिंह**

मूल्य : 120

**तन्द्रालोक का प्रहरी**

(उपन्यास)

**मनोज दास**

मूल्य : 160

**अमेरिका और यूरप में एक भारतीय मन**

(यात्रा-वृतान्त)

**विश्वनाथ प्रसाद तिवारी**

मूल्य : 120

**घर का आख़िरी कमरा**

(उपन्यास)

**प्रियदर्शन मालवीय**

मूल्य : 160

**गाँधी : एक खोज**

(आलोचना)

**श्रीभगवान सिंह**

मूल्य : 220

**लेडीज हॉस्टल**

(उपन्यास)

**केशुभाई देसाई**

मूल्य : 270